ISSN 0976-0849

विमर्श

अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

आज़ादी का अमृत महोत्सव

वर्ष 16 • अंक 16 • आश्विन कृष्ण चतुर्थी, विक्रम संवत् 2079 • सितम्बर 2022

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 8वीं पुण्यतिथि

की पावन स्मृति में समर्पित

महाराणा प्रताप महाविद्यालय

जंगल धूसड़, गोरखपुर

की शोध पत्रिका

मुख्य सम्पादक

डॉ. प्रदीप कुमार राव

Vimarsh

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL

Editorial Advisory Board

U.P. Singh, Ex Vice Chancellor, V.B.S. Purvanchal University, Jaunpur

Ram Achal Singh, Ex Vice Chancellor, R.M.L. Awadh University, Faizabad and Ex Chairman, Higher Education Service Commission (HESC), Uttar Pradesh

K.B. Pandey, Ex Vice Chancellor, Chhatrapati Shahu Ji Maharaj University, Kanpur and Ex Chairman, Public Service Commission, Uttar Pradesh

Makkhan Lal, Director, Delhi Institute of Heritage Research and Management, New Delhi

Mrinal Shankar Raste, Ex Vice Chancellor, Symbiosis International University, Pune

Surendra Dubey, Ex Vice Chancellor, Siddhartha University, Kapilvastu, Siddharthanagar

V.K. Singh, Ex Vice Chancellor, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shri Prakash Mani Tripathi, Vice Chancellor, Indira Gandhi National Tribal University, Amarkantak (M.P.)

Chandrashekhar, Vice Chancellor, Raja Mahendra Pratap Singh Vishwavidyalaya, Aligarh

Murli Manohar Pathak, Vice Chancellor, Sri Lal Bahadur Shastri Central Sanskrit University, New Delhi

Rajesh Kumar Singh, Vice Chancellor, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

A.K. Singh, Vice Chancellor, Mahayogi Guru Gorakhnath Ayush Vishwavidyalaya, Gorakhpur

A.K. Vajpai, Vice Chancellor, Mahayogi Gorakhnath University, Gorakhpur

Sadanand Prasad Gupta, Ex Executive Chairman, U.P. Hindi Sansthan, Lucknow

Shivajee Singh, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

V.K. Srivastava, Professor, Geography. D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Pratibha Khanna, Professor, Education. D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

S.S. Das, Professor, Chemistry, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

D.K. Singh, Professor, Zoology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Rajawant Rao, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture. D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Himanshu Chaturvedi, Professor, History, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Harsh Sinha, Professor, Defence and Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shikha Singh, Professor, English, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Divya Rani Singh, Professor, Home Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shailja Singh, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Raj Sharan Shahi, Professor, Education, Bhimrao Ambedkar Central University, Lucknow

Vivek Nigam, Professor, Economics, Ewing Christian College, Prayagraj

Shobha Gaur, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Pragya Mishra, Professor, Ancient History, Ram Manohar Lohia Awadh University, Faizabad

Rajesh Singh, Professor, Political Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Mahesh Kumar Sharan, Professor, Maghadh University, Bodhgaya (Bihar)

Ravi Shankar Singh, Professor, Physics, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Vinod Kumar Singh, Professor, Defence & Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

V. Ramanathan, Professor, Chemistry Department, IIT-BHU, Varanasi

D.S. Ajitha, Principal, Guru Gorakshanath School of Nursing, Gorakhpur

Mrityunjay Kumar, Renowned Journalist

Vimarsh

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL

Volume 16 • Number 16 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2079 • September 2022

Chief Editor

Dr. Pradeep Kumar Rao

Editor

Dr. Subodh Kumar Mishra

Co-editors

Dr. Hanuman Prasad Upadhyaya

Dr. Ikshwaku Pratap Singh

The Journal of

Maharana Pratap P.G. College

Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)-273014

This Journal is a *Peer Reviewed Referral* Volume.

ISSN- 0976-0849

Vol. 16 • Number 16 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2079 • September 2022

Vimarsh, an interdisciplinary ***refereed or peer reviewed*** is an annual and bilingual journal of Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP).

Copyright of the published articles, including abstracts, vests in the Editors. The objective is to ensure full Copyright protection and to disseminate the articles, and the journal, to the widest possible readership. Authors may use the article elsewhere after obtaining prior permission from the editors.

Research Papers related to Interdiscilinary subjects are invited for publication in the journal. Research papers, book reviews, Subscription and other enquiries should be sent to – Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP) - 273014, Mob. : 9794299451, 9452971570. You may also e-mail your contributions and correspondence at *vimarshmppg@gmail.com.*

Guidelines for Contributors given on the inner side of the back cover.

The Editors and the Publisher can not be held responsible for errors and any consequences arising from the use of information contained in this journal. The views and opinions expressed do not necessarily reflect those of the editors and the publisher.

Designed & Printed at :
Laxdeep Digital India, Delhi (Bharat) Mob. : 7838975278, 7703892262

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 100	US $ 5	Rs. 200	US $ 10
Five Years	Rs. 400	US $ 20	Rs. 800	US $ 40
Life (15 Years)	Rs 1300	US $ 60	Rs. 2500	US $ 100

वन्दे भारतमातरम् !!

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।

वर्ष तद्भारत नाम भारती यत्र सन्ततिः।। वा.पु.

पृथ्वी का वह भाग जो समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित है, भारतवर्ष है, जहाँ भारती प्रजा रहती है।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।

यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्याः भोगभूमयः।। वा.पु.

इस जम्बू-द्वीप में भी, हे महामुने! भारतवर्ष श्रेष्ठ है, क्योंकि यह कर्मभूमि है और बाकी भोग-भूमियाँ ही हैं।

अत्र जन्म सहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम।

कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्।। वा.पु.

भारतवर्ष में जीव हजारों जन्मों के अनन्तर पुण्य जुटाने से कदाचित् मनुष्य जन्म प्राप्त करता है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।। मनु.

इस देश में जन्म पाए हुए श्रेष्ठ जन्मा पुरुषों से पृथिवी के सारे मनुष्य अपने-अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें।

रत्नाकराधौतपदां हिमालयकिरीटिनीम्।

ब्रह्मराजर्षिरत्नाढ्यां वन्दे भारतमातरम्।।

समुद्र जिसके पाँव पखार रहा है, हिमालय जिसका किरीट है और जो ब्रह्मर्षि-राजर्षिरूप रत्नों से समृद्ध हैं, ऐसी भारत-माता की मैं वन्दना करता हूँ।

भारतीय जीवन दृष्टि

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।

देवा नो यथा सद्मिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥ (ऋग्वेद १/४९/१)

कल्याणकारिणी, अप्रतारित, अप्रतिरुद्ध तथा अर्थसाधिका बुद्धियाँ हमारे पास सब ओर से आयें, जिससे निरलस एवं प्रतिदिन रक्षा करने वाले देव सर्वदा हमारी वृद्धि के लिए हों।-

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनुभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ (ऋग्वेद १/८/८)

हे देव! हम कानों से अच्छा सुनें। यजनीय देवगण! हम आँखों से अच्छा देखें। हम दृढ़ाङ्ग शरीरों से तुम्हारी स्तुति करते हुए, देव-स्थापित आयु प्राप्त करें।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।

बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽसि ओजो मयि धेहि।

महोऽसि महो मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि। (यजुर्वेद १९/९)

(हे परमात्मन्! तुम) तेज हो, मुझमें तेज स्थापित करो। पराक्रम हो, मुझमें पराक्रम स्थापित करो। बल हो, मुझमें बल स्थापित करो। ओज हो, मुझमें ओज स्थापित करो। मह हो, मुझमें मह स्थापित करो। सहिष्णु हो, मुझमें सहिष्णुता स्थापित करो।

भद्रं इच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः, तपो दीक्षा उपसेदुः अग्रे।

ततो राष्ट्रं बल ओजश्च जात तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥ (अथर्व. १९/४१/१)

आत्मज्ञानी ऋषियों ने जगत् का कल्याण करने की इच्छा से सृष्टि के आरम्भ में दीक्षा लेकर जो तप किया, उससे राष्ट्र-निर्माण हुआ, राष्ट्रीय बल और ओज भी हुआ। इसलिए सब विवुध इस राष्ट्र के सामने नम्र होकर इसकी सेवा करें।

आ ब्रह्मन्! ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्यः शूराविध्यतेऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुः, वोढाऽनड्वान्, आशुः सप्तिः, पुरन्धिर्योषा, जिष्णुरथेष्ठाः, सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे-निकामे पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्। (यजुर्वेद. २२/२२)

हे ब्रह्मन्! राष्ट्र में हमारे ब्राह्मण, ब्रह्म वर्चस्वी हों। हमारे राजन्य शूर, अस्त्र-शस्त्र में निपुण, रिपुदल के महासंहारक तथा महायोद्धा हों। हमारी गायें दुधारू हों, बैल हल आदि ढोने वाले हों, घोड़े वेग से दौड़ने वाले हों, स्त्रियाँ घर सँभालने वाली हों, योद्धा विजयशील हों, तथा युवक सभ्य एवं वीर हों। जब-जब हम चाहें बादल बरसें। हमारी फल-फूलवती खेतियाँ पकती रहें और हमारा योगक्षेम चलता रहे।

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।

तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

पुण्य-स्मृति

गोरक्षपीठ द्वारा संचालित
महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
शिक्षा क्षेत्र की एक अग्रणी संस्था है।
पूर्वी उत्तर प्रदेश में गोरखपुर को केन्द्र बनाकर
प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक लगभग चार दर्जन
शिक्षण संस्थानों का संचालन करने वाले
महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
की स्थापना 1932 ई. में
गोरक्षपीठाधीश्वर
महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज
ने की थी और इसे विशाल वटवृक्ष का रूप दिया
उनके शिष्य महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने।
महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़
इसी महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
जैसे वटवृक्ष की एक शाखा है।
महाविद्यालय के संस्थापक परमपूज्य
राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की
08वीं पुण्यतिथि के पावन अवसर पर
सादर समर्पित है

विमर्श-2022

राष्ट्र-सन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

जन्म तिथि : 18 मई, 1919
जन्म स्थान : ग्राम-कांडी, जिला-गढ़वाल (उत्तरांचल)
पारिवारिक स्थिति : बाल ब्रह्मचारी
गुरु का नाम : ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजनाथ जी महाराज
शिक्षा : शास्त्री संस्कृत (वाराणसी एवं हरिद्वार में अध्ययन)
कार्य क्षेत्र : हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार के लिये सतत कार्यरत अनेक धार्मिक संगठनों से सम्बद्ध

राजनीतिक उपलब्धियाँ

लोकसभा सदस्य

- 1970 - गोरखपुर संसदीय क्षेत्र - निर्दलीय
- 1989 - गोरखपुर संसदीय क्षेत्र - हिन्दू महासभा
- 1991 - गोरखपुर संसदीय क्षेत्र - भारतीय जनता पार्टी
- 1996 - गोरखपुर संसदीय क्षेत्र - भारतीय जनता पार्टी

विधानसभा सदस्य

- 1962 - मानीराम - हिन्दू महासभा
- 1967 - मानीराम - निर्दलीय
- 1969 - मानीराम - हिन्दू महासभा
- 1974 - मानीराम - हिन्दू महासभा
- 1977 - मानीराम - जनता पार्टी

संसदीय जिम्मेदारियाँ

- 1971 - सदस्य, परामर्शदात्री समिति, गृह मंत्रालय (भारत सरकार)
- 1989 - सदस्य, परामर्शदात्री समिति, गृह मंत्रालय (भारत सरकार)
- 1993 - संसदीय प्रणाली व्यवस्था लागू होने पर गृह मंत्रालय के सदस्य

महत्वपूर्ण पद (ब्रह्मलीन होने के तिथि तक)

- पूर्व उपाध्यक्ष, आल इण्डिया हिन्दू महासभा, पूर्व एक्जीक्यूटिव
- पूर्व मेम्बर, आल इण्डिया हिन्दू महासभा
- पूर्व महासचिव, आल इण्डिया हिन्दू महासभा

धार्मिक पद (ब्रह्मलीन होने के तिथि तक)

- गोरक्षपीठाधीश्वर-श्री गोरक्षनाथ पीठ, गोरखपुर
- अध्यक्ष-श्रीराम जन्म भूमि मुक्ति यज्ञ समिति
- अध्यक्ष-अखिल भारतवर्षीय अवधूत भेष बारहपंथ- योगी महासभा, हरिद्वार
- अध्यक्ष-श्रीराम जन्म भूमि उच्चाधिकार समिति
- अध्यक्ष-गुरु गोरखनाथ सेवा संस्थान, गोरखनाथ, गोरखपुर
- अध्यक्ष-श्रीराम जानकी मन्दिर, झुंगिया बाजार, गोरखपुर

राष्ट्र-सन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

शिक्षा के क्षेत्र में

अध्यक्ष (ब्रह्मलीन होने के तिथि तक) -

- महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
- गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ महाविद्यालय, चौक, महजराजगंज
- दिग्विजयनाथ ्एल.टी. प्रशिक्षण महाविद्यालय, गोरखपुर
- दिग्विजयनाथ इण्टर कालेज, चौक बाजार, महराजगंज
- महाराणा प्रताप कृषक इण्टर कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर
- दिग्विजयनाथ जूनियम हाई स्कूल, चौकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर
- गुरु गोरक्षनाथ विद्यापीठ, पितेश्वरनाथ मन्दिर, भरोहिया, पीपीगंज, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, मंगलादेवी मन्दिर, बेतियाहाता, गोरखपुर
- महन्त दिग्विजयनाथ बालिका विद्यालय, चौक, महराजगंज
- आदिशक्ति माँ पाटेश्वरी पब्लिक स्कूल, देवीपाटन, तुलसीपुर, बलरामपुर
- योगिराज बाबा गम्भीरनाथ सेवाश्रम समिति, जंगल धूसड़, गोरखपुर
- गुरु श्रीगोरक्षनाथ स्कूल ऑफ नर्सिंग, गोरखनाथ, गोरखपुर
- गुरु श्री गोरखनाथ संस्कृत विद्यालय, मैदागिन, वाराणसी

प्रबंधक (ब्रह्मलीन होने के तिथि तक) -

- दिग्विजयनाथ स्तनातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप महिला महाविद्यालय, रामदत्तपुर, गोरखपुर
- गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, गोरक्षनाथ, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप इण्टर कालेज, गोरखपुर
- गोरक्षनाथ उ.मा. विद्यालय, गोरखनाथ, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप पूर्व माध्यमिक विद्यालय, रामदत्तपुर, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप पूर्व माध्यमिक विद्यालय, लालडिग्गी, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप शिशु शिक्षा विहार, रामदत्तपुर, गोरखपुर
- महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद, गोरखपुर

चिकित्सा के क्षेत्र में (ब्रह्मलीन होने के तिथि तक)

- अध्यक्ष-गुरु श्री गोरखनाथ चिकित्सालय, गोरखनाथ, गोरखपुर
- अध्यक्ष-महन्त दिग्विजयनाथ आयुर्वेद चिकित्सालय, गोरखनाथ, गोरखपुर
- अध्यक्ष-श्री माँ पाटेश्वरी सेवाश्रम चिकित्सालय, देवीपाटन, तुलसीपुर, बलरामपुर
- अध्यक्ष-गुरु गोरखनाथ इन्स्टीच्यूट ऑफ मेडिकल साइन्सेज, सोनबरसा, मानीराम, गोरखपुर

योग के क्षेत्र में (ब्रह्मलीन होने के तिथि तक)

अध्यक्ष-महायोगी गुरु गोरखनाथ योग संस्थान, गोरखनाथ, गोरखपुर

ब्रह्मलीन	**: 12 सितम्बर 2014**
जनता दर्शन	**: 13 सितम्बर 2014**
समाधि	**: 14 सितम्बर 2014**

चरैवेति! चरैवेति!

वैदिक ग्रन्थ 'ऐतरेय ब्राह्मण' के 'चरैवेति! चरैवेति!' शीर्षक मंत्र युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज एवं गोरक्षपीठाधीश्वर ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के जीवन में साक्षात् दिखता है। इन मंत्रों का मूल स्वरूप और सहज-सरल भावानुवाद यहाँ प्रस्तुत है-

नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा।। **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : (हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को उपदेश करते हुए इन्द्र कहते हैं) हे रोहित! हम ऐसा सुनते हैं कि श्रम करने से जो नहीं थका है, ऐसे मनुष्य को श्री की अथवा ऐश्वर्य और वैभव की प्राप्ति होती है। बैठे हुए आलसी आदमी को पाप धर दबाता है। इन्द्र उसका ही मित्र है, जो बराबर चलता रहता है। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

पुष्पिण्यौ चरतो जंघे भूष्णुरात्मा फल ग्रहिः।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः।। **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : जो मनुष्य चलता रहता है, उसकी जांघों में फूल फूलते हैं। उसकी आत्मा भूषित और शोभित होकर फल प्राप्त करती है। ऐसे चलने वाले परिश्रमी व्यक्ति के सारे पाप थककर सोये रहते हैं। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः।। **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : बैठे हुए का सौभाग्य बैठा रहता है और खड़े होने वाले का सौभाग्य उठकर खड़ा हो जाता है। पड़े रहने वाले का सौभाग्य सोता रहता है और उठकर चलने वाले का सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तुः द्वापरः।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्।। **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : सोने वाले का नाम कलियुग है, अंगड़ाई लेने वाला द्वापर है, उठकर खड़ा होने वाला त्रेता है और चलने वाला सतयुगी होता है। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्।। **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : चलता हुआ मनुष्य ही मधु (अमृत) प्राप्त करता है। चलता हुआ मनुष्य ही स्वादिष्ट फलों को चखता है। सूर्य के परिश्रम को देखो, जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

卐

जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी
जो हठि राखे धर्म को, तिहिं राखै करतार।।

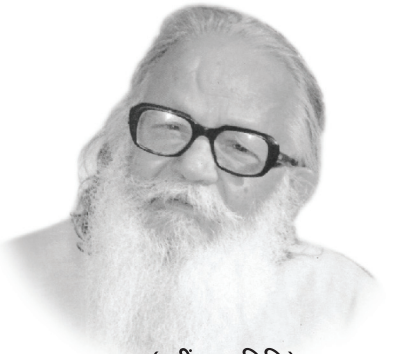

(8वीं पुण्यतिथि)

राष्ट्रसंत ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 8वीं पुण्यतिथि

की पावन स्मृति में आयोजित

सप्तदिवसीय व्याख्यान-माला

22 से 28 अगस्त, 2022

उद्घाटन

22 अगस्त, सोमवार 2022

सानिध्य : **प्रो. उदय प्रताप सिंह,** पूर्व कुलपति
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.
अध्यक्ष, महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद, गोरखपुर
अध्यक्ष-प्रबन्ध समिति, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

अध्यक्ष : **प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल,** मा. कुलपति
महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

मुख्य अतिथि : **डॉ. सुधांशु त्रिवेदी**
राष्ट्रीय प्रवक्ता एवं राज्य सभा सदस्य, भारतीय जनता पार्टी

समारोप

28 अगस्त, रविवार 2022

सानिध्य : **प्रो. उदय प्रताप सिंह,** पूर्व कुलपति
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.
अध्यक्ष, महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद, गोरखपुर
अध्यक्ष-प्रबन्ध समिति, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

अध्यक्ष : **डॉ. ए.के. सिंह,** मा. कुलपति
महायोगी गोरखनाथ आयुष विश्वविद्यालय, गोरखपुर

मुख्य अतिथि : **श्री आशीष गौतम**
दिव्यप्रेम सेवा संस्थान, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

व्याख्यान कार्यक्रम

मंगलवार, 23 अगस्त, 2022 • पूर्वाह्न 11.40 बजे से

–: विषय :–

वैश्विक पर्यावरणीय बदलाव : 21वीं सदी की सर्वोच्च चुनौती

–: वक्ता :–

प्रो. दिनेश कुमार सिंह, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

बुधवार, 24 अगस्त, 2022 • पूर्वाह्न 11.40 बजे से

–: विषय :

मूल्य आधारित नेतृत्व

–: वक्ता :–

मेजर जन. अजय कुमार चतुर्वेदी (से.नि.), पीवीएसएम, एवीएसएम, लखनऊ

बृहस्पतिवार, 25 अगस्त, 2022 • पूर्वाह्न 11.40 बजे से

–: विषय :–

स्वस्थ्य जीवन शैली एवं कैंसर से बचाव

–: वक्ता :–

प्रो. एम.एल.बी. भट्ट, पूर्व कुलपति
किंग जॉर्ज मेडिकल विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.

शुक्रवार, 26 अगस्त, 2022 • पूर्वाह्न 11.40 बजे से

–: विषय :–

आनुवांशिकी की वैधता : आधुनिक विज्ञान द्वारा

–: वक्ता :–

प्रो. ज्ञानेश्वर चौबे, आचार्य
प्राणि विज्ञान विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

शनिवार, 27 अगस्त, 2022 • पूर्वाह्न 11.40 बजे से

–: विषय :–

चौरी-चौरा जनक्रान्ति : भारतीय स्वाधीनता संग्राम की उपेक्षित महागाथा

–: वक्ता :–

डॉ. ओमजी उपाधयाय, निदेशक (शोध एवं प्रशासन)
भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

Vimarsh

An Interdisciplinary Journal

Volume 16 • Number 16 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2079 • September 2022

CONTENTS

Articles **Pages**

1. भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में श्रीगोरखनाथ मन्दिर का योगदान (महन्त दिग्विजयनाथ के विशेष सन्दर्भ में)
डॉ. पद्मजा सिंह 13
2. भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में बलिया के वीर शिरोमणि महानन्द मिश्र का योगदान (भारत छोड़ो आन्दोलन के विशेष सन्दर्भ में)
डॉ. अजय कुमार मिश्र.....21
3. 1857 का स्वातन्त्र्य समर : गोरखपुर परिक्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में
डॉ. प्रदीप कुमार राव.....41
4. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान गोरखपुर से प्रकाशित होने वाले पत्र-पत्रिकाओं का संक्षिप्त परिचय
अनिल कुमार त्रिपाठी.....52
5. राष्ट्रीय सुरक्षा : भारत के विशेष सन्दर्भ में
डॉ. अभिषेक सिंह.....56
6. स्वस्थ जीवन शैली एवं कैंसर से बचाव
डॉ. मदन लाल ब्रह्म भट्ट.....67
7. अशोक की धम्म विषयक अवधारणा पर परम्परा का प्रभाव
प्रो. राजवन्त राव.....76
8. भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा
डॉ. सलिल कुमार पाण्डेय.....81
9. मनुष्यता के सन्दर्भ में कर्म की उपयोगिता : कर्म योग
मनीष कुमार त्रिपाठी.....88
10. भारतीय समाज और मीडिया : एक समाज शास्त्रीय अध्ययन
डॉ. हनुमान प्रसाद उपाध्याय.....98
11. वर्तमान परिदृष्य में समाज तथा व्यक्ति के लिए मूल्य परक शिक्षा की आवश्यकता
डॉ. शिप्रा सिंह.....107
12. हार्मोन असंतुलन के उपचार में वानस्पतिक पदार्थों एवं योग का महत्व
शारदा रानी.....111
13. योग साधना में श्री गणेश-चिन्तन
रतन कुमार पाठक.....119
14. हर्षोत्तर कालीन थानेश्वर (647-1030 ई0 तक)
डॉ. इक्ष्वाकु प्रताप सिंह.....125
15. मौर्ययुगीन विवाह एवं स्त्रियों की अवस्था
डॉ. मनीषा शरण.....130
16. प्राचीन भारतीय दौत्य प्रणाली
डॉ. रामजी पासवान.....138

17. फूनान : कम्बुजदेश का प्रथम साम्राज्य
डॉ. सुबोध कुमार मिश्र.....142
18. Value Based Leadership
Major General A.K. Chaturvedi.....151
19. AN ARAHANT IN BUDDHISM
Dr. Mahesh Kumar Sharan.....159
20. Decision making in an organization: It's Role and Relevance
Dr. Niraj Kumar Singh.....165
21. Satisfaction in Public Distribution System Service of Uttar Pradesh With Special Reference to Gorakhpur District
Dr. Manjeshwar.....171
22. EFFECTS OF FOOD ADULTERATION ON HUMAN HEALTH
Ritika Tripathi.....180
23. Role of Plant Based Antioxidant in Prevention of Covid-19
Smita Dubey.....187
24. GROWING FINTECH MARKET IN INDIA
Chandan Kumar Thakur.....195

पुनर्पाठ विमर्श 2022

25. हिन्दुत्व की परिभाषा
विनायक दामोदर सावरकर.....203
26. भारत का भविष्य
स्वामी विवेकानन्द.....228
27. भारत विभाजन के गुनहगार
राम मनोहर लोहिया.....244
28. हिन्दुआ – सूर्य महाराणा प्रताप सिंह
कुंवर (डॉ.) नरेन्द्र प्रताप सिंह.....252

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में श्रीगोरखनाथ मन्दिर का योगदान (महन्त दिग्विजयनाथ के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. पद्मजा सिंह*

सार-संक्षेप : भारत शताब्दियों तक गुलाम रहा। बारहवीं शताब्दी के बाद भारत के अलग-अलग हिस्सों में विदेशी आक्रान्ताओं के राज्य स्थापित होते गये। बारहवीं शताब्दी से लेकर भारत की आजादी तक भारत के अहर्निश स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि भारतीय समाज एवं राज्यों ने कभी भी विदेशी दासता को मन से स्वीकार नहीं किया। शताब्दियों तक भारतीय दासता के विरुद्ध यह संघर्ष राज्य और समाज दोनों स्तरों पर जारी रहा। उल्लेखनीय है कि भारत के इस दीर्घकालीन स्वतन्त्रता संग्राम में मोक्ष की प्राप्ति के उद्देश्य से मोह-माया, घर-गृहस्थी एवं लौकिक संसार के समस्त वैभवों को त्यागकर तपस्यारत संन्यासियों ने भी शस्त्र एवं शास्त्र दोनों विद्याओं के साथ हिस्सा लिया। एक तरफ भारत का भक्ति आन्दोलन शास्त्र के आधार पर भारत की दासता से मुक्ति का भी अभियान है, वहीं दूसरी तरफ अनेक ऐसे प्रमाण मिलते हैं जब संन्यासियों ने विदेशी आक्रान्ताओं के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष किया। नाथपन्थ के योगियों की धारा इन्हीं शस्त्रधाारी अथवा चिमटाधारी संन्यासियों की है। ऐसे उल्लेख प्राप्त होते हैं कि गोरखनाथ से लेकर महन्त दिग्विजयनाथ तक नाथपन्थ के योगियों ने विदेशी आक्रान्ताओं से राष्ट्र एवं समाज रक्षा हेतु संघर्ष किया। 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम से लेकर भारत के आजाद होने के लगभग नौ दशकों के इतिहास में नाथपन्थ के योगी भी स्वतन्त्रता संग्राम के सिपाही के रूप में दिखाई देते हैं। नान्हू सिंह से दिग्विजयनाथ बने गोरक्षपीठाधीश्वर की पूरी जीवनयात्रा देश और समाज के लिए लड़ते हुए पूरी हुई। कहा जाता है कि 1916 से लेकर 1969 ई. तक भारत की कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना नहीं है जिसमें महन्त दिग्विजयनाथ का सक्रिय हस्तक्षेप न दिखाई देता हो। 1947 ई. तक अंग्रेजों से लड़ते हुए कांग्रेस की तुष्टीकरण की नीति, मुस्लिम लीग की कट्टरता और उसके अहिंसात्मक आन्दोलन का प्रतिरोध करते हुए महन्त दिग्विजयनाथ एक संन्यासी योद्धा के रूप में दिखाई देते हैं। उनकी मान्यता थी कि हिन्दुत्व ही भारत की राष्ट्रीयता है। हिन्दू संस्कृति के जीवन-मूल्यों से ही भारत राष्ट्र की पहचान है। अतः वे हिन्दुत्व और राष्ट्र को पर्याय मानते थे। उनकी स्पष्ट घोषणा थी, 'मैं तो हिन्दुत्व अथवा भारतीय संस्कृति एवं भारत राष्ट्र का वकील हूँ, संन्यासी होते हुए भी स्वतन्त्रता संग्राम एवं राजनीति में केवल इसलिए उतरा हूँ क्योंकि हिन्दू संस्कृति एवं सभ्यता अथवा भारत पर चारों ओर से प्रहार हो रहे हैं।' स्पष्ट है कि भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर के श्रीगोरखनाथ मन्दिर को केन्द्र बनाकर नाथपन्थ के संन्यासियों ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। नाथपन्थ एवं नाथपन्थी संन्यासियों के योगदान का प्रेरणा केन्द्र गोरखपुर का श्रीगोरखनाथ मन्दिर ही था। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी अवधारणा अथवा तथ्य को ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचना करने और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ने का प्रयत्न है।

बीज शब्द : मोक्ष, भक्तिआन्दोलन, नाथपंथ, गोरक्षपीठाधीश्वर, हिन्दुत्व, पूर्वी उत्तर प्रदेश, राष्ट्र, धर्म, सांस्कृतिक, राष्ट्रवाद, सभ्यता, संस्कृति, रंजक, आध्यात्म, भावाभिव्यक्ति।

*असि. प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

भारत की ऋषि परम्परा अद्वितीय है। भारतीय संस्कृति की रचना एवं विकास, भारतीय जीवन-मूल्य युगानुकूल समाज रचना के साथ-साथ राष्ट्र-निर्माण के सभी मौलिक तत्त्वों के विकास में भारत की ऋषि-परम्परा अग्रणी रही है। जब-जब समाज, राज्य एवं राष्ट्र को आवश्यकता पड़ी भारत के ऋषियों-मुनियों एवं सन्तों ने अपने साधनारत आश्रम से निकलकर समाज एवं राष्ट्र का नेतृत्व तथा उसका मार्गदर्शन किया।

मध्ययुगीन भारत का भक्ति-आन्दोलन और तदनन्तर भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में भारत के सन्तों, ऋषियों की भूमिका भारत की उसी प्राचीन ऋषि-परम्परा का प्रकटीकरण था। बंकिमचन्द्र चटर्जी के 'वन्देमातरम्' ने यह ध्यान आकृष्ट किया कि भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में संन्यासी भी योद्धा बनकर उभरे थे।[1] सत्य-अहिंसा के पुजारियों ने विदेशी सत्ता के विरुद्ध हथियार उठाया, किन्तु यह बहुत कम लोग जानते हैं कि ये संन्यासी कौन थे? यह तो और अज्ञात है कि इससे कई शताब्दियों पूर्व अपने स्थापना काल से नाथपन्थ के योगियों ने देश-रक्षा में युद्ध को अपने धर्म का अभिन्न हिस्सा माना। अलख निरंजन के उद्घोषक मुक्ति के लिए योग एवं आध्यात्मिक साधना में लीन, शान्ति-प्रेम-अहिंसा के पक्षधर नाथपन्थ के सन्त समाज-राष्ट्र रक्षा के लिए संग्राम का भी उद्घोष करते रहे तथा संग्राम करते रहे। नाथपन्थ के योगियों ने समय-समय पर सन्त एवं सैनिक की भूमिका में साधाना और संग्राम को एक साथ साधा तथा योगियों, साधुओं एवं संन्यासियों को सन्देश दिया कि जब भी धर्म, समाज तथा राष्ट्र खतरे में हो, तो गफ़ाओं, मठों, मन्दिरों की साधना के साथ-साथ स्वतन्त्रता संघर्ष का नेतृत्व करना भी धर्म है।

देश-रक्षा के लिए विदेशी अरब आक्रमणकारियों के विरुद्ध उदयपुर की पहाड़ी पर जुटे संन्यासियों को गोरखनाथ ने योग-साधना और देश-रक्षा दोनों का सन्देश दिया। उन्होंने कहा कि राष्ट्र-रक्षा में युद्ध भी योग है। विदेशी आक्रमणकारियों से लड़ने हेतु गोरखनाथ ने प्रत्येक घर से एक-एक नवयुवक को योगी सेना में आने का आह्वान किया। जब तुर्क सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का अत्याचार बढ़ रहा था, उसकी निरंकुश सत्ता का अट्टहास सुनाई पड़ रहा था, चित्तौड़ में रानी पद्मिनी का जौहर हो चुका था। इस युग में नाथपन्थ के योगी चर्पटनाथ ने योगी समूह का सैन्यीकरण किया। तुर्कों ने गोरखनाथ मन्दिर पर आक्रमण किया और युद्ध में नाथपन्थी संन्यासियों ने रक्त-तर्पण किया। गोरखनाथ मन्दिर की रक्षा हुई और उसका नव-निर्माण किया गया।

तुर्कशासक रजिया सुल्तान के अत्याचारों के विरुद्ध नाथपन्थ के योगी रावलपीर ने जनता को उपदेश दिया कि जन के न्याय और अधिकार के लिए लड़ना धर्म है। रावलपीर ने तत्कालीन विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचार के विरुद्ध जनता को जागरूक करते हुए कहा था कि बर्बरता जब दो जातियों के संघर्ष में खुलकर ताण्डव नृत्य करती है, तब प्रायः मृदु और उदार संस्कारों वाली जाति पराजित होती है। तुर्कों की विजय के पीछे इस अमानवीय बर्बरता का हाथ है। भारत की पराजय कौम की पराजय नहीं एक परिष्कृत मानवता की पराजय है। अतः मानवता की रक्षा के लिए

संघर्ष करो। ऐसे समय जब राष्ट्र संकट में हो, मानवता कलंकित हो रही हो तो अहिंसा की माला जपना समस्या का गलत समाधान कहलाता है। नम्र बनो अच्छा है, पर अपनी रक्षा में समर्थ बनना ज्यादा जरूरी है। इसी रावलपीर की स्मृति रावलपिण्डी में सुरक्षित है।

नाथपन्थी योगियों की राष्ट्र-रक्षा में सैनिक-साधना सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम और समर्थ गुरु रामदास तक होते हुए शिवाजी के रूप में प्रकट हुई। सन्त ज्ञानेश्वर को नाथपन्थी सैनिक-साधना गोरखनाथ से गहनीनाथ एवं निवृत्तिनाथ से होते हुए प्राप्त हुई थी। मध्ययुगीन भारत में नाथपन्थ के योगियों ने विदेशी आक्रान्ताओं का न केवल सैन्य प्रतिरोध किया, अपितु भारत की सांस्कृतिक-आध्यात्मिक थाती को बचाये रखा।

1857 के स्वातन्त्र्य समर में भी नाथपन्थी योगियों की भूमिका अत्यन्त महत्त्व की थी। उत्तर भारत के इस स्वातन्त्र्य संग्राम में गाँव-गाँव सारंगी लिये भरथरी के गीत गाते नाथपन्थी योगी सूचना-तन्त्र की महत्त्वपूर्ण कड़ी थे। संग्राम के प्रतीक रोटी और कमल एक गाँव से दूसरे गाँव ले जाने वाले नाथपन्थ के योगियों ने स्वतन्त्रता संग्राम को संगठित रूप से लड़ने में अपनी अद्वितीय भूमिका निभायी। सुभद्राकुमारी चौहान की जन-जन में प्रिय कविता 'बुन्देले हर बोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी-खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' में 'बुन्देले हर बोले' अलख-निरंजन, हर-हर महादेव बोलने वाले नाथपन्थी योगी ही हैं, जो स्वातन्त्र्य समर के गीत गाकर भारत की स्वाधीनता का स्वप्न दिखाते थे।

1855 से 1880 ई. तक गोरखनाथ मन्दिर के महन्त गोपालनाथ जी भारत के स्वतन्त्रता संग्राम एवं संन्यासी सेना के प्रमुख सिपाही थे। 'वन्देमातरम्' के संन्यासी सैनिकों में सम्मिलित महन्त गोपालनाथ जी को ब्रिटिश सरकार द्वारा कई बार आरोपित किया गया। अंग्रेजशासकों की वे रडार पर थे। योगीराज बाबा गम्भीरनाथ स्वाधीनता के लिए लड़ रहे क्रान्तिकारियों के मार्गदर्शक थे। श्री गोरखनाथ मन्दिर पूर्वी उत्तर प्रदेश में क्रान्तिकारियों के आश्रय पाने का प्रमुख स्थान था। इन्हीं परिस्थितियों में महन्त दिग्विजयनाथ जी स्वाधीनता संग्राम के सिपाही बने।[2] गोरक्षपीठ के पीठाधीश्वर महन्त दिग्विजयनाथ मेवाड़ के महाराणा परिवार में जन्मे थे। छः वर्ष की अवस्था में वे गोरक्षपीठ को प्राप्त हुए थे। उनका पालन-पोषण योगीराज बाबा गम्भीरनाथ ने किया। गोरक्षपीठ में स्वतन्त्रता संग्राम के युवा क्रान्तिकारियों का आना-जाना, योगीराज बाबा गम्भीरनाथ जी के साथ उनके सम्पर्क को देख रहे नाथपन्थ के इस पीठ के भावी-भविष्य का मन स्वतन्त्रता संग्राम की चिंगारी से बच न सका।[3] नाथपन्थ के योगियों की परम्परा में राष्ट्रवाद और भारत की स्वतन्त्रता के लिए उनके अनवरत संघर्ष का वाहक महन्त दिग्विजयनाथ जी भी बने। बचपन में नान्हू सिंह के नाम से चर्चित दिग्विजयनाथ अत्यन्त साहसी और निर्भीक व्यक्ति थे।[4] श्री नान्हू सिंह ने हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद सेण्ट एण्ड्रयूज कॉलेज में प्रवेश लिया। इसी समय महात्मा गाँधी भारत के स्वतन्त्रता

संग्राम की अलख जगाते हुए 1920 में गोरखपुर आये। श्री नान्हू सिंह ने 'वालेण्टियर कोर' का गठन किया एवं स्वयं उसके कप्तान बने। इस वालेण्टियर कोर का गठन महात्मा गाँधी के गोरखपुर के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए किया गया था।[5] महात्मा गाँधी के इस कार्यक्रम को 1921 में फलतापूर्वक सम्पन्न कराने के पश्चात् ही श्री नान्हू सिंह ने महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर कॉलेज का बहिष्कार कर दिया। किन्तु श्री नान्हू सिंह का व्यक्तित्व किसी बनी बनायी लकीर पर चलना नहीं था, चौरीचौरा की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना ने यह सिद्ध कर दिया कि राणा नान्हू सिंह महात्मा गाँधी के समझौतावादी सिद्धान्तों के पोषक न थे।[6] गोरखपुर के चौरीचौरा में असहयोग आन्दोलन के दमन की जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई। आन्दोलनकारियों का नेतृत्व करने वालों में श्री नान्हू सिंह का नाम महत्त्वपूर्ण था। 4 फरवरी 1921 को ब्रिटिश हुकूमत के दमन के विरुद्ध चौरीचौरा में आन्दोलन की जो यज्ञाग्नि प्रज्वलित हुई उसमें कुछ आहुति श्री नान्हू सिंह ने भी डाली थी।[7] चौरीचौरा आन्दोलन के आन्दोलनकारियों में से जिन्हें अभियुक्त बनाकर फाँसी की सजा देने का निश्चय किया गया था, उनमें एक नाम राणा नान्हू सिंह का भी था। यद्यपि कि शिनाख्त के अभाव में वे मुक्त हुए।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के इस युवा सैन्य-संन्यासी का मन कांग्रेस के इस्लामी तुष्टीकरण की नीति का विरोधी बनता गया और अन्ततः वे नान्हू सिंह से महन्त दिग्विजयनाथ बने। इस युवा संन्यासी ने स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय हिन्दू महासभा की राह पकड़ ली।[8] यह वही समय था जब राष्ट्र राष्ट्रीयता के दर्शन में हिन्दू-मुस्लिम के आधार पर द्विराष्ट्र के सिद्धान्त का बीजारोपण किया जा रहा था। महन्त दिग्विजयनाथ ने भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में तीन मोर्चों पर लड़ना प्रारम्भ किया-(1) सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के माध्यम से (2) शिक्षा के माध्यम से (3) हिन्दू महासभा के माध्यम से। भारत के राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के वैचारिक अधिष्ठान को मजबूत करने हेतु भारतीय संस्कृति में प्रचलित राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के मूल तत्त्वों की पुनर्प्रतिष्ठा के प्रयत्न प्रारम्भ किये। महन्त दिग्विजयनाथ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के कट्टर समर्थक थे। हिन्दुत्व को वे भारत की राष्ट्रीयता का पर्याय मानते थे।[9] उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि राष्ट्रीयता का निर्माण विदेशी राष्ट्रों की संस्कृति, सभ्यता, मनोभावना एवं पृथक-पृथक महत्त्वाकाँक्षाओं से कभी नहीं होता अपितु किसी भूखण्ड में निवास करने वाले उस समूह को ही राष्ट्र कहा जाता है जो उस भूखण्ड की संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, इतिहास आदि को मानता हुआ परस्पर एकता की अनुभूति रखता हो।[10] उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि भारत में अनेक आक्रमणकारियों से संघर्ष करने के पश्चात् भी जो हिन्दुत्व आज जीवित है उसका मूल कारण हमारी अपनी संस्कृति, सभ्यता, परम्परा और इतिहास आदि राष्ट्रीय तत्त्वों के प्रति अटूट निष्ठा है और आज भी हम राष्ट्रीयता के उपर्युक्त मौलिक तत्त्वों के बल पर ही राष्ट्र को सबल बना सकते हैं। उन्होंने अपनी इस वैचारिक अवधारणा को लेकर भारत के स्वतन्त्रता संग्राम को वैचारिक धार दी।

महन्त दिग्विजयनाथ स्वतन्त्रता संग्राम के उन मनीषियों की कतार में खड़े थे जो भारत की स्वतन्त्रता के लिए भारतीय संस्कृति केन्द्रित शिक्षा के बल पर भारतीय युवाओं को प्रेरित करने का अभियान प्रारम्भ कर चुके थे। स्वामी विवेकानन्द, महामना मदन मोहन मालवीय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्री अरविन्द इत्यादि ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था एवं भारत के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अलख जगाने हेतु शिक्षा को एक मजबूत हथियार बनाया। महन्त दिग्विजयनाथ ने सन् 1932 ई. में इसी परम्परा के अन्तर्गत महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् की नींव रखी तथा भारतीयता केन्द्रित शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत भारतीय युवाओं को प्रशिक्षित करने का काम प्रारम्भ किया।[11]

स्वतन्त्रता संग्राम का उनका तीसरा मोर्चा हिन्दू महासभा का मंच था। उल्लेखनीय है कि हिन्दू महासभा ने जहाँ एक ओर क्रान्तिकारी आन्दोलन द्वारा देश को स्वतन्त्र कराने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मोर्चा लिया, वहीं दूसरी तरफ भारत के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के वैचारिक अधिष्ठान पर देश को संगठित करने का प्रयत्न किया। हिन्दू महासभा पूर्ण स्वाधीनता से कम किसी बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी। हिन्दू महासभा के मंच से महामना मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, भाई परमानन्द, रामानन्द चटर्जी, उत्तम भिक्षु, डॉ. वी.एस. मुंजे, बैरिस्टर बोपटकर, स्वातन्त्र्यवीर सावरकर जैसे स्वतन्त्रता संग्राम के नायकों ने अपनी आवाज बुलन्द की। महन्त दिग्विजयनाथ की क्रान्तिकारी विचारधारा का मेल स्वाभाविक रूप से हिन्दू महासभा के स्वतन्त्रता संग्राम के वैचारिक अधिष्ठान से था। महन्त दिग्विजयनाथ हिन्दू महासभा के माध्यम से भारत के आजादी की लड़ाई में अपनी अतुलनीय भूमिका निर्धारित करते रहे।

महन्त दिग्विजयनाथ मेवाड़ के महाराणा संग्राम सिंह और महाराणा प्रताप के प्रसिद्ध सिसोदिया वंश में उत्पन्न हुए थे। गोरखपुर को केन्द्र बनाकर स्वतन्त्रता के आन्दोलन में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध अनवरत संघर्ष चलाने के वे केन्द्रबिन्दु थे। 1939 में प्रारम्भ हुए द्वितीय विश्वयुद्ध के समय उत्तर प्रदेश में महन्त दिग्विजयनाथ ने हिन्दू समाज का नेतृत्व किया। गोरखपुर में गोरखनाथ मन्दिर के समीप के मोहल्ले का नाम जाहिराबाद रखकर जब इस्लामी झण्डा के साथ विभाजनकारीशक्तियाँ सक्रिय हुई, महन्त दिग्विजयनाथ के संगठित विरोध और लगभग 25,000 राष्ट्रभक्तों के एकत्रित होकर विरोध करने पर तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर द्वारा हस्तक्षेप किया गया और विभाजनकारीशक्तियाँ पराजित हुई।[12]

महन्त दिग्विजयनाथ ने हिन्दू महासभा को राष्ट्रीय मंच मानते हुए स्वतन्त्रता संग्राम में अपनी सक्रिय भूमिका सुनिश्चित करने के साथ-साथ भारत के सामाजिक, शैक्षिक परिवर्तन का कार्य करते रहे। उल्लेखनीय है कि हिन्दू महासभा क्रान्तिकारी आन्दोलन की पक्षधर थी और देश को स्वतन्त्र कराने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद से किसी भी प्रकार के संघर्ष की हिमायती थी साथ ही वह इस्लामी राष्ट्रवाद के आधार पर देश विभाजन की प्रबल विरोधी थी। हिन्दू महासभा को पूर्ण

स्वाधीनता से कम कुछ भी स्वीकार नहीं था। भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़ते इस्लामी कट्टरता एवं हिन्दू समाज की सुरक्षा और संरक्षा के प्रति एकमात्र हिन्दूमहासभा ही मुखर थी। मोपला और कोहाट में जब हिन्दुओं का कत्लेआम हुआ, सिन्ध में हिन्दुओं पर भारी अत्याचार हुए, कश्मीर में शेख अब्दुल्ला द्वारा तथा हैदराबाद में निजाम के द्वारा हिन्दू समाज के साथ अन्याय किया गया, नोआखली में हिन्दू सरेआम मारे गये, ढाका, रावलपिण्डी, लाहौर व कराची में हिन्दुओं की नृशंस हत्याएँ हो रही थीं, कांग्रेस, मुस्लिम लीग और अंग्रेज तीनों मिलकर पाकिस्तान के निर्माण का स्वरूप तैयार कर रहे थे, उस समय हिन्दू महासभा ही एकमात्र ऐसा राजनीतिक दल था जिसने भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में राष्ट्रीय स्वर को मुखर किया।[13]

महन्त दिग्विजयनाथ का दृढ़ विश्वास था कि धर्म और राजनीति एक-दूसरे के पूरक हैं। इसलिए आजीवन वे धर्म और राजनीति को एक साथ लेकर चले। 1931 की जनगणना के अवसर पर हिन्दुओं के व्यापक हितों की रक्षा के लिए उन्होंने संघर्ष किया। साइमन कमीशन का उन्होंने विरोध किया। 1942 की क्रान्ति में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ डटकर खड़े हुए। नेहरू-लियाकत पैक्ट का विरोध किया। भारत-विभाजन के वे मुखर विरोधी थे।[14]

महन्त दिग्विजयनाथ आगरा प्रान्तीय हिन्दू महासभा के मन्त्री, संयुक्त प्रान्तीय हिन्दू महासभा के मन्त्री और फिर अध्यक्ष चुने गये। 1939 ईस्वी में डॉ. मुंजे की अध्यक्षता में उन्होंने कमिश्नरी हिन्दू महासभा का आयोजन किया। इसी वर्ष उन्होंने अखिल भारतवर्षीय अवधूत वेष बारहपन्थ योगी महासभा की स्थापना की और साधुओं तथा योगियों को नवीन दशा प्रदान करते हुए उन्हें निष्क्रियता और एकान्तिकता के स्थान पर समाजसापेक्ष कार्यों एवं राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति प्रेरित किया।

1942 में महात्मा गाँधी के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय जब समूचा राष्ट्र ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध कर रहा था, महन्त दिग्विजयनाथ ने भी इस ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी आन्दोलन का नेतृत्व किया। ब्रिटिशशासन द्वारा इन पर जर्मनी और जापान को मदद देने का आरोप लगाया गया तथा उनके विरुद्ध गिरफ्तारी का वारण्ट निकाला गया। गोरखपुर के तत्कालीन डी.आई. जी. के सहयोग से वारण्ट वापस हुआ।[15] 1944 में गोरखपुर में महन्त दिग्विजयनाथ द्वारा हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशन का आयोजन किया गया। इस अधिवेशन में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी सरीखे नेता उपस्थित हुए।

नाथपन्थ के इस संन्यासी ने भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में राष्ट्र की अवधारणा एवं भारतीय संस्कृति के जिन मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए वे संघर्षरत रहे, आजाद भारत में भी अपने अन्तिम साँस तक वे लड़ते रहे। महन्त दिग्विजयनाथ ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा की पुर्नव्याख्या किया और भारत की सांस्कृतिक आजादी की लड़ाई में भी नायक बने रहे। उनके

जीवनकाल की कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना नहीं है जिस पर महन्त दिग्विजयनाथ का स्वर मुखर न हुआ हो।

महत्त्वपूर्ण शब्दः

मोक्ष - जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति। शास्त्रों और पुराणों के अनुसार जन्म और मरण के बन्धन से छूट जाना ही मोक्ष है। तात्पर्य यह है कि सब प्रकार के सुख-दुःख और मोह आदि का छूट जाना ही मोक्ष है।

अलख निरंजन-'अलख' का अर्थ है-अगोचर, निरंजन का अर्थ है-परमात्मा जो देखा न जा सके। 'निरंजन' का अर्थश्वेत, रंगहीन, चैतन्य प्रकाशमान होना है। परमतत्त्व चैतन्य प्रकाशमय एवं रंगहीन होता है। परमतत्त्व का बोध करने वाला शब्द 'निरंजन' है। 'अलख निरंजन' गुरु गोरखनाथ के शब्द हैं। इसका अर्थ हुआ ज्ञान का चमकीला तेज, जिसे देख पाना सम्भव न होते हुए भी उसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है।

जौहर - मुस्लिम आक्रान्ताओं के साथ युद्ध में जीत की आशा समाप्त होने पर राजपूत वीरांगनाएँ अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अग्नि में कूदकर आत्मदाह कर 'जौहर' व्रत का पालन करती थीं। सर्वप्रथम 1303 ई. में मेवाड़ की रानी पद्मावती ने चित्तौड़ में जौहर किया था।

हिन्दू महासभा - यह एक भारतीय हिन्दू राष्ट्रवादी संगठन है। इसकी स्थापना 1915 में हुई थी। विनायक दामोदर सावरकर इसके अध्यक्ष रहे। इसके संस्थापक सदस्यों में विनायक दामोदर सावरकर, लाला लाजपत राय, पं. मदन मोहन मालवीय थे। हिन्दू महासभा का प्रमुख उद्देश्य था-'अखण्ड हिन्दुस्तान की स्थापना'।

नेहरू-लियाकत पैक्ट- 1950 में भारत के विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान के बीच अल्पसंख्यकों के समान नागरिक अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए द्विपक्षीय सन्धि थी।

रावलपीर - तुर्कशासक रजिया सुल्तान के अत्याचारों के विरुद्ध रावलपीर ने जनता को उपदेश दिया- ''जन के न्याय और अधिकार के लिए लड़ना धर्म है।'' रावलपीर की स्मृति पाकिस्तान के प्रमुखशहर रावलपिण्डी में सुरक्षित है, जो मेवाड़ राज्य के संस्थापक व वीर योद्धा बप्पा रावल के नाम पर पड़ा।

नान्हू सिंह- महन्त दिग्विजयनाथ जी का वास्तविक नाम नान्हू सिंह था। बाद में भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में इनके अदम्य साहसपूर्ण नेतृत्व ने इन्हें दिग्विजयनाथ बना दिया।

महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद- भारतीय संस्कृति केन्द्रित शिक्षा के बल पर भारतीय युवाओं को प्रेरित करने एवं भारत के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अलख जगाने हेतु महन्त दिग्विजयनाथ ने सन् 1932 ई. में महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् की नींव रखी।

गोरक्षपीठाधीश्वर- महायोगी गोरखनाथ की तपस्थली गोरखपुर उत्तर प्रदेश में श्री गोरखनाथ मन्दिर है। श्री गोरखनाथ मन्दिर के महन्त महायोगी गोरखनाथ के प्रतिनिधिा माने जाते हैं और वे श्री गोरक्षपीठाधीश्वर पद से विभूषित होते हैं।

चिमटाधारी संन्यासी- नाथपन्थ के योगी सामान्यत: त्रिशूल के साथ-साथ चिमटा भी धाारण करते हैं। इसीलिए नाथपन्थ के उन योगियों को जो चिमटा धाारण करते हैं, उन्हें चिमटाधाारी संन्यासी भी कहा जाता है।

वॉलण्टियर कोर- 1916 ई. में गोरखपुर में महात्मा गाँधी के आगमन के समय नान्हू सिंह (महन्त दिग्विजयनाथ) ने उनके कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए वॉलण्टियर कोर का गठन किया था। ■

संदर्भ-सूची

1. राव प्रदीप, नाथपन्थ, महायोगी गुरु श्रीगोरखनाथ शोध पीठ, दीनदयाल उपाधयाय गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर द्वारा प्रकाशित, वर्ष 2019, पृ. 31
2. वही, पृ. 31-33
3. योगवाणी, राष्ट्रीय एकता विशेषांक, वर्ष 13 अंक 1-2, 1988, पृ. 26-27
4. सिंह, कन्हैया, गोरखनाथ : जीवन और दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज 2020, पृ. 158
5. महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ, श्रीगोरक्षनाथ मन्दिर द्वारा प्रकाशित, वि.सं. 2029, पृ. 124-25
6. गुप्त, सदानन्द प्रसाद, राष्ट्रीयता के अनन्य साधक महन्त अवेद्यनाथ, श्री गोरखनाथ मन्दिर द्वारा प्रकाशित, 2013, पृ. 207
7. गुप्त, सदानन्द प्रसाद, राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 37-39
8. महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ, श्रीगोरक्षनाथ मन्दिर द्वारा प्रकाशित, वि.सं. 2029, पृ. 127
9. जुनेजा, वेद प्रकाश, नाथ सम्प्रदाय और साहित्य, श्री गोरखनाथ मन्दिर द्वारा प्रकाशित, वि.सं. 2042, पृ. 354
10. महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ, श्रीगोरक्षनाथ मन्दिर द्वारा प्रकाशित, वि.सं. 2029, पृ. 194
11. राव, प्रदीप, नाथपन्थ का समाज दर्शन, महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथशोधपीठ, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, पृ. 38
12. महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ, श्रीगोरक्षनाथ मन्दिर द्वारा प्रकाशित, पृ. 62
13. गुप्त, सदानन्द प्रसाद, राष्ट्रीयता के अनन्य साधक महन्त अवेद्यनाथ, भाग-एक, पृ. 17
14. महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ, श्रीगोरक्षनाथ मन्दिर द्वारा प्रकाशित, वि.सं. 2029, पृ. 170
15. महन्त दिग्विजयनाथ, श्रीगोरक्षनाथ मन्दिर द्वारा प्रकाशित, पृ. 28

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में बलिया के वीर शिरोमणि महानन्द मिश्र का योगदान

(भारत छोड़ो आन्दोलन के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. अजय कुमार मिश्र*

सार-संक्षेप : 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान संयुक्त प्रान्त के बलिया जिले की 21 दिनों की आजादी में जिन लोगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी, उन नायकों में महानन्द मिश्र एक महत्त्वपूर्ण नाम है। बलिया विद्रोह के कप्तान महानन्द मिश्र उत्थान संघ जैसे अन्तर्प्रान्तीय क्रान्तिकारी संगठन के सदस्य रह चुके थे तथा उपकप्तान विश्वनाथ चौबे, झारखण्डे राय द्वारा पुनर्गठित एच.एस.आर.ए. जैसे क्रान्तिकारी संगठन के सदस्य रहे थे। अगस्त क्रान्ति में बलिया पर अधिकार करने के बाद महानन्द मिश्र के साथ जो अमानवीय व्यवहार एवं अत्याचार किया गया उसको पढ़कर या सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारा यह दुर्भाग्य है कि अगस्त क्रान्ति के इस अप्रतिम पुरोधा को इतिहास के पन्नों में दरकिनार कर दिया गया है। यह आलेख महानन्द मिश्र के व्यक्तित्व एवं उनके साथ हुए अमानवीय साम्राज्यवादी अत्याचार पर एक दृष्टिपात करने के लिए है।

बीज शब्द : अगस्त क्रांति, बलिया, कांग्रेस, एस.जी.आई.बी, सी.आई.डी. सेवा दल

जब भी अगस्त क्रान्ति 1942 का सन्दर्भ आता है, उसमें भारत के तीन भू-भाग, संयुक्त प्रान्त के बलिया जिले, बंगाल के मेदिनीपुर और महाराष्ट्र के सतारा जिले का उल्लेख अवश्य ही होता है। इनमें बंगाल के मेदिनीपुर और महाराष्ट्र के सतारा में भौगोलिक परिस्थितियाँ गुरिल्ला युद्ध योग्य तो हैं, लेकिन संयुक्त प्रान्त का बलिया जिला भौगोलिक रूप से ऐसा नहीं है कि यहाँ गुरिल्ला युद्ध अथवा किसी अन्य तरह से शासन के विरुद्ध प्रतिरोध किया जा सके। किन्तु इन तीनों भू-भागों में संयुक्त प्रान्त का बलिया जिला एकमात्र ऐसा जिला था, जहाँ ब्रिटिश शासन को आत्मसमर्पण करना पड़ा। यदि राष्ट्रीय स्तर पर अगस्त क्रान्ति के आह्वान और गाँधी के नारों 'करो या मरो' और 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' के कारकों के अनुरूप पूरे देश में अगस्त क्रान्ति को सफल होना चाहिए था किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इसके पीछे स्थानीय कारक भी जिम्मेदार रहे। बलिया में अगस्त क्रान्ति का एक रोचक पहलू यह है कि कांग्रेस कौमी सेवा दल, कांग्रेस का एक संगठन होने के बाद भी इसके तत्कालीन कप्तान महानन्द मिश्र और उपकप्तान विश्वनाथ चौबे के नेतृत्व में एक क्रान्तिकारी

*आचार्य, इतिहास विभाग, मजीदुन्निशा गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कोपागंज, मऊ

संगठन के रूप में उभरा और अगस्त क्रान्ति बलिया जिले में सफल होने में इसका एक महत्त्वपूर्ण योगदान था।

प्रारम्भिक जीवन

महानन्द मिश्र का जन्म 1911 में बलिया शहर के जॉपलिनगंज मोहल्ले में पंचम मिश्र के पुत्र के रूप में हुआ था। मात्र 4 वर्ष की अवस्था में उनकी माता का देहान्त हो गया था। इनके परिवार का भरण-पोषण बालेश्वर जी के मन्दिर में चढ़ावा और थोड़ी-सी जमीन के सहारे होता था। माँ के न रहने और पिता के पुजारी होने के कारण इनकी देखभाल या इनके कार्य-कलापों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया और उनका बचपन मोहल्ले के बच्चों के बीच धींगा-मुश्ती करने में बीता।[1] जिसके कारण जब वे पढ़ने गये तो उनका पढ़ाई में मन न लगने के कारण उनको प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक ने एक कक्षा नीचे कर दिया। जिसके बाद उन्होंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी और आजीविका के लिए सी.आई.डी. के इन्स्पेक्टर मायाराम के यहाँ भोजन बनाने लगे।[2] वर्ष 1927 में बलिया के जिलाधिकारी आर.टी. शिवदेसानी की अदालत में चित्तू पाण्डेय पर एक राजद्रोह का मुकदमा चला। इस मुकदमे में जिलाधिकारी द्वारा चित्तू पाण्डेय से पूछा गया कि बलिया में आपको कितने लोग जानते हैं। इस पर चित्तू पाण्डेय ने जवाब दिया कि "बलिया जिले की आबादी 9 लाख है। इसमें कोई अभागा ही होगा जो मुझे न जानता हो।" उस अदालत में कार्यवाही देख रहे महानन्द मिश्र एक दर्शक के रूप में उपस्थित थे। पाण्डेय जी के इस उत्तर का महानन्द मिश्र पर बहुत असर पड़ा तथा उन्होंने उसी समय से देश सेवा में अपना सर्वस्व बलिदान करने का प्रण ले लिया।[3] 1930 में गाँधी जी के आह्वान पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इसमें महानन्द मिश्र ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, जिसके कारण उन्हें 1930 में छः महीने की सजा और तीस रुपया जुर्माना का दण्ड सुनाया गया।[4]

क्रान्तिकारी गतिविधियाँ

भगत सिंह की शहादत पर गंगा के पावन तट पर श्रद्धासुमन अर्पित किये जाने से जिला प्रशासन और भी अधिक सतर्क हो गया। 19 दिसम्बर 1931 को बलिया शहर के चीनी के थोक व्यापारी पूरन मल मारवाड़ी के यहाँ शाम को 9:00 बजे डकैती पड़ी। इस डकैती में कोई धनराशि लूटी नहीं गयी। मौके पर पकड़े गये एक व्यक्ति हरिकान्त लाल ने पुलिस को पूछताछ के दौरान इस घटना में बलिया जिला कांग्रेस कमेटी के मूर्धन्य नेताओं ठाकुर जगन्नाथ सिंह और पं. चित्तू पाण्डेय को संलिप्त बताया, जिसे आधार मानकर बलिया के तत्कालीन एस.पी. ने इसे राजनीतिक डकैती मानते हुए डी.आई.जी. सी.आई.डी. से सी.आई.डी. जाँच कराने का अनुरोध किया। पूरनमल द्वारा लिखायी गयी प्रथम सूचना आख्या निम्नवत् है- "19 दिसम्बर 1931 की शाम को 9:00 बजे जब वादी, जो बलिया में चीनी का व्यापारी है तथा जिसकी दुकान शहर के बीच में है, अपनी गद्दी पर बैठा हुआ था तथा उसके कुछ कर्मचारी दिन भर हुई बिक्री का हिसाब मिला रहे थे एक

आदमी मुसलमान के भेष में मुँह पर काला कपड़ा बाँधे दुकान के अन्दर घुसा। उसके साथ दो और आदमी भी थे जिनके भी चेहरे ढके थे। दुकान में घुसते ही उन लोगों ने धन की माँग की तथा धमकी भी दी। वादी पिछले साल ही इन लोगों को पाँच सौ रुपया दे चुका था। वादी ने ध न देने से मना कर दिया। इस पर उनके नेता ने एक स्टाम्प पेपर निकाल कर दिया तथा कहा कि लिख दो हम धन नहीं देंगे तथा हम पहले ही धन दे चुके हैं। इसी बीच उन लोगों ने कैश बॉक्स खुलवा कर देखा, उसमें कुछ भी नहीं था और वे धमकी देकर तथा इस बात को किसी से बताने पर सजा भुगतने के लिए तैयार रहने को कहकर चले गये।"[5]

इस घटना स्थल पर गिरफ्तार किये गये व्यक्ति हरिकान्त लाल ने पुलिस को दिये गये अपने बयान में इस काण्ड में रामलच्छन तिवारी, बालेश्वर सिंह, महादेव प्रसाद, शिवदत्त मिश्र, महानन्द मिश्र, यमुना सिंह, इन्द्रदेव शुक्ल, किसुन सिंह व हीरा दुसाध के नामों को बताने के साथ-साथ यह भी कहा कि इस काण्ड की जानकारी जगन्नाथ सिंह (बड़की सेरिया बलिया) और चित्तू पाण्डेय (रकटू चक बैना, बलिया) को भी है। ये दोनों व्यक्ति बलिया जिला कांग्रेस समिति के शीर्षस्थ नेताओं में थे। फलस्वरूप बलिया के एस.पी. ने इसे राजनीतिक डकैती माना। इस घटना के सन्दर्भ में जिला पुलिस ने डी.आई.जी., सी.आई.डी. को निम्न तार भेजा- "19 दिसम्बर की रात को बिना हथियार के स्थानीय जिला कांग्रेस के युवकों ने राजनीतिक डकैती डाली। एक व्यक्ति घटना स्थल पर गिरफ्तार, कुल 13 गिरफ्तारियाँ, सी.आई.डी. के इंस्पेक्टर को जाँच के लिए भेजें।"[6]

जिन लोगों पर यह मुकदमा चलाया गया वे थे- बालेश्वर सिंह, रामलच्छन तिवारी, महादेव तिवारी, शिवदत्त मिश्र, महानन्द मिश्र, जमुना सिंह, इन्द्रदेव शुक्ल, चित्तू पाण्डेय, जगन्नाथ सिंह, हीरा दुसाध, नन्दकिशोर सिंह और जगमोहन सिंह। पुलिस के इतने सतर्क रहने तथा ताना-बाना बुनने के बाद भी हरिकान्त लाल व महानन्द मिश्र को छोड़कर शेष सभी अभियुक्तों की जमानत मंजूर हो गयी।[7] हरिकान्त लाल सरकारी गवाह था, जबकि महानन्द मिश्र की जमानत इसलिए नहीं मंजूर की गयी कि उनके विरुद्ध पुलिस ने टिप्पणी की थी कि यदि "यदि महानन्द मिश्र जमानत पर छोड़ दिये गये तो पुलिस को गवाह नहीं मिलेंगे।"[8] डी.आई.जी. बनारस को इस घटना के अभियुक्तों को छोड़ दिये जाने के कारणों पर स्पष्टीकरण देते हुए एस.पी. बलिया ने लिखा था कि- 'हम केस को सम्बन्धित न्यायालय में सही ढंग से प्रस्तुत नहीं कर पाये। कालान्तर में मुकदमे की सुनवाई के पश्चात् इस समूचे प्रकरण को पुलिस का बुना गया ताना-बाना बताते हुए बलिया के सेशन जज 'मित्र' ने अपने फैसले दिनांक 31.03.1933 में सभी को बाइज्जत बरी कर दिया।[9]

इस सम्पूर्ण घटनाक्रम पर एक निष्पक्ष विचार करने से स्पष्ट होता है कि संयुक्त प्रान्त के इस सुदूर पूर्ववर्ती जिले में 'आजाद' व 'भगत सिंह' की शहादत से जन-आक्रोश परिलक्षित होना प्रारम्भ हो गया था, जिसमें स्थानीय उग्रपन्थी कांग्रेसी नेताओं की भी सक्रिय भागीदारी थी। साथ ही साथ स्थानीय स्तर पर क्रान्तिकारी गतिविधियाँ शुरू हुईं किन्तु मार्गदर्शन के अभाव में इन गतिविधि

यों के संचालन में व्यावहारिक अवरोध आए जो कालान्तर में गोकुल भाई के यहाँ आने तथा उत्थान संघ के गठन से दूर हुई। यद्यपि इन त्रुटियों का लाभ इस मुकदमे में मिला तथा विद्वान् जज ने इस पूरे घटनाक्रम को पुलिस का बुना हुआ ताना-बाना मानकर सभी लोगों को बरी कर दिया। इस काण्ड से जिले स्तर पर एक और नायक का उदय हुआ जिसकी जमानत पुलिस की एक टिप्पणी के कारण अन्त तक नहीं हुई। वे थे अपने उग्र स्वभाव के लिए प्रसिद्ध अद्वितीय संगठनकर्ता पं. महानन्द मिश्र।

उत्थान संघ और महानन्द मिश्र

बलिया राजनीतिक डकैती से बरी होने के पश्चात् महानन्द मिश्र ने आजीविका के साधन के लिए बलिया में जॉपलिनगंज मोहल्ले में एक होटल खोला जो परोक्ष रूप से क्रान्तिकारियों की शरणस्थली बन गया था।[10] इसी बीच बलिया के गाँधी आश्रम में गोकुल भाई नाम के एक क्रान्तिकारी का आगमन हुआ। गोकुल भाई का सम्बन्ध चन्द्रशेखर आजाद से था।[11] 'उत्थान संघ' जिसका मुख्यालय बलिया में था, एक अन्तर्प्रान्तीय संगठन था। इसके प्रवर्तकों गोकुल भाई व स्वामी भगवान का 'आजाद' से व्यक्तिगत सम्पर्क था। गोकुल भाई बनारस के निवासी थे तथा गाँधी जी द्वारा अचानक चौरी-चौरा की घटना के पश्चात् उद्विग्न युवकों मे से एक थे। स्वामी भगवान का मूलनाम चन्द्रमा प्रसाद सिंह था, वे बलिया जिले की रसड़ा तहसील के जाम ग्राम के निवासी थे तथा ब्रिटिश मिलिटरी सर्विस में कार्यरत थे। मेरठ में नियुक्ति के दौरान वे गेंदालाल दीक्षित के 'मातृवेदी' संगठन के साथ अपरोक्ष रूप से जुड़ गये थे। ब्रिटिश गुप्तचरों को उनके इस संगठन से जुड़े होने की जानकारी प्राप्त होने के पूर्व ही उन्होंने सेना की सेवा से त्यागपत्र दे दिया था, तथा बिंदकी (जिला फतेहपुर) में स्वामी भगवान के नाम से आश्रम बनाकर रहने लगे थे। कालान्तर में वे गाजीपुर आ गये जहाँ प्रसिद्ध कांग्रेसी नेताओं जैसे गजानन्द मारवाड़ी व इन्द्रदेव त्रिपाठी आदि के सम्पर्क में आकर रहने लगे थे।[12]

उत्थान संघ का मुख्यालय बलिया में था। गाजीपुर जिले के गडुआ-मकसूदपुर निवासी बेनीमाधव राय इन दोनों व्यक्तियों के मध्य सम्पर्क सूत्र का कार्य करते थे।[13] एच.एस.आर.ए. की मूल भावनाओं के अनुरूप इस संगठन ने कबीरदास के निम्न दोहे को अपने प्रेरणास्रोत दोहे के रूप में स्वीकार किया था-

कबिरा खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूँके आपुनो, चले हमारे साथ।।[14]

आजाद के निकटस्थ होने के कारण इन दोनों व्यक्तियों का देश के अन्य भागों के क्रान्तिकारियों से भी व्यक्तिगत सम्पर्क था, जिसके कारण यह संगठन एक अन्तर्प्रान्तीय संगठन बन गया था। इन लोगों की बढ़ती हुई कार्यवाहियों एवं सन्देह के आधार पर पुलिस ने अपने एक

मुखबिर देशराज तिवारी पुत्र जीतनलाल तिवारी, निवासी ग्राम इस्माइलपुर, थाना–जिरिया, जिला–हमीरपुर को इस दल में शामिल करा दिया था, जो इन लोगों का विश्वासपात्र बनकर इन लोगों, विशेष तौर पर गोकुल भाई की गतिविधियों की जानकारी पुलिस को देता रहता था।[15] इन लोगों के विश्वासपात्र होने के बाद भी देशराज उस कूट लिपि, जिसका प्रयोग गोकुल भाई करते थे, को समझ नहीं पाया था। इस दल के सशस्त्र प्रशिक्षण केन्द्र महोबा व उसके आसपास के बीहड़ स्थान थे, जहाँ पुलिस को इसकी जानकारी नहीं मिल पाती थी। भगत सिंह को छुड़ाने की एक योजना इस दल के सदस्यों ने भी बनायी थी, जिसके धन की व्यवस्था हेतु इसके सक्रिय सदस्य रामलच्छन तिवारी ने एक जगह डकैती भी अपने साथियों सहित डाली थी तथा वहाँ से प्राप्त धन व सोना गोकुल भाई को ले जाकर दिया था। समयाभाव के कारण इस संगठन की योजना फलीभूत नहीं हो पायी।[16] परिणामस्वरूप इस दल के प्रत्येक सदस्य को परोक्ष रूप में क्रान्तिकारी कार्य करने के अतिरिक्त प्रत्यक्ष रूप से कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी तथा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के माध्यम से कांग्रेस का सदस्य होना अनिवार्य था।[17]

बलिया षड्यन्त्र केस (1935)

11 जनवरी 1935 को बनारस जिला पुलिस के सहयोग से सी.आई.डी. ने देशराज[18] नामक व्यक्ति को गिरफ्तार किया तथा उसके पास से 45 राउण्ड गोलियाँ और रिवाल्वर बरामद की गयी। उससे पूछताछ के बाद पुलिस ने बलिया शहर में रामलच्छन तिवारी तथा गोकुलदास को गिरफ्तार कर लिया। तलाशी के दौरान इन लोगों के पास एक रिवाल्वर तथा सांकेतिक भाषा में लिखी हुई डायरी बरामद की गयी। देशराज से पूछताछ के बाद पुलिस ने संयुक्त प्रान्त, पंजाब, केन्द्रीय प्रान्त तथा बिहार के 14 स्थानों पर छापा मारा और रिवाल्वर तथा भारी मात्रा में क्रान्तिकारी साहित्य बरामद किया।[19] पुलिस ने इनके आधार पर एक अन्तर्प्रान्तीय षड्यन्त्र केस चलाने का प्रयास किया किन्तु सांकेतिक भाषा में लिखी हुई डायरी पढ़ न पाने के कारण यह सम्भव नहीं हो पाया। साधारणतया सांकेतिक भाषा की लिपि का स्वरूप इस प्रकार था कि संक्षेप में पूरा पत्र हिन्दी लिपि में लिखने के पश्चात् उस पत्र की लिपि के अक्षरों में लगी मात्राओं सहित केवल एक अक्षर मानकर पूरे पत्र को 10 तथा 15 अक्षरों के क्रम में क्रम से बदलकर दूसरे की हस्तलिपि में पुनः लिखाया जाता था। जैसे- प्रथम खण्ड के 10 अक्षरों वाले अन्तिम अक्षर को स्थान बदलकर पहला तथा उसके बाद 9वें को दूसरा कर दिया जाता और इसी क्रम में सभी दस अक्षरों के स्थान बदल दिये जाते थे। इसी तरह दूसरे 15 खण्ड वाले अक्षरों को भी बदला जाता था। पढ़ने वाला इसी क्रम को सीधाकर पढ़ लेता था। इसमें थोड़ी कठिनाई तो होती थी किन्तु सी.आई.डी वाले इसे पढ़ नहीं पाते थे और पत्र की गोपनीयता बनी रह जाती थी।[20]

उत्थान संघ के गठन के पश्चात् दल के सदस्यों की सहमति से गोकुलदास शास्त्री क्रान्तिकारियों को सशस्त्र युद्ध–प्रशिक्षण देने के लिए बाँदा गये, जहाँ उन्होंने अपने विश्वस्त लोगों

से विचार-विमर्श करने के पश्चात् देशराज (जिसके बारे में उन्हें अन्त तक पता नहीं चला कि वह पुलिस का गुप्तचर है)[21] को साईकिल से बलिया भेजा जहाँ से उसे प्रशिक्षण सामग्री लेकर प्रशिक्षण स्थल तक जाना था। गोकुलदास ने देशराज को लौटते समय बनारस में पढ़ने वाले दल के सक्रिय सदस्य तारकेश्वर पाण्डेय के यहाँ रुकने व आराम करने के लिए कहा था।[22] गोकुलदास के बलिया पहुँचने के पहले ही देशराज वहाँ पहुँच गया था तथा सामान लेकर वापस चल चुका था। इसी बीच संयोगवश तारकेश्वर पाण्डेय बलिया आ गये। जब गोकुलदास ने उनको वस्तुस्थिति की जानकारी दी तो तारकेश्वर पाण्डेय ने तुरन्त टेलीग्राम कर दिया, "रुको मत आगे चले जाओ।"[23] इस तार को बलिया के ही मूल निवासी सी.आई.डी. के सब इन्स्पेक्टर ब्रह्मासिंह ने हस्तगत कर लिया।

इसी के आधार पर पुलिस ने कार्यवाही प्रारम्भ कर दी जिसमें रामलच्छन तिवारी व गोकुलदास के निवास स्थानों की तलाशी ली गयी। इसमें पुलिस को रिवाल्वर तथा क्रान्तिकारी साहित्य बरामद हुआ। पुलिस ने महानन्द मिश्र द्वारा जॉपलिनगंज मोहल्ले में चलाये जा रहे होटल की दो-दो बार तलाशी ली लेकिन वहाँ से कुछ भी आपत्तिजनक सामान बरामद नहीं हुआ। बनारस-बलिया के क्रान्तिकारी संगठन के सदस्य होने के कारण महानन्द मिश्र अपनी पार्टी के लोगों को शरण देते थे।[24] पुलिस इस समूचे प्रकरण को लेकर एक अन्तर्प्रान्तीय षड्यन्त्र केस चलाना चाहती थी किन्तु गोकुलभाई की सांकेतिक भाषा में लिखी हुई डायरी को न पढ़ पाने के कारण ऐसा सम्भव न हो पाया। समय का लाभ उठाते हुए गोकुल भाई ने अपने सूत्रों के माध्यम से दल के सदस्यों को सतर्क कर दिया। स्वयं गोकुल भाई ने स्वीकार किया है कि उनके दल के सदस्य संयुक्त प्रान्त में ही नहीं वरन् देश के अन्य प्रान्तों में भी थे। इस केस में कुल 4 व्यक्ति गिरफ्तार किये गये जिनके ऊपर शस्त्र अधिनियम की धारा के अन्तर्गत मुकदमा चलाया गया तथा दो से चार वर्ष की सजा दी गयी। सजा पाने वालों में आजमगढ़ जिले के हथिनी ग्राम निवासी 120 वर्षीय मलूक लोहार भी थे, जिनका जेल में ही देहान्त हो गया था।[25]

कांग्रेस कौमी सेवादल और महानन्द मिश्र

उत्तर प्रदेश में इस संगठन की स्थापना सन् 1938 में उ.प्र. कांग्रेस समिति के फैजाबाद अधिवेशन में की गयी जिसके कप्तान अलीगढ़ निवासी नन्दकुमार देव वशिष्ठ तथा संयोजक आर. एस. पण्डित बनाये गये। प्रारम्भिक अवस्था में इसका नाम उ.प्र. कांग्रेस कौमी सेना रखा गया। इस नामकरण पर आशा के अनुरूप महात्मा गाँधी तथा संयुक्त प्रान्त के राज्यपाल को आपत्ति हुई जिसके कारण सन् 1939 में इसका नाम परिवर्तित कर कांग्रेस कौमी सेवादल रख दिया गया। नाम परिवर्तित हो जाने के कारण उत्तर प्रदेश के अधिकांश जिलों में यह संगठन अस्तित्वविहीन हो गया किन्तु कुछ जिलों में जैसे बलिया, जौनपुर, अलीगढ़ आदि में सक्रिय रहा। फैजाबाद में इसका एक माह का प्रशिक्षण शिविर चलाया गया जिसमें प्रत्येक जिले से तीन-तीन व्यक्ति प्रशिक्षण हेतु बुलाये गये थे।[26] बलिया जिले से जिन तीन व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया वे थे पं. बरमेश्वर पाण्डेय, पं.

महानन्द मिश्र तथा विश्वनाथ चौबे। वरिष्ठता के आधार पं. बरमेश्वर पाण्डेय बलिया जिला कांग्रेस कौमी सेवादल के कप्तान तथा पं. महानन्द मिश्र एवं श्री विश्वनाथ चौबे उपकप्तान नियुक्त किये गये।[27] कुछ समय पश्चात् पं. बरमेश्वर पाण्डेय ने कप्तान पद से त्यागपत्र दे दिया तथा पं. महानन्द मिश्र बलिया जिला कांग्रेस कौमी सेवादल के कप्तान बना दिये गये।[28] पं. महानन्द मिश्र उस समय तक बलिया जिले के राजनीतिक क्षितिज पर एक धूमकेतु के रूप में छा चुके थे। वे 'उत्थान संघ' तथा 'मुक्तिसाधक संघ' जैसे क्रान्तिकारी संगठनों के सक्रिय सदस्य रह चुके थे। कौमी सेवादल की खद्दर एक विशिष्ट वर्दी होती थी जिसमें कप्तान व उपकप्तान गाँधी टोपी के साथ क्रास बेल्ट भी लगाते थे।[29] इसके संविधान के अनुसार इसके प्रत्येक सदस्य को कांग्रेस समाजवादी पार्टी तथा कांग्रेस पार्टी का सदस्य होना अनिवार्य था।[30] पं. महानन्द मिश्र, श्री विश्वनाथ चौबे तथा नवनियुक्त उपकप्तान पं. राजेश्वर तिवारी ने अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों से जिले के सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में सेवादल के प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये जिसके फलस्वरूप 1939 के अन्त तक बलिया जिले के लगभग 5452 प्रशिक्षित स्वयंसेवक हो गये थे।[31] 'उत्थान संघ' के सदस्य के रूप में पं. महानन्द मिश्र गुरिल्ला लड़ाई व अन्य आग्नेयास्त्रों के संचालन तथा परिस्थिति अनुसार कार्य करने का प्रशिक्षण चित्रकूट की पहाड़ियों में ले चुके थे। कुछ व्यक्तियों ने चम्बल की घाटियों में देशप्रेमी दस्युओं की मदद से भी इस तरह का प्रशिक्षण लिया था।[32]

बलिया जिले के ही एक अन्य स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी स्व. पारसनाथ मिश्र, जो संवरा गोपालपुर के प्रशिक्षण शिविर में सम्मिलित थे, ने बताया था कि कौमी सेवादल के प्रशिक्षण शिविरों में मुख्यत: समाजवादी सिद्धान्त व्यवस्था आदि विषयों पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा कक्षाएँ चलायी जाती थीं। कुछ शिविर निर्जन स्थानों पर चलाये गये जहाँ अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग एवं विपरीत परिस्थितियों में धैर्य न खोने का भी प्रशिक्षण दिया गया। दीक्षान्त भाषण समाजवादी नेताओं जैसे- प्रो. राजाराम शास्त्री, पं. परमानन्द आदि ने दिया। बलिया में जिन स्थानों पर ये प्रशिक्षण शिविर चलाये गये उनके कुछ नाम हैं- सरदासपुर, नगहर, ताड़ीबड़ागाँव, संवरा गोपालपुर, सोहांव, टेंगरहीं, पहसा (वर्तमान जिला मऊ)।[33]

ऐसा नहीं हुआ कि बलिया जिला कांग्रेस कौमी सेवादल बलिया में ही सक्रिय रहा हो बल्कि पड़ोसी जनपदों गाजीपुर, आजमगढ़ आदि जहाँ पर एच.एस.आर.ए. के क्रान्तिकारी सक्रिय थे, से बलिया जिला कांग्रेस कौमी सेवादल के सदस्यों, विशेष तौर पर पं. महानन्द मिश्र के अन्तरंग सम्बन्ध रहे तथा प्रत्येक क्रान्तिकारी गतिविधियों के उपरान्त वे एक दूसरे के यहाँ शरण लेते थे।[34] यहाँ तक कि ऐतिहासिक आकुसपुर नन्दगंज ट्रेन डकैती 1941 में गिरफ्तार किये गये क्रान्तिकारियों को बचाने तथा मुकदमे की पैरवी करने में पंडित महानन्द मिश्र का सराहनीय योगदान रहा। इसी क्रम में उन्होंने अपने शिष्य/मित्र श्री पारसनाथ मिश्र को कुछ आवश्यक कागजात के साथ बचाव पक्ष के वकील स्वर्गीय विश्वनाथ सिंह गहमरी के पास भेजा था। इसी कारण पं. महानन्द मिश्र

1942 में जुलाई माह में ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। अगस्त क्रान्ति की सफलता के पश्चात् बलिया जिला कांग्रेस कौमी सेवादल के कप्तान श्री महानन्द मिश्र तथा उपकप्तान श्री विश्वनाथ चौबे छद्मवेश में गाजीपुर कचहरी भी गये जहाँ प्रत्युन्नमति बुद्धि का परिचय देते हुए पं. महानन्द मिश्र गिरफ्तारी से बच गये लेकिन श्री विश्वनाथ चौबे वहाँ गिरफ्तार कर लिये गये।

बलिया जिला भारत में एक अकेला जिला था जिसमें कांग्रेस कौमी सेवादल कांग्रेस का संगठन होने के बाद भी एक उग्रवादी संगठन के रूप में उभरकर सामने आया। इसके पीछे अनेक कारणों के साथ इसके तत्कालीन कप्तान पं. महानन्द मिश्र का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भिक चरण में क्रान्तिकारी संगठनों के सदस्य होने के कारण उनके उनके स्वभाव में कांग्रेस में आने के बाद भी कोई परिवर्तन नहीं आया। पूर्वांचल के प्रसिद्ध कबीरपन्थी स्वामी सदाफल दास के अनुसार पं. महानन्द मिश्र के बिना कोई भी संगठन क्रान्तिकारी संगठन नहीं हो सकता था।[35] जब बलिया जिला जेल में उनके बन्द होने के पश्चात् बलिया के तत्कालीन एस.पी.सी. एल.डी. वुड ने उनसे पूछा कि 'तुमने इतना बड़ा संगठन कैसे खड़ा कर दिया', तो मिश्र जी ने उत्तर दिया था कि 'तुम भी एक जमात के कप्तान हो और मैं भी अपनी जमात का कप्तान हूँ। पहले तुम मेरी जमात में आओ तब मैं तुमको इसका राज बताऊँ।' पं. महानन्द मिश्र साथ ही साथ बलिया जिला कांग्रेस कौमी सेवादल के तत्कालीन उपकप्तान श्री विश्वनाथ चौबे भी अपनी उग्रवादी छवि के लिए प्रसिद्ध थे।[36]

काकोरी के क्रान्तिकारियों का पूर्वांचल दौरा

1935 के संविधान सुधारों के अन्तर्गत हुए आम चुनाव में संयुक्त प्रान्त में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत मिला तथा पण्डित गोविन्द वल्लभ पन्त के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार का गठन हुआ। शासनारूढ़ होने पर पन्त जी ने उ.प्र. के उन सभी बन्दियों को, जो मुक्ति संघर्ष के अन्तर्गत जेल गये थे, छोड़ने का निर्णय लिया। फलस्वरूप काकोरी घटना (1925) के राजबन्दी भी रिहा कर दिये गये।[37] रिहाई के पश्चात् इन क्रान्तिकारियों ने पूर्वांचल का सघन दौरा किया तथा स्थान-स्थान पर इन लोगों ने नवयुवकों एवं छात्रों की बैठकों को सम्बोधित किया, तथा अपने संस्मरणों को सुनाया जिससे नवयुवकों में एक नयी क्रान्तिकारी चेतना का विकास हुआ। बलिया में 1938 में शचीन्द्रनाथ सान्याल, शचीन्द्रनाथ बख्शी तथा मनमथनाथ गुप्त आये। पं. महानन्द मिश्र के कहने पर पारसनाथ मिश्र ने बलिया के मिडिल स्कूल में इन लोगों की एक सभा करायी जो काफी सफल हुई। इस सभा में शचीन्द्रनाथ सान्याल की लिखित पुस्तक 'बन्दी जीवन' हाथों हाथ बिक गयी।[38]

आकुसपुर-नन्दगंज ट्रेन डकैती (12-13 मार्च 1941) और महानन्द मिश्र

(12/13 मार्च 1941) को गाजीपुर जिले के आकुसपुर-नन्दगंज स्टेशनों के बीच पड़ी इस ट्रेन डकैती को संयुक्त प्रान्त शासन ने एकमात्र राजनीतिक ट्रेन डकैती माना, यद्यपि 9/10 अप्रैल

1938 को आजमगढ़ जिले के पिपरीडीह-दुल्लहपुर स्टेशनों के बीच पड़ी ट्रेन डकैती को विवेचक अधिकारियों ने राजनीतिक उद्देश्य से पड़ी डकैती लिखा था, किन्तु संयुक्त प्रान्त की पन्त सरकार ने उसे राजनीतिक डकैती नहीं माना।[39] आकुसपुर नन्दगंज ट्रेन डकैती के क्रान्तिकारियों को बचाने और सरकारी गवाहों को पक्षद्रोही बनाने में महानन्द मिश्र का विशेष योगदान रहा।[40]

20.01.42 को एस.पी.आई.बी. को लिखे गये अपने पत्र में डिप्टी एस.पी. टीकाराम ने उन्हें सूचित किया कि मन्दा के कपिलदेव सिंह का बयान धारा 164 के अन्तर्गत रिकार्ड कर लिया गया है।[41] जिसके उत्तर में एस.पी.आई.बी. ने उन्हें निर्देशित किया कि कोर्ट में बयान देने से पूर्व कपिलदेव सिंह का भली-भाँति समझा दिया जाय कि उन्हें क्या बयान देना है तथा उनसे निकट सम्पर्क बनाये रखा जाय। इसी बीच 15.03.42 को सब इन्स्पेक्टर बंशगोपाल सिंह ने एस.पी.आई. बी. को सूचित किया कि गाजीपुर में डकैती के चल रहे मुकदमे के बीच ही बलिया में सीयर के डॉक्टर से छीनी गयी बन्दूक के मामले में केदार सिंह पर मुकदमा शुरू कर दिया गया है। इसमें कामता सिंह व मुक्तिनाथ शाही की अनुपस्थिति में मुकदमा चलाये जाने के कारण विपरीत प्रभाव पड़ेगा क्योंकि यह बन्दूक उसी गिरोह द्वारा डकैती में प्रयोग में लायी गयी थी। इसके लिए उन्होंने एस.पी.आई.बी. को लिखा कि अपने स्तर से डी.एम. बलिया से अनुरोध करें कि वे तीनों अभियुक्तों पर एक ही साथ मुकदमा चलायें। इसी पत्र में बंशगोपाल सिंह ने यह भी सूचित किया कि बलिया जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष चित्तू पाण्डेय, महानन्द मिश्र, राजेश्वर तिवारी व सिद्धनाथ कपिलदेव सिंह (मन्दा) से रसड़ा के कांग्रेस कमेटी के ऑफिस में मिले थे तथा उन पर दबाव डाला कि वे अपने बयान से हट जायें। उन लोगों ने उनको यह भी समझाया है कि वे (कपिलदेव सिंह) प्रेस में बयान दे दें कि सी.आई.डी. ने उन पर बयान देने के लिए दबाव डाला था। उनके पिता रामनरेश सिंह ने उनको (बंशगोपाल सिंह) बताया है कि उनका लड़का उनके हाथ से निकल गया है तथा राजेश्वर तिवारी, महानन्द मिश्र और सिद्धनाथ ब्राह्मण लगातार उनके लड़के के सम्पर्क में हैं। बंशगोपाल सिंह ने यह भी सूचित किया कि वे पूर्व में भी महानन्द मिश्र और राजेश्वर तिवारी की सरकार विरोधी गतिविधियों की जानकारी समय-समय पर देते रहे हैं। ऐसी स्थिति में डी.आई.आर. में उनकी गिरफ्तारी उचित प्रतीत होती है।[42]

बंशगोपाल सिंह की इस रिपोर्ट के आधार पर महानन्द मिश्र, सिद्धनाथ तिवारी, राजेश्वर तिवारी व मो. यूसुफ की प्रत्येक गतिविधियों के साथ-साथ कपिलदेव सिंह के साथ उनकी बातचीत पर निगरानी रखनी शुरू कर दी गयी। इसी बीच बलिया पुलिस की सूचना पर एस.पी. आई.बी. ने बलिया के एस.पी. मो. वाहिद खाँ को दिनांक 19.03.42 को एक पत्र लिखकर अनुरोध किया कि कामता सिंह व मुक्तिनाथ शाही की अनुपस्थिति में सीयर के डॉक्टर की बन्दूक छिनैती के मामले में केदार सिंह की सुनवाई के सन्दर्भ में वे बलिया के डी.एम. से मिलें तथा उनसे अनुरोध करें कि यह सुनवाई स्थगित कर दी जाय। उन्होंने यह भी लिखा कि सम्भवत: डी.

एम. केदार सिंह को अधिक दिनों तक जेल में रखने के कारण सुनवाई करना चाहते हों तो उनसे अनुरोध किया जाय कि वे उनको (केदार सिंह) जमानत पर रिहा कर दें।[43] 28.05.42 को एस. पी.आई.बी. को भेजे गये अपने प्रतिवेदन में इंस्पेक्टर राना हरनाम सिंह ने पुनः उन्हें अवगत कराया कि कांग्रेस नेताओं एवं एच.एस.आर.ए. के समर्थकों द्वारा कुछ गवाहों को डराया एवं धमकाया जा रहा है। इसमें उन्होंने उनसे अनुरोध किया कि वे बलिया एवं गाजीपुर की पुलिस को निर्देशित करें कि इस तरह के जो लोग ऐसी गतिविधियों में लिप्त हैं, उनके विरुद्ध कार्यवाही की जाय। इस सूची में महानन्द मिश्र, सिद्धनाथ तिवारी, राजबंश लाल, नरसिंह पाण्डेय और बचाव पक्ष के वकील विश्वनाथ सिंह गहमरी का नाम शामिल था।[44]

महानन्द मिश्र की आकुसपुर-नन्दगंज ट्रेन डकैती के क्रान्तिकारियों को बचाने की इस कार्यवाही का विवरण उनके आपराधिक इतिहास में भी लिखा गया है।[45] पारसनाथ मिश्र के अनुसार महानन्द मिश्र ने उनको एक गोपनीय पत्र बचाव पक्ष के वकील विश्वनाथ सिंह गहमरी को देने के लिए दिया था जिसके बारे में सूचना अभिसूचना विभाग को भी मिल गयी थी।[46] ऐसी ही एक रिपोर्ट राना हरनाम सिंह ने 25.06.42 को पुनः प्रेषित की। इसके उत्तर में एस.पी.आई.बी. ने उन्हें सूचित किया कि सिद्धनाथ, महानन्द आदि को धारा 129 डी.आई.आर. के अन्तर्गत गिरफ्तारी के आदेश जारी किये जाने वाले हैं।

4 जुलाई 1942 को गोरखपुर से इंस्पेक्टर हरनाम सिंह को भेजे गये अपने पत्र में एस. पी.आई.बी. ने उन्हें सूचित किया कि उमाशंकर उपाध्याय, ग्राम गदाईपुर, थाना गहमर, जनपद गाजीपुर, राजनाथ सिंह पुत्र रामचरित्र सिंह, ग्राम बरहपुर, थाना शादियाबाद, गाजीपुर, नरसिंह पाण्डेय पुत्र सुखदेव पाण्डेय ग्राम मैनपुर, थाना नन्दगंज, गाजीपुर, राजबंश लाल पुत्र भृगुनाथ लाल, ग्राम बालापुर, थाना मुहम्मदाबाद, गाजीपुर, सिद्धनाथ तिवारी पुत्र जगदीश तिवारी, ग्राम देवरिया थाना करीमुद्दीनपुर, गाजीपुर, महानन्द मिश्र पुत्र पंचम मिश्र, मुहल्ला जॉपलिनगंज, थाना कोतवाली, बलिया और रामजी तिवारी पुत्र पशुपति तिवारी, ग्राम सतनी सराय, थाना कोतवाली, बलिया के विरुद्ध धारा 129 डी.आई.आर. के अन्तर्गत गिरफ्तारी के वारण्ट जारी हो चुके हैं। अब उम्मीद की जानी चाहिए कि पुलिस अपने कार्य में शत-प्रतिशत सफल हो जायेगी।[47] 14 जुलाई 1942 को एस. पी.आई.बी. ने राना हरनाम सिंह को निर्देशित किया कि यदि विश्वनाथ सिंह गहमरी गलत अफवाह फैलाने के दोषी पाये जा रहे हों तो उनके विरुद्ध स्थानीय पुलिस की मदद से गिरफ्तार कर मुकदमा चलाया जाय।[48]

अगस्त-भारतीय मुक्ति संघर्ष का स्वर्णिम दिवस

एस.पी.आई.बी. उ.प्र. द्वारा बलिया के एस.पी. को 04.07.1942 को लिखे गये पत्र के अनुपालन में महानन्द मिश्र जुलाई 1942 में ही गिरफ्तार कर लिये गये थे जिसके कारण वे अगस्त-क्रान्ति के प्रारम्भ में जेल में बन्द थे। जब परिस्थितिवश विवश होकर बलिया के

जिलाधिकारी के समक्ष दिनांक 19 अगस्त 1942 को बलिया जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पं. चित्तू पाण्डेय ने आत्मसमर्पण कर दिया तब चित्तू पाण्डेय तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं के साथ महानन्द मिश्र भी बलिया जिला जेल से रिहा हुए। जिलाधिकारी सरकारी खजाने एवं अस्त्रों के लूटे जाने की सम्भावित घटना से चिन्तित थे।

जन नेताओं के बाहर निकलने पर वहाँ की स्थिति दूसरी दिखाई पड़ी। बलिया शहर की जितनी आबादी थी उससे कई गुना अधिक लोग विभिन्न हथियारों के साथ आ चुके थे। इसी बीच कार्यक्रमों को लेकर युवा वर्ग एवं अन्य कांग्रेसियों के मतभेद सामने आ गये। इसका कारण अगस्त-क्रान्ति पर गाँधी जी द्वारा दिया गया दिशा-निर्देश था। पुराना कांग्रेसी जहाँ सरकारी भवनों पर अधिकार कर लेने तक को ही गाँधी जी का अन्तिम सन्देश मानता था वहीं युवा वर्ग 'करो या मरो' और 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का आशय किसी भी प्रकार से ब्रिटिश शासन व्यवस्था को पंगु कर समानान्तर व्यवस्था चलाना तथा यदि इस कार्य में कहीं हिंसा हो जाती तो उसे भी आन्दोलन का एक अंग मानता था। गाँधीवादी हिंसा को गाँधी जी की नीतियों के विरुद्ध एवं गाँधी जी को मर्मान्तक चोट पहुँचाने वाला समझता था। युवा वर्ग की अधिकता एवं कांग्रेस कौमी सेवादल के प्रशिक्षण, जिनमें समानान्तर सरकार चलाने का भी प्रशिक्षण दिया गया था, के कारण गाँधीवादी नेताओं को युवा वर्ग के कार्यों का मौन समर्थन करना पड़ा। इन मतभेदों से यह स्पष्ट होता है कि 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में केन्द्रीय नेतृत्व की अनुपस्थिति के कारण अनुशासनात्मक व संगठनात्मक स्वरूप में बिखराव था। कांग्रेस का वरिष्ठ नेतृत्व कुछ कर रहा था और युवा वर्ग कुछ और। कांग्रेसियों के इस मतभेद का लाभ उठाकर जिलाधीश निगम ने पुलिस को गोली चलाने का आदेश दे दिया किन्तु उनकी स्वयं की स्थिति देखते हुए पुलिसकर्मियों ने गोलियाँ नहीं चलायीं। जननेताओं की रिहाई से जहाँ जनसमूह प्रसन्न था, वहीं जब नेताओं के कार्यक्रम की जानकारी मिली तब जनसमूह निराश हो गया। इसी बीच कांग्रेस के उग्रवादी नेताओं रामलच्छन तिवारी, नगीना चौबे, मंगल सिंह आदि ने कांग्रेस कौमी सेवादल के जिला कप्तान पं. महानन्द मिश्र व उपकप्तान पं. विश्वनाथ चौबे से विचार-विमर्श करने के बाद निर्णय लिया कि कांग्रेसी नेताओं का जो भी आदेश हो, जनसमूह जिस उद्देश्य से आया है, उसे पूरा किया जायेगा।[49]

इसी प्रकार डी.आई.एस. के सिपाही महेन्द्रलाल ने लिखा, "महानन्द मिश्र, प्रसिद्ध नारायण सिंह, विश्वनाथ चौबे व रामनाथ बरई मजमे को बराबर इश्तयाल देते और बरगलाते रहे। यह तीनों नगीना चौबे, मंगल सिंह व परशुराम सिंह मीटिंग से उठकर शिवप्रसाद के घर लीडरान के मीटिंग में गये और जब लीडरान से बातचीत कर वापस टाउनहाल आये और मजमा से कहा कि हमलोग लीडरान से तय कर आये हैं आओ जो करना हो किया जाय। इसी पर सबने उठकर लूटमार शुरू कर दिया।"[50]

जेल से रिहा होने के बाद कांग्रेसी नेताओं ने जनसमूह से टाउनहाल के मैदान में चलने

के लिए कहा तथा पं. चित्तू पाण्डेय कुछ नेताओं के साथ, जिनमें राधामोहन सिंह व महानन्द मिश्र भी थे, बाबू शिव प्रसाद की कोठी पर अग्रिम कार्यवाही पर विचार-विमर्श करने चले गये। टाउनहाल के ठसाठस भरे मैदान पर बूँदाबाँदी के बीच राधामोहन सिंह, राम अनन्त पाण्डेय व विश्वनाथ चौबे के भाषण हुए। इसी बीच पं. चित्तू पाण्डेय सभा स्थल पर पहुँचे वहाँ उन्होंने जनसमूह को भोजपुरी में सम्बोधित करते हुए कहा, "रउंआ जवन कुछ कइलीं, एतना बड़ आन्दोलन चलवलीं ओकरे खातिर हम रउआं सभे के हिरदय से बधाई दे तानी। हम त रउंआ सभे के सेवक हईं। अपना ओर से जेल से छूटे खातिर हम कवनो जतन ना कइलीं। हमरा त इहो ना मालूम की इ रिहाई काहें होता। बाकी ई साफ लउकत बा कि रउरा ताकत, आ दबाव आ रउआ एतना जोरदार आन्दोलन कइलीं की इ कुल भइल ह। इ सब त रउरे बिजय बा। हमार एमे कुछु नइखे। ए आन्दोलन के रउए नेता बानी हम ना। जइसन रउआ राय देइब उहे होई। इहां सुराज आज भइल एकर माने की गाँधीजी के रामराज। अब रउआं इहां से जाके शान्ति रखीं, सबकर रक्षा करीं आ इहां से जेवन सनेस जा ओकरा मोताबिक काम करीं।"[51]

सभा मंच से ही पाण्डेय जी के भाषण का प्रतिवाद करते हुए अपने उग्रवादी तेवर के लिए चर्चित बलिया जिला कांग्रेस कौमी सेवादल के उपकप्तान विश्वनाथ चौबे ने जनसमूह से कहा कि वह जिस उद्देश्य के लिए आया है उसे पूरा करने के बाद ही वहाँ से जाय।[52] कालान्तर में पाण्डेय जी ने जिले में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने एवं जिले में शेष बची हुई ब्रिटिश सत्ता की निशानियों पर अधिकार करने के लिए एक समिति का गठन किया जिसके सदस्य थे- महानन्द मिश्र, विश्वनाथ चौबे, पारसनाथ मिश्र व रामजी तिवारी।[53]

बलिया शहर में जहाँ एक ओर पं. चित्तू पाण्डेय का भाषण हो रहा था वहीं दूसरी ओर बलिया जिला कांग्रेस कौमी सेवादल के कप्तान महानन्द मिश्र के नेतृत्व में कांग्रेस के उग्रवादी दल के लोग ब्रिटिश सत्ता की निशानियों को ध्वस्त करने में लगे थे। इस जनसमूह के आक्रोश का पहला शिकार ओकडनगंज पुलिस चौकी बनी। वहाँ कार्यरत पुलिसकर्मियों के भाग जाने के कारण जनसमूह ने पुलिस चौकी पर रखे हुए सभी कागजों, फर्नीचर आदि जलाकर नष्ट कर दिया। इसके बाद जनसमूह ने जापलिनगंज पुलिस चौकी पर आक्रमण कर वहाँ के भी सामानों को जला दिया, वहाँ कार्यरत पुलिसकर्मी अपने-अपने कमरों में ताला बन्द कर भाग गये थे। जनसमूह ने उनके कमरों को तोड़कर उनके व्यक्तिगत सामानों में भी आग लगा दी। 19 अगस्त की रात मालगोदाम व बीजगोदाम को लूट लिया। इस सम्पूर्ण घटनाक्रम में कहीं भी जनसमूह को किसी प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा।[54]

इन सब कार्यवाहियों के चलते 19 अगस्त 1942 को बलिया में ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया। वहाँ के कलक्टर निगम ने पं. चित्तू पाण्डेय से कहा कि हम सभी अधिकारी व कर्मचारी पुलिस लाइन के अन्दर रहेंगे तथा शेष जिले का कार्य आप लोग देखें व कानून व्यवस्था को ठीक

करें। 19 अगस्त को ही जिले के शीर्ष कांग्रेसी नेताओं की एक बैठक बुलायी गयी जिसमें बलिया के डी.एम. तथा एस.पी. को भी बुलाया गया। वे लोग आए तथा चित्तू पाण्डेय ने भावी व्यवस्था की जानकारी चाही। इसके उत्तर में निगम ने पाण्डेय जी को बताया कि रेलवे लाइन के दक्षिण अर्थात् शहर के मुख्य भाग में शासन की कोई व्यवस्था नहीं रहेगी। उधर आप लोग जैसा चाहें वैसा करें, उसमें हम लोग दखल भी नहीं देंगे। जिले के शेष भागों से हमारा सम्पर्क टूट गया है तथा हमें यह भी नहीं मालूम है कि कहाँ क्या हो रहा है।[55] दिन भर के शहर के बदलते हुए घटनाक्रम को सफल बनाने में शहर में जिले के अन्य भू-भागों से आये हुए लोगों का योगदान रहा। बाहर से आये हुए लोगों के खान-पान की व्यवस्था स्थानीय लोगों ने बड़े ही मनोयोग से की जिनमें राधाकृष्ण राम, दुलीचन्द मारवाड़ी, अवधकिशोर प्रसाद आदि का अविस्मरणी योगदान रहा।[56] इसी रात महानन्द मिश्र विश्वनाथ चौबे के साथ शहर के प्रसिद्ध व्यवसायी नारायण राम के यहाँ गये और उनसे उनकी बन्दूक माँगी। बन्दूक देने में आनाकानी करने पर एक ही धमकी में उन्होंने बन्दूक लाकर दे दी।[57] बलिया में जहाँ एक ओर सेना पहुँच चुकी थी, वहीं दूसरी ओर बलिया जिला कांग्रेस कौमी सेवादल के कप्तान पं. महानन्द मिश्र के नेतृत्व में उनके साथी जिले से ब्रिटिश सत्ता को समूल समाप्त करने में लगे थे। इसी क्रम में वे 22 अगस्त को रसड़ा थाने पर अधिकार करने के उद्देश्य से वहाँ पहुँचे, किन्तु थाने की सामरिक स्थिति को देखते हुए, अपने विचारों में परिवर्तन करते हुए उन लोगों ने 23 अगस्त को हलधरपुर थाने पर चार-पाँच हजार की संख्या में जनसमूह के साथ आक्रमण कर दिया। थानेदार के भाग जाने के बाद अन्य कर्मचारी भी भाग गये। थाने पर सादे वेश-भूषा में दो सिपाही और कुछ चौकीदार थे, जिन्होंने कोई प्रतिरोध नहीं किया। थाने को कागजों सहित जलाकर तिरंगा फहरा दिया। इस घटना में महानन्द मिश्र, विश्वनाथ चौबे के अतिरिक्त मथुरा लाल, स्वामी चन्द्रिका दास सरजू पाण्डेय आदि सम्मिलित थे। इस घटनाक्रम के बारे में वहाँ के थानेदार ने लिखा, "चौकीदार विदेशी भर ने हमें सूचित किया कि सात-आठ सौ कांग्रेसियों का दल रतनपुरा में आया है। वे लोग तार काटकर स्टेशन जलाने की तैयारी कर रहे हैं। उसने यह भी सूचना दी कि स्टेशन को जलाने के बाद वे लोग थाने पर आक्रमण कर सकते हैं। पं. सत्यनारायण पाण्डेय से सिकन्दरपुर के थानेदार के पास सूचना भेजी गयी है कि वे सशस्त्र बल के साथ थाने पर आयें।[58]

गड़वार थाना काण्ड

पं. चित्तू पाण्डेय के निर्देश पर बलिया जिला कांग्रेस कौमी सेवादल के कप्तान पं. महानन्द मिश्र व उपकप्तान पं. विश्वनाथ चौबे जिले में शेष बचे हुए थानों पर अधिकार करने के उद्देश्य से गड़वार थाने पर जनसमूह के साथ वहाँ पहुँचे। वहाँ के थानेदार बंशगोपाल सिंह पहले से ही किसी सम्भावित घटना के लिए तैयार थे जिसके कारण वे थाने के आवश्यक कागजों सहित निकटवर्ती ग्राम बुढ़ऊ में राजदेव सिंह के यहाँ चले गये थे। उनकी अनुपस्थिति में जनसमुदाय ने

स्थानीय कांग्रेसी नेताओं शिवपूजन सिंह व जगमोहन सिंह के नेतृत्व में थाने में आग लगाकर बुढ़ऊ गाँव में धावा बोला तथा वहाँ छिपे हुए थानेदार को पकड़कर उनसे सारे कागजों को लेकर उसमें आग लगा दी तथा बन्दूक लेकर जनसमूह चला गया।[59] 21.08.1942 को लगभग 8-9 बजे दो या तीन हजार की भीड़ ने गड़वार पुलिस स्टेशन पर आक्रमण कर थाने को लूट लिया तथा जला दिया। 19 अगस्त 1942 को वहाँ के थानेदार ठाकुर बंशगोपाल सिंह थाना छोड़कर बुढ़ऊ गाँव के ठाकुर राजदेव सिंह के यहाँ आ गये थे। उनके पास सरकारी बन्दूकों के अतिरिक्त दो और बन्दूकें थीं। दो बक्स जिनमें सरकारी कागज रखे हुए थे गिरिजा सिंह के यहाँ रखे थे। गड़वार की घटना के बाद जनसमूह बुढ़ऊगाँव पहुँचा। वहाँ उन लोगों ने बंशगोपाल सिंह की व्यक्तिगत बन्दूक लूट लिया तथा गिरिजा सिंह के यहाँ रखे हुए सरकारी कागजों में आग लगा दी। यह बन्दूक हलधरपुर थाना तथा उभांव थानाकाण्ड में प्रयोग में लायी गयी। गड़वार थानाकाण्ड का निर्णय सुनाते हुए जज श्यामबिहारी लाल ने दिनांक 01.04.1943 को लिखा कि मैं अभियुक्त महानन्द और विश्वनाथ को इस काण्ड में सम्मिलित होने तथा गवाहों के बयान के आधार पर धारा 395 और 436 आई.पी.सी. तथा डी. आई.आर. की धारा 35 के अन्तर्गत तीन-तीन साल की कठोर कारावास की सजा सुनाता हूँ।[60]

सेना से मुठभेड़[61]

गड़वार थाने पर अधिकार कर लेने के बाद पं. महानन्द मिश्र ने सीयर क्षेत्र में सक्रिय पारसनाथ मिश्र के पास सूचना भेजी कि 24 अगस्त को उभांव थाने पर अधिकार करने हेतु वे अपने सहयोगियों सहित तैयारी करें।[62] 24 अगस्त को महानन्द मिश्र, विश्वनाथ चौबे व अन्य साथियों सहित सीयर मिडिल स्कूल पर पहुँचे, जहाँ पारसनाथ मिश्र के नेतृत्व में लगभग चार हजार का जनसमूह उन लोगों की प्रतीक्षा कर रहा था। इस अवसर पर जनसमूह को सम्बोधित करते हुए स्थानीय युवा छात्र नेता पारसनाथ मिश्र ने 'करो या मरो' नारे का महत्त्व बताते हुए कहा कि भारत अब अंग्रेजों का किसी प्रकार का शोषण सहने को तैयार नहीं है। अंग्रेजी शासन के प्रतीक थाने पर अधिकार कर लेने हेतु उत्साहित जनसमूह थाने की ओर बढ़ा। इसी बीच एक आदमी दौड़ा हुआ आया तथा सूचना दी कि तुर्तीपार के पुल के रास्ते गोरखपुर जिले से सेना की एक टुकड़ी आ गयी है तथा वे लोग गोलियाँ चला रहे हैं जिससे एक व्यक्ति शहीद हो चुका है। यह सूचना मिलने पर जनसमुदाय थाने पर जाने के स्थान पर फौजियों की तरफ दौड़ पड़ा। महानन्द मिश्र के अनुसार, "हमलोगों ने जनसमूह को रोकने की कोशिश की, किन्तु कोई हमलोगों की बात सुनने को तैयार नहीं था। हमलोगों ने कुछ फायर भी किया जिससे जनता रुक गयी। आक्रामक हो रही सेना से बचने के लिए हमलोगों को बार-बार स्थान बदलना पड़ा। अन्त में एक ईंट के भट्ठे की आड़ से ब्रिटिश सेना पर हमने गोली चलायी जिससे सम्भवत: कोई घायल हो गया तथा हमारा पीछा करना छोड़ दिया। कुछ देर पारसनाथ के घर रुकने के बाद हमलोग वहाँ से एक अन्तहीन सफर पर निकल पड़े। चलते समय उनके पिता ने कुछ धनराशि दी तथा बराबर मदद करते रहने का

आश्वासन दिया।"[63]

महानन्द मिश्र पर किये गये अत्याचार

जिले के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी, कांग्रेस कौमी सेवादल के कप्तान पं. महानन्द मिश्र 10 दिसम्बर 1942 को एक व्यक्ति की ब्रिटिश चाटुकारिता तथा मुखबिरी के कारण गिरफ्तार कर बैरिया थाने लाये गये। वहाँ तथा बलिया जिला जेल में जो अत्याचार हुए वे अकथ्य हैं तथा ब्रिटिश पाशविकता का एक ज्वलन्त उदाहरण है जो सुनकर अथवा पढ़कर रोंगटे खड़े कर देता है। अत्याचारों का विवरण स्वयं उन्हीं के शब्दों में, "जैसे बड़े स्टेशन पर गाड़ी अधिक देर रुकती है, छोटे स्टेशन पर कम समय तक, वही मेरा हाथ था। अफसर खूब मारते थे, शराब पी-पीकर। कुँवर सुन्दर सिंह, उर्फ सुल्ताना थाना इंचार्ज बैरिया थे। नायब थानेदार रशीद मुझे गिरफ्तार करके उनके पास ले गये। पाँच आदमी गिरफ्तार किये गये थे। सभी को खूब मारा-पीटा गया। सुल्ताना ने मुझे शराब के नशे में मारना शुरू किया। मेरा सदैव यही प्रयास रहा कि मारते-मारते ये लोग थक जायें, थक कर चूर हो जायं तब मैं उन्हें डीमॉरलाइज करूँ। सुल्ताना ने पूछा, तुमने कया किया, मिसिरवा साले? माँ की गाली दी। उस समय मेरी जवानी थी, 32 वर्ष की आयु थी। जोश ज्यादा, होश कम था, मैंने कहा- दो-चार थाने लूटे, दो-चार बन्दूकें छीनीं और साहब कुछ नहीं किया। अब इतना किया, साला कहता है कि कुछ नहीं किया। क्या किया जब आप बरकरार रह गये यह सुनते ही वह आगबबूला हो गया और मारना शुरू किया। मैं सुल्ताना हूँ सुल्ताना। 'बाँधकर मारते हो, खोल मुझको भी', मैंने डपटा, सुल्ताना सुनते ही मुझ पर फिर फालिन हो गया। मैं तब भी जिन्दा रहा। शरीर तो अवश्य ही बोल गया था, पर आत्मबल अभी भी बनाये रखा, मूँछ पर हाथ फेरकर ताव दिया। साला मूँछ पर नाज करता है। उस दरोगा सुल्ताना ने मेरी मूँछ उखड़वा डाली जैसे मैदान से घास उखाड़ ली जाती है। उसके बाद छोटी कौम के लोगों से एक हंडिया में पेशाब कराया। दस-पाँच आदमी मेरे ऊपर चढ़ गये। एक ढरका (जानवरों की दवा पिलाने की बाँस की कुप्पी) से पेशाब मुँह में डाला गया। पेशाब पीना पड़ा। फिर कुछ राहत मिली। सुल्ताना शराब पीने फिर चला गया। फिर एक बजे से चार बजे शाम तक मारता रहा। दूसरे दिन फिर नशा पानी करके आया। आते ही सीने में ठोकर मारी। मैं बँधा हुआ था उसका पैर पकड़ने की कोशिश की पर पकड़ नहीं आया। बन्दूकें कहाँ हैं? भागे हुए लोग कहाँ हैं? तुमने क्या-क्या किया? इसी तरह की बातें पूछता रहा और साफ उत्तर न पाकर मारता रहा। मैंने कहा - मैं एक जमात का सिपाही हूँ, तुम दूसरी जमात के हो, मैं कैसे तुम्हें कोई बात बतला सकता हूँ। 11 दिसम्बर 1942 को बलिया स्टेशन पर उतारा गया। हथकड़ी, रस्सी लगाकर जेल लाया गया। लोग मुझे पहचान नहीं पाते थे, आत्मबल-इसी ने हमें सहने की शक्ति दी। गाँधी जी का यह आशीर्वाद कि जो एक गाल पर एक थप्पड़ मारे तो उसे दूसरा गाल भी दे देना, कि इस पर भी मारो। शरीर हृष्ट-पुष्ट भी था। गाँधी जी तो 21-21 दिन का अनशन करके जीवित रह गये, मैं दो-चार दिन की मार से कैसे मर सकता

हूँ? इसके अतिरिक्त भगवत्कृपा। मजाक में पुलिस वालों को खरी-खोटी सुनाता था, जेल में आ जाने पर कुछ खाना भी और अच्छा मिला, जेल से 11 दिसम्बर 1942 को कोतवाली बुलाया गया। पुलिस के एस.पी. पूछताछ के लिए मुझे 15 दिन के लिए जेल से कोतवाली बुलाया और मार-पीट का दौर शुरू हुआ। शाम को कोतवाल साहब ने जादूराम सिपाही की मार्फत अपने क्वार्टर पर बुलवाया। दरोगा जी ने कहा कि मुझे भी गणेश शंकर विद्यार्थी के जमाने से राजनीति में दिलचस्पी है। मुझसे पूछा कि बतलाओ कि क्या यह कांग्रेस का आन्दोलन है? मैंने उत्तर दिया, यह कांग्रेस का आन्दोलन है तभी मैं इसमें हूँ। 'अफसरान भी तुमसे नाराज हैं', 'अफसर तो आप भी हैं, क्या आप भी नाखुश हैं? आपका साया हम पर है तो और अफसरान को छोड़ दीजिए, हम उन्हें देख लेंगे। 'ठीक है, तुमने जो कुँवर सुन्दर सिंह के यहाँ बयान दिया है वह इतना गलत है कि वे तुम्हारी जान के पीछे लगे हैं। जाओ, जहाँ तक कोशिश होगी, मैं तुम्हें बचाऊँगा।' सलाम कहकर चला गया। 1 दिसम्बर 1942 को कोई वुड साहब एस.पी. थे आये। 'दीवान जी, महानन्द कौन है? बुलाओ उसे।' उनके सामने हाजिर किया गया, 'तुम्हारा दिमाग ठीक है?' 'हमार दिमाग ठीक बा, सब बतलायेगा साहब।' 'पीठ पर सवार हो गया, अपने बल का पूरा परिचय दिया। फिर खड़ा हो गया।' मैं भी धूल झाड़कर खड़ा हो गया।' 'आप श्रीमान् अच्छे आदमी हैं, फिर कब दर्शन देंगे।' 'ब्लडी शेमफूल, आयेगा।' जरूर साहब। उसके जाने के दो-तीन घण्टे बाद एक मुसलमान डिप्टी सुपरिन्टेण्डेण्ट आये, बोले, तुम्हारा दिमाग ठीक है, एकदम ठीक है, हजूर। बतलायेगा? सब बतलायेगा। हम कुछ नहीं किये हैं पर सभी मारते थे कि यह जरूर कांग्रेसी है। उसका ख्याल था कि मैं जैसे पुलिस कप्तान हूँ वैसे ही यह वालण्टियरों का कप्तान है। मारते थे और निराश होकर लौट जाते थे फिर कब आयेगा साहब, आप बहुत अच्छे आदमी हैं, आप अकेले अंग्रेज हैं, और इतने आपके गुलाम। जरूर आयें साहब। कोतवाल ने कहा, इसे उल्टा टाँग दो, चूतड़ में छूरा भोंककर मिर्चा भर दो। पर मैंने कुछ उनसे कहा नहीं। एक सुधार सिंह एस.पी. थे, वह आये और पूछा कि तुमने क्या-क्या किया। हमने कुछ नहीं किया सरकार। साले झूठ बोलते हो। तुम गड़वार गये थे। तुम हलधरपुर गये थे। चिल्लाकर कहा तुम उभांव गये थे। बोलते क्यों नहीं। सरकार हम एक जमात के सिपाही हैं, कैसे आपको कोई बात बतला सकते हैं। पहले आप मेरी जमात में शामिल हो जाओ तो आपसे बातचीत, आप अंग्रेज अफसर और इतने गुलाम इण्डियन। जरूर आयें साहब। 15, 16, 17 दिसम्बर 1942 को गैप रहा।[64]

महानन्द मिश्र के बारे में कुछ राजकीय अधिकारियों की टिप्पणी[65]

1. सन् 1942 में बलिया के पुलिस अधीक्षक सी.एल.डी. वुड ने (जो उस समय क्रान्तिकारियों पर जुल्म ढाने के कारण कुख्यात था) ने कहा था- सामने निःशंक खड़ा है। ध्रुवतारे की तरह स्थिर है। पर्वत की भाँति अडिग अचल। निःसन्देह वह देशभक्त है। ऐसे व्यक्ति की पूजा क्यों न हो।

2. बर्बर प्रताड़ना के लिए बदनाम थानेदार सुन्दर सिंह ने कहा- नि:सन्देह यह छोटे कर्मचारियों का शुभचिन्तक है। देशभक्त है। सरल हृदय का है।

3. 1943-44 में बलिया जेल के जेलर ओमप्रकाश गुप्त ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा- महानन्द मिश्र ने कभी किसी की शिकायत नहीं की, मौन रहकर जुल्म सहे और देखे। यह बन्दी निराले और अजीब स्वभाव का है। अपने लिए कभी किसी से कुछ नहीं माँगा। अत: खतरा है।

निष्कर्ष

1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान बलिया जिले के इस एक जननायक के बारे में उपलब्ध प्राथमिक स्रोतों पर आधारित इन जानकारियों से हमें ग्रामीण स्तर पर चलने वाली राजनीतिक परिस्थितियों व तत्कालीन आम लोगों के विचारों व जनता पर उनके प्रभावों का स्पष्ट चित्रण प्राप्त हो जाता है। उन लोगों पर एच.एस.आर.ए. जैसे क्रान्तिकारी संगठनों व कांग्रेस के विचारों के घालमेल का स्पष्ट स्वरूप दिखाई देता है। यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस वैचारिक घालमेल की कीमत आम जननायकों को किस प्रकार अत्याचार सहकर देनी पड़ी। महानन्द मिश्र पर हुए अत्याचार जैसे अनेक काण्ड पूरे भारत में घटित हुए। यह दुर्भाग्य की बात है क पूर्वांचल अथवा देश के अन्य भागों में साम्राज्यवादियों द्वारा किये गये अत्याचार का कहीं पर वर्णन नहीं मिलता है। 1942 के आन्दोलन के दौरान आम जनता किस प्रकार के वैचारिक द्वन्द्वों व अस्पष्ट रणनीतियों के मध्य झूल रही थी इसे बिना इस प्रकार के विशद् निम्नवर्गीय अध्ययनों के नहीं समझा जा सकता है। ■

सन्दर्भ-सूची:

1. आपराधिक इतिहास, एस.आई.डी.एस. बलिया, दिनांक 08.06.1942 आर.आर. नं. 05 - सी, आई.डी. उ.प्र. राजकीय अभिलेखागार, उ.प्र. लखनऊ।
2. मिश्र, पारसनाथ, कर्मयोगी महानन्द मिश्र-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्रकाशक- शहीद स्मारक एवं स्वतन्त्रता संग्राम शोध केन्द्र, लखनऊ, वर्ष 1997, पृ. 7
3. उपर्युक्त, 2
4. आपराधिक इतिहास, एस.आई.डी.एस. बलिया, दिनांक 08.06.1942 आर.आर. नं. 05 - सी, आई.डी. उ.प्र. राजकीय अभिलेखागार, उ.प्र. लखनऊ।
5. आर.आर. नं. - सी, आई.डी. 47 बलिया, राजनीतिक डकैती, राजकीय अभिलेखागार, उ.प्र. लखनऊ।
6. उपर्युक्त, 5
7. मिश्र, पारसनाथ, कर्मयोगी महानन्द मिश्र-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्रकाशक- शहीद स्मारक एवं स्वतन्त्रता संग्राम शोध केन्द्र, लखनऊ, वर्ष 1997, पृ. 27
8. दैनिक समाचार पत्र 'आज' - काशी से प्रकाशित, 7 मार्च 1932, साक्षात्कार महानन्द मिश्र द्वारा ब्रजेन्द्र शुक्ल,

उद्धृत मिश्र पारसनाथ, कर्मयोगी महानन्द मिश्र-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्रकाशक- शहीद स्मारक एवं स्वतन्त्रता संग्राम शोध केन्द्र, लखनऊ, वर्ष 1997

9. आपराधिक इतिहास, एस.आई.डी.एस. बलिया, दिनांक 08.06.1942 आर.आर. नं. 05 - सी, आई.डी. उ.प्र. राजकीय अभिलेखागार, उ.प्र. लखनऊ।
10. उपर्युक्त, 9
11. संस्मरण, गोकुल भाई, मारवाड़ी युवक संघ द्वारा प्रकाशित, 1944, पृ. 9
12. तिवारी, सरजू, गाजीपुर के क्रान्तिकारी, प्रकाशक जिला स्वाधीनता सेनानी संघ, गाजीपुर 1996, पृ. 5
13. संस्मरण, बेनीमाधव राय सोमरस विशेषांक, इण्टर कॉलेज मोहम्मदाबाद 1989-90, पृ. 113
14. राय, झारखण्डे, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन-एक विश्लेषण, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1994, पृ. 109
15. आई.आर. रिपोर्ट, जनवरी-जून 1935, अभिसूचना विभाग, उ.प्र. लखनऊ, पृ. 93
16. संस्मरण, गोकुल भाई, मारवाड़ी युवक संघ द्वारा प्रकाशित, 1944, पृ. 13
17. रराय, झारखण्डे, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन-एक विश्लेषण, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1994, पृ. 114
18. आई.आर. रिपोर्ट, जनवरी-जून 1935, अभिसूचना विभाग, उ.प्र. लखनऊ, पृ. 145
19. हेल एच.डब्ल्यू., टेररिज्म इन इण्डिया बिटवीन 1917-1936
20. सिंह फूलबदन, आजमगढ़ का स्वाधीनता संग्राम, भाग-2
21. साक्षात्कार पब्बर राम दिनांक 20.12.2002
22. संस्मरण, गोकुल भाई, मारवाड़ी युवक संघ द्वारा प्रकाशित, 1944, पृ. 21
23. उपर्युक्त, 22
24. आपराधिक इतिहास, एस.आई.डी.एस. बलिया, दिनांक 08.06.1942 आर.आर. नं. 05 - सी, आई.डी. उ.प्र. राजकीय अभिलेखागार, उ.प्र. लखनऊ।
25. गुप्त, मनमथ नाथ - हिस्ट्री ऑफ इण्डियन रिवोल्यूशनरी मूवमेण्ट, राजमाधव पब्लिकेशन, 1986, पृ. 27
26. उ.प्र. कांग्रेस कौमी सेवादल फाइल नं. जी. 2 ऑफ 1940, आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी पेपस, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी, नयी दिल्ली।
27. मिश्र, पारसनाथ, कर्मयोगी महानन्द मिश्र-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्रकाशक- शहीद स्मारक एवं स्वतन्त्रता संग्राम शोध केन्द्र, लखनऊ, वर्ष 1997
28. उपर्युक्त, 27
29. उपर्युक्त, 27
30. मिश्र, पारसनाथ, अप्रकाशित, संस्थान संरक्षित, लेखक स्वयं।
31. उ.प्र. कांग्रेस कौमी सेवादल फाइल नं. जी. 2 ऑफ 1940, आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी पेपस, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी, नयी दिल्ली।

32. साक्षात्कार, विश्वनाथ चौबे एवं सरजू पाण्डेय (दतौड़ा मुबारकपुर)

33. साक्षात्कार, राजेश्वर तिवारी, दिसम्बर 2001

34. साक्षात्कार, पब्बर राम, दिसम्बर 2002, 14

35. मिश्र, पारसनाथ, कर्मयोगी महानन्द मिश्र-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्रकाशक- शहीद स्मारक एवं स्वतन्त्रता संग्राम शोध केन्द्र, लखनऊ, वर्ष 1997, पृ. 85

36. उपर्युक्त, 33

37. राय झारखण्डे, पू.उ.

38. आपराधिक इतिहास, एस.आई.डी.एस. बलिया, दिनांक 08.06.1942 आर.आर. नं. 05 - सी, आई.डी. उ.प्र. राजकीय अभिलेखागार, उ.प्र. लखनऊ।

39. अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, मिश्र अजय कुमार, पूर्वांचल उत्तर प्रदेश में क्रान्तिकारी आन्दोलन पाश्चात्य इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 2009

40. उपर्युक्त, 39

41. गोपनीय पत्र दिनांक 25.24.1941 द्वारा डिप्टी एस.पी.सी.आई.डी.बी. को आर.आर. नं. 5- सी, आई.डी. 47 बलिया, राजनीतिक डकैती, राजकीय अभिलेखागार, उ.प्र. लखनऊ।

42. इन्स्पेक्टर बंशगोपाल सिंह की रिपोर्ट, आर.आर. नं. 5- सी, आई.डी. 47 बलिया, राजनीतिक डकैती, राजकीय अभिलेखागार, उ.प्र. लखनऊ।

43. एस.पी. बलिया को एस.पी.आई.बी. को लिखा गया पत्र। आर.आर. नं. 5- सी, आई.डी. 47 बलिया, राजनीतिक डकैती, राजकीय अभिलेखागार, उ.प्र. लखनऊ।

44. इन्स्पेक्टर राना हरनाम सिंह द्वारा एस.पी.आई.बी. को दिनांक 28.05.1942 को लिखा गया पत्र, आर.आर. नं. 5- सी, आई.डी. 47 बलिया, राजनीतिक डकैती, राजकीय अभिलेखागार, उ.प्र. लखनऊ।

45. उपर्युक्त, 1

46. मिश्र, पारसनाथ, कर्मयोगी महानन्द मिश्र-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्रकाशक- शहीद स्मारक एवं स्वतन्त्रता संग्राम शोध केन्द्र, लखनऊ, वर्ष 1997, पृ. 127

47. इन्स्पेक्टर राना हरनाम सिंह द्वारा एस.पी.आई.बी. को दिनांक 28.05.1942 को लिखा गया पत्र, आर.आर. नं. 5- सी, आई.डी. 47 बलिया, राजनीतिक डकैती, राजकीय अभिलेखागार, उ.प्र. लखनऊ।

48. उपर्युक्त, पृ. 47

49. अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, मिश्र अजय कुमार, पूर्वांचल उत्तर प्रदेश में क्रान्तिकारी आन्दोलन पाश्चात्य इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 2009

50. उपाध्याय देवनाथ, बलिया में क्रान्ति और दमन,

51. गुप्त दुर्गाप्रसाद - बलिया में क्रान्ति और दमन

52. उपर्युक्त, 51

53. उपर्युक्त, 51

54. उपर्युक्त, 51

55. उपर्युक्त, 51

56. उपर्युक्त, 50

57. उपर्युक्त, 50

58. उपर्युक्त, 51

59. उपर्युक्त, 51

60. निर्णय विशेष न्यायाधीश, बलिया सम्राट बनाम कमलापति व अन्य, मुकदमा सं. 36/1943 दिनांक 01.06.1943

61. उपर्युक्त, 50

62. मिश्र, पारसनाथ, कर्मयोगी महानन्द मिश्र-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्रकाशक- शहीद स्मारक एवं स्वतन्त्रता संग्राम शोध केन्द्र, लखनऊ, वर्ष 1997, पृ. 96

63. साक्षात्कार महानन्द मिश्र, द्वारा ब्रजेन्द्र शुक्ल उद्धरित मिश्र पारसनाथ, कर्मयोगी महानन्द मिश्र-व्यक्तित्व एवं कृतित्व

64. साक्षात्कार महानन्द मिश्र, द्वारा ब्रजेन्द्र शुक्ल उद्धरित मिश्र पारसनाथ, कर्मयोगी महानन्द मिश्र-व्यक्तित्व एवं कृतित्व

65. मिश्र, पारसनाथ, कर्मयोगी महानन्द मिश्र-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्रकाशक- शहीद स्मारक एवं स्वतन्त्रता संग्राम शोध केन्द्र, लखनऊ, वर्ष 1997, पृ. 25

1857 का स्वातन्त्र्य समर : गोरखपुर परिक्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. प्रदीप कुमार राव*

1857 ई. का वर्ष आधुनिक भारतीय इतिहास में अत्यंत महत्त्व का वर्ष रहा है। वस्तुतः मुस्लिम काल में विद्यमान अधिकांश राज्य मात्र ऊपरी तौर पर ही मुगल सत्ता को स्वीकार करते थे। मुगल साम्राज्य से मात्र उनका सम्बन्ध कर देने एवं आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता देने तक था। वे अपने आन्तरिक मामलों में पूर्णरूपेण स्वतन्त्र थे यहाँ के राजपूतों का इतिहास अपने स्वाभिमान एवं स्वतंत्रता के लिए विदेशी आक्रमणकारियों से सदैव संघर्ष का रहा है। अंग्रेजों के आने के कारण परिस्थितियों में परिवर्तन होने लगा क्योंकि इन्होंने शताब्दियों पुराने ढाँचे को तोड़ने का प्रयास किया। जिसके कारण देशी राज्यों के साथ ही साथ वहाँ की जनता में भी अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध असंतोष की ज्वाला सुलगने लगी थी। इसी असंतोष का प्रथम विस्फोट 10 मई 1857 ई. को ब्रिटिश फौज के सिपाहियों में शुरू हुआ, जिसने धीरे-धीरे पूरे देश में फैलकर प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का रूप ले लिया।

जिस समय सम्पूर्ण उत्तर भारत और मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सर्वत्र विरोध और संघर्ष आरम्भ हो चुका था, उस समय गोरखपुर भी इससे अलग-थलग न रह सका। फलतः पूर्वी उत्तर प्रदेश के पूरे गोरखपुर क्षेत्र में व्यापक रूप से स्वतंत्रता संघर्ष की लहर फैल गयी।

गोरखपुर में सन् 1857 ई. के मई माह तक बिल्कुल शान्ति का माहौल था, लेकिन आजमगढ़ की सैनिक छावनी में बड़ी संख्या में सैनिकों के रहने एवं एकत्र होने से गोरखपुर के सम्पूर्ण क्षेत्र में आतंक फैल गया।[1]

इस समय गोरखपुर में भारतीय फौजियों की दो कम्पनियाँ मौजूद थीं। एक का मुख्यालय आजमगढ़ तथा दूसरे का मुख्यालय सुगौली था तथा डब्ल्यू. विनियार्ड को गोरखपुर के कमिश्नर का अतिरिक्त कार्यभार भी सौंपा गया था।[2] समस्त गोरखपुरवासियों की दृष्टि आजमगढ़ और फैजाबाद से आने वाले समाचारों पर लगी रहती थी। समस्त उत्तर प्रदेश में तेजी के साथ स्वतंत्रता संघर्ष का प्रसार हो रहा था। इन परिस्थितियों को देखते हुए गोरखपुर के ब्रिटिश अधिकारियों एवं सेना को सतर्क रहने का निर्देश दे दिया गया था।[3] इन सभी कार्यवाहियों के बावजूद ब्रिटिश अधिकारी अत्यधिक चिन्तित थे तथा उन्होंने सुरक्षा की दृष्टि से गोरखपुर और आसपास के सभी

*प्राचार्य, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

स्थलों के कोष को एकत्र कर घाघरा नदी के मार्ग से आजमगढ़ भेजना आरम्भ कर दिया।[4] लेकिन इन सब तैयारियों के बावजूद अंग्रेज अधिकारी गोरखपुर के विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्रता संघर्ष के प्रसार को रोकने में असफल रहे।

विद्रोह की लपटें जब गोरखपुर में पहुँचीं तो इस क्षेत्र में रुद्रपुर के सतासी राजवंश ने सबसे पहले विद्रोह का शंखनाद किया। इस समय उदित नारायण सिंह इस राज्य के राजा थे। इनको सतासी राजा की उपाधि इसलिए मिली थी कि यहाँ के राजा के आधिपत्य में 87 गाँव थे।[5] जब क्रान्तिकारी नेता मुहम्मद हसन ने फैजाबाद से राजा उदित नारायण सिंह के पास अपना साथ देने के लिए दूत भेजा तो उस देशभक्त राजा ने जो उत्तर दिया वह अविस्मरणीय है। राजा ने दूत से कहा- ''आज न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान, आज हम सभी हिन्दुस्तानी हैं।''[6]

सतासी के राजा उदित नारायण सिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध 8 मई सन् 1857 ई. को नाव द्वारा गोरखपुर से आजमगढ़ की ओर जा रहे खजानों को लूटकर संघर्ष की घोषणा कर दी तथा घाघरा नदी के तट पर अपने अनुयायियों के साथ डेरा डाल दिया।[7] राजा के इस कार्य से खिन्न अंग्रेज अधिकारी डब्ल्यू. पेटर्सन ने एक बड़ी सेना राजा को गिरफ्तार करने के लिए भेजी। इस सेना के घाघरा नदी के तट पर पहुँचने से पूर्व ही सतासी नरेश उदित नारायण सिंह को इसकी सूचना मिल गयी। अतः वे अपना स्थान बदलकर संघर्ष के लिए आगे बढ़े। राजा उदित नारायण सिंह के नेतृत्व में बड़ी संख्या में उनके सहयोगी इस संघर्ष के लिए एकत्रित हुए।[8] परिणामस्वरूप थोड़ी ही देर में अंग्रेज सैनिकों को पीछे हटना पड़ा। इस महान सफलता के मिलते ही स्वतंत्रता सेनानियों का उत्साह बढ़ने लगे। वे निरन्तर ब्रिटिश नौकाओं द्वारा भेजे जा रहे खजाने और रसद पर निगाहें लगाये रहते तथा उस मार्ग से जाने वाली सभी नौकाओं को क्षति पहुँचाते हुए उन्हें लूट लेते थे।[9] सतासी राजा की भयावह स्थिति को देखते हुए बिहार प्रान्त तथा नेपाल देश से बड़ी संख्या में सैनिक दस्ते भेजे गये। लेकिन इनका स्वतंत्रता सेनानियों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा तथा वे निरन्तर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लड़ते रहे।[10]

6 जून 1857 ई. को नरहरपुर (बड़हलगंज) के राजा हरिप्रसाद सिंह तथा उनके सहयोगी आदमी, कर्मचारी, किसान तथा अधीनस्थ घाघरा नदी के गोरखपुर से आजमगढ़ तथा बनारस आदि को जोड़ने वाले नदी मार्ग को विशेषकर गोरखपुर से राजकीय कोष, गल्ला, आदमी तथा सेना के मार्ग को अवरुद्ध करने के उद्देश्य से बड़हलगंज कस्बे पर आक्रमण कर वहाँ बन्द 50 कैदियों को पुलिस चौकी से छुड़ा लिया।[11] चौकी के थानेदार को धमकी दी गयी, जिससे चौकी के जमादार तथा अन्य कर्मचारी चौकी छोड़कर भाग गये। राजा तथा उनके सहयोगियों ने गोरखपुर-आजमगढ़ के घाघरा पार करने के घाट पर कब्जा कर लिया तथा पुलिस थाने पर अधिकार कर घाघरा के यातायात को पूर्णरूपेण बन्द कर दिया।[12] बनारस सें 200 अंग्रेज सैनिक दोहरीघाट पर आ गये। राजा के वफादार नाविकों ने अपनी जान की परवाह किये बगैर नावों को नदी में डुबो दिया

परिणामस्वरूप अंग्रेज सैनिक नदी पार नहीं कर सके। अत: दोहरीघाट स्थित नील की कोठी से तोप लगाकर नरहरपुर राजा के किले को ध्वस्त कर दिया गया जिसका अवशेष आज भी विद्यमान है।[13] किले में हाहाकार मच गया जिससे किले में भगदड़ और ताण्डव जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी। राजा हरिप्रसाद सिंह अपने प्रिय हाथी जयमंगल पर सवार होकर कहीं चले गये दुबारा लौटकर अपने राज्य में नहीं आये।

गोरखपुर से गोला-खजनी मार्ग पर 36 किमी. की दूरी पर स्थित बढ़यापार भी इस विद्रोह से अछूता नहीं रहा। आधुनिक युग के प्रारम्भ में धुरियापार के कौशिक क्षत्रिय राजवंश के दो टुकड़े हो गये। पहला गोपालपुर और दूसरा बढ़यापार। टोडरचन्द के वंशजों ने बढ़यापार में अपनी राजधानी बनायी।[14] इस वंश के राजा तेजप्रताप बहादुर चन्द ने 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। इस संग्राम के समाप्त होने पर उनके राज्य और पदवी को अंग्रेजी सरकार ने जब्त कर लिया। किन्तु अंग्रेज अधिकारी उनको गिरफ्तार नहीं कर सके।[15]

निचलौल के राजा रनदौला सेन जो बुटवल राज परिवार का अन्तिम प्रतिनिधि शासक था, जो अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम में खुलकर भाग लिया। क्योंकि 1845 ई. में प्राप्त की गयी उसकी राजा की उपाधि एवं अनुदान भत्ता अंग्रेजों द्वारा समाप्त कर दी गयी थी।[16] 13 जनवरी 1858 ई. को डब्ल्यू. फोब्स के नेतृत्व में रेजीमेण्ट की दूसरी टुकड़ी निचलौल के राजा के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए भेजी गयी जो अपने घर की किलेबन्दी करने के साथ ही लोगों को भी इकट्ठा कर रहे थे। लेकिन जो सैन्य टुकड़ी भेजी गयी उसे राजा नहीं मिले, जिससे उनके घर को ध्वस्त करने के बाद सैन्य टुकड़ी वापस चली गयी तथा अंग्रेजी सरकार ने राज्य की सम्पत्ति को जब्त कर लिया।[17]

गोरखपुर से 15 किमी. पूरब स्थित डुमरी के बाबू बन्धु सिंह ने 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। बन्धु सिंह ने अपने अनुयायियों के साथ मिलकर गुरिल्ला युद्ध प्रारम्भ कर दिया। बन्धु सिंह ने पूरब से गोरखपुर जा रहे अंग्रेजी खजाने को लूटकर इस धन को अपने अनुयायियों तथा गरीब ग्रामीणों में बँटवा दिया।[18] बन्धु सिंह के संघर्ष में सफलता से अंग्रेज अधिकारियों में उन्हें गिरफ्तार करने की चिन्ता सताने लगी। इसके बाद अंग्रेजों ने मुखबिर सरदार सूरत सिंह मजीठिया के सहयोग से बन्धु सिंह को गिरफ्तार कर दिया। गोरखपुर शहर के अलीनगर मुहल्ले में उन्हें फाँसी दे दी गयी।[19]

बन्धु सिंह की फाँसी के साथ ही साथ उनके राज को भी अंग्रेजों ने जब्त कर लिया तथा सरदार सूरत सिंह मजीठिया जिसने मुखबिरी करके उन्हें गिरफ्तार करवाया था और अंग्रेजों की बहुत सहायता एवं सेवा की थी, को पुरस्कार स्वरूप डुमरी कोर्ट का जब्त राज दे दिया।[20] बन्धु सिंह माँ जगदम्बा के अनन्य भक्त थे। उनके गले में 7 बार फाँसी का फंदा टूट चुका था। यदि उन्होंने माँ जगदम्बे से प्रार्थना नहीं की होती तो उन्हें फाँसी दे पाना अंग्रेजों के वश की बात

नहीं थी।[21]

पडरौना से तमकुही जाने वाले मार्ग पर पडरौना से 7 किमी. की दूरी पर स्थित लक्ष्मीपुर राजवंश पडरौना राजवंश की ही एक शाखा है। लक्ष्मीपुर राजवंश ने सन् 1857 ई. के संघर्ष में गोरखपुर के सतासी, बढ़यापार, नरहरपुर आदि क्रान्तिकारी राज्यों का खुलकर साथ दिया। इस वंश के विद्रोही प्रवृत्ति के चलते अंग्रेजों को इस क्षेत्र में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। इसलिए क्रान्ति के बाद अंग्रेजों ने इस राज्य को जब्त कर लिया। किन्तु इसके प्रतिनिधि लक्ष्मीपुर के राय उपाधि वाले सैंथवार क्षत्रिय आज भी विद्यमान हैं।

बरहज से 4 किमी. पूरब तथा जिला मुख्यालय से 44 किमी. की दूरी पर घाघरा नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित पैना गाँव के ठाकुरों का भी 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में विशेष योगदान रहा है। डब्ल्यू.एस. पेटर्सन जिलाधिकारी गोरखपुर के पत्र डब्ल्यू विनियर्ड स्थानापन्न कमिश्नर गोरखपुर को लिखे गये पत्र दिनांक 2 जुलाई, 1857 ई. के अनुसार 31 मई 1857 ई. को पैना के जमींदारों द्वारा संघर्ष की घोषणा कर दी गयी। मौजा पैना के जमींदारों ने गोरखपुर तथा आजमगढ़ जिले के बीच घाघरा नदी का मार्ग अवरुद्ध कर नदी द्वारा संचालित यातायात बन्द कर दिया। इस प्रकार यातायात का एकमात्र मार्ग गोरखपुर से पटना तथा गोरखपुर से आजमगढ़ होते हुए बनारस जाने वाले नदी मार्ग को उन्होंने अवरुद्ध कर दिया तथा राजकीय कोष जो गोरखपुर से बनारस जाता था एवं राजकीय गल्ले की नावें लूटकर अपने अधिकार में कर लिया।[23]

बरहज स्थित चौकी के जमादार की सहायता के लिए सलेमपुर के थानेदार को भेजा गया ताकि संघर्षकारियों को कुचलकर नदी के यातायात का अवरोध समाप्त कर राजकीय कोष तथा गल्ले से भरी नावों की सुरक्षा की जा सके।[24]

पैना के जमींदारों द्वारा नौकाओं को लूट लिये जाने का समाचार जब अंग्रेज अधिकारियों को प्राप्त हुआ तो कैप्टन एस. हील के नेतृत्व में सेना की एक टुकड़ी पैना पहुँची। वहाँ पर स्वतंत्रता सेनानियों ने डटकर सेना का मुकाबला किया।[25] परिणामस्वरूप थोड़ी ही देर में अंग्रेजी फौज को वहाँ से पीछे हटना पड़ा, जिससे स्वतंत्रता सेनानियों का हौसला काफी बुलन्द हुआ और वे काफी दूर तक अंग्रेजों का पीछा किये। अन्ततः स्वतंत्रता सेनानियों ने नये उत्साह के साथ बड़ी संख्या में आजमगढ़ से गोरखपुर को जोड़ने वाले मार्ग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[26] स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा आजमगढ़ जाने वाले मार्ग पर कब्जा कर लेने की सूचना अंग्रेजों को मिली तो वे अत्यधिक भयभीत हुए। क्योंकि अंग्रेजी सेना की प्रमुख छावनी आजमगढ़ में स्थित थी, जहाँ गोरखपुर, देवरिया तथा अन्य क्षेत्रों से इसी मार्ग द्वारा सैनिकों के लिए रसद भेजा जा रहा था।[27] इस मार्ग पर अधिकार हो जाने से स्वतंत्रता सेनानियों को एक बड़ी सफलता हासिल हुई। अब स्वतंत्रता सेनानियों ने अलग-अलग टुकड़ियों में बँटकर अपना संघर्ष शुरू किया। इन टुकड़ियों का नेतृत्व अलग-अलग क्रमशः सतासी राज के राजा उदित नारायण सिंह तथा पैना के जमींदारों ने करना

आरम्भ कर दिया।[28] इनमें सर्वश्री इन्द्रजीत सिंह, हरिकृष्ण सिंह, ठाकुर सिंह, मंगल सिंह, पल्टन सिंह, धज्जू सिंह, शिवजोर सिंह तथा शिवव्रत सिंह इत्यादि जमींदारों के नाम प्रमुख थे।[29]

29 जून 1857 ई. को जनरल वुड्स के नेतृत्व में एक विशाल सेना गोरखपुर-आजमगढ़ मार्ग पर बढ़ते हुए बड़हलगंज के करीब पहुँच गयी। इसकी सूचना चूँकि स्वतंत्रता सेनानियों को पहले से प्राप्त थी, अतः वे सड़क के दोनों तरफ लगी झाड़ियों में छुपकर संघर्ष के लिए तैयार हो गये थे, और ज्योंही अंग्रेजी सेना इनके करीब आयी स्वतंत्रता सेनानी उस पर धावा बोल दिये।[30] परन्तु दुर्भाग्यवश कुछ स्वतंत्रता सेनानी पीछे हटने को बाध्य हुए तथा इधर-उधर छिपते-छिपाते घाघरा नदी के किनारे जाकर शरण लिये।[31] इन गद्दारों के कारण स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी। इन्होंने अंग्रेजों को पहले ही सूचित कर दिया कि ये सेनानी निम्न स्थानों पर छिपे हुए हैं जहाँ से वे अंग्रेजी फौज पर आक्रमण करेंगे। अतः पहले से ही अंग्रेज अधिकारी इस युद्ध के लिए तैयार थे।[32] फलस्वरूप इस युद्ध में स्वतंत्रता सेनानियों की अत्यधिक क्षति हुई। बड़ी संख्या में स्वतंत्रता सेनानी घायल हुए तथा बन्दी बनाये गये। इन बन्दियों को बड़हलगंज पुलिस चौकी लाया गया तथा यहीं के कारागार में बन्द कर दिया गया।[33] स्वतंत्रता सेनानी इस संघर्ष के बाद घायलावस्था में घाघरा नदी के तट पर पहुँचकर अपने सभी साथियों से जा मिले तथा जो अपने साथियों से नहीं मिल पाये इधर-उधर छुपे हुए थे, वे भी धीरे-धीरे अपने साथियों के पास आने लगे।[34] स्वतंत्रता सेनानी पुनः अपने साथियों के मिल जाने पर खुशी से झूम उठे तथा वे फिर अपने अस्त्र-शस्त्र के साथ घाघरा नदी की जोरदार घेराबन्दी किये तथा नौकाओं से रसद एवं कोष लूटने के साथ ही इन पर सवार अंग्रेज अधिकारियों की निर्मम हत्याएँ शुरू कर दिये।[35] 5 जुलाई 1857 ई. तक अपने सभी साथियों को पुनः शस्त्रों से सुसज्जित कर स्वतंत्रता सेनानियों ने बड़हलगंज पुलिस चौकी पर आक्रमण कर बड़ी संख्या में कैद अपने सभी साथियों को चौकी के कारागार से स्वतन्त्र करा लिया।[36]

यह आक्रमण इतना उग्र था कि अंग्रेज सरकार ने इस क्षेत्र की सुरक्षा के निमित्त गोरखपुर से जनरल वुड्स के नेतृत्व में सिखों की एक सेना बड़हलगंज की तरफ भेजा।[37] लेकिन बड़हलगंज पहुँचने के पूर्व ही स्वतंत्रता सेनानियों ने उन पर अचानक आक्रमण कर दिया जिससे जनरल वुड्स घबरा गया तथा उसके अधिकांश जवान बुरी तरह घायल हुए। घायल जवानों को देख जनरल वुड्स गोरखपुर की तरफ भागा लेकिन रास्ते में उसे सूचना मिली कि गोरखपुर पर मुहम्मद हुसैन ने आक्रमण कर कब्जा कर लिया है।[38] पैना, सतासी, डुमरी व नरहरपुर आदि स्थानों के स्वतन्त्रता सेनानियों के दमन के लिए 28 जुलाई 1857 ई. को बिहार प्रान्त के सारण जिले से जनरल रोक्राफ्ट के नेतृत्व में एक विशाल सेना, जिसमें गोरखा एवं सिख सैनिक थे, जनपद में बुलाया गया तथा देवरिया के सभी थानेदारों को यह निर्देश दिया गया कि ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कार्यवाही करने वाले व्यक्ति को देखते ही गोली मार दी जाय।[39]

29 जुलाई 1857 ई. को कर्नल रोक्राफ्ट ने सम्पूर्ण पैना ग्राम तथा घाघरा नदी तट का निरीक्षण किया। कर्नल रोक्राफ्ट ने गोरखपुर के जिलाधिकारी डब्ल्यू. पेटर्सन को एक पत्र द्वारा एक बड़ी गोरखा सेना को गोरखपुर से आजमगढ़ के मार्ग पर भेजने की सिफारिश की। पेटर्सन ने तुरन्त एक सेना इस मार्ग पर भेजा।[40] इस मार्ग पर सेना के आ जाने पर कर्नल रोक्राफ्ट ने एक सशस्त्र दल हिरगोटा नामक स्टीमर द्वारा घाघरा नदी से होकर पैना की तरफ भेजा।[41]

स्वतंत्रता सेनानियों ने जब सशस्त्र सैनिकों के साथ इस जहाज को अपनी तरफ आते देखा तो वे खुले स्थान से मोर्चा लेने के बजाय कई भागों में बँटकर कुछ गाँव में घुस गये तथा कुछ आसपास की झाड़ियों में छिपकर मुकाबले के लिए तैयार हो गये।[42] हिरगोटा स्टीमर के पैना पहुँचने के पूर्व ही कर्नल रोक्राफ्ट ने मझौली राजा की सेना तथा ब्रिटिश सरकार की सिख एवं गोरखा सेना के साथ बरहज बाजार से होकर जाने वाले मार्ग से पैना गाँव में आ डटा।[43] उसने सभी स्वतन्त्रता सेनानियों को आत्मसमर्पण करने के लिए दस मिनट का समय दिया, लेकिन कोई सेनानी उपस्थित नहीं हुआ तथा उन्होंने इसका जवाब गोलियाँ चलाकर दिया।[44] अन्ततः 30 जुलाई 1857 ई. को कर्नल रोक्राफ्ट ने अपने सैनिकों को गोली चलाने का आदेश दे दिया। इस भीषण संघर्ष में दोनों तरफ पर्याप्त हानि हुई।[45]

स्वतन्त्रता सेनानियों में से बहुत से लोग भगा दिये गये किन्तु सिख सेना के ऊपर एकाएक आक्रमण कर स्वतन्त्रता सेनानियों ने उन्हें फिर तितर-बितर कर दिया। सिख सैनिकों को घायल होता देख रोक्राफ्ट ने सन्तुलन खो दिया। इसके बाद उसने हिरगोटा स्टीमर से पूरे पैना गाँव पर बम वर्षा करने का आदेश जारी कर दिया।[46] नदी की तरफ से भीषण गोलाबारी के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष तथा बच्चे मारे गये; पूरा गाँव गोले से लगी आग में धू-धू कर जल उठा। स्त्रियाँ अपने बच्चों को लेकर इधर-उधर भाग रही थीं तथा अंग्रेज सैनिक उन्हें अपनी गोलियों का शिकार बना रहे थे।[47] बहुत-सी स्त्रियों का शील भंग हो गया, जो स्त्रियाँ अपने शील की रक्षा न कर पायीं उन्होंने घाघरा नदी में कूदकर अपनी जान दे दी।[48] जिस स्थान पर स्त्रियों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी, वहाँ उनके सम्मान में मन्दिर बनवाया गया जिसे सती घाट के नाम से जाना जाता है। यह स्थान आज भी यहाँ सुरक्षित है। पैना गाँव के लोग आज भी अपने किसी शुभ कार्य की शुरुआत इस सती घाट पर पूजा-पाठ के बाद ही करते हैं।[49]

ब्रिटिश सैनिकों के द्वारा पैना गाँव पर लगभग 45 मिनट तक बमबारी एवं गोलाबारी की गयी जिसके कारण यह गाँव भस्मसात हो गया।[50] बहुत से सेनानियों को गिरफ्तार कर जेलों में बन्द कर दिया गया तथा उन पर मुकदमे चलाये गये जिसके फलस्वरूप कुछ को अदालत ने कालेपानी तथा कुछ को फाँसी की सजा दी।[51]

पैना गाँव के इस युद्ध की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वहाँ के राजपूत जमींदारों के साथ सभी हिन्दू एवं मुसलमान परिवारों ने एकजुट होकर निःस्वार्थ भाव से अंग्रेजों के विरुद्ध

आखिरी दम तक संघर्ष किया। इस संघर्ष में उमराव मियाँ जो हकीम भी थे, ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस गाँव की एक विशेषता यह है कि पैना पूरब पट्टी में मुस्लिम आबादी ज्यादा थी, मुसलमानों द्वारा राम-जानकी मन्दिर का निर्माण कराया गया तथा पश्चिम पट्टी में जहाँ हिन्दू आबादी अधिक थी वहाँ हिन्दुओं ने एक मस्जिद का निर्माण करवाया। वर्तमान समय में वहाँ हिन्दू-मुस्लिम एकता की मिसाल कायम है।

पैना के सती घाट पर 1 सितम्बर 1997 ई. को शहीद स्मारक ग्राम पैना, जनपद-देवरिया का शिलान्यास तत्कालीन मुख्यमन्त्री सुश्री मायावती द्वारा किया गया। लेकिन यह अत्यन्त दु:खद तथ्य है कि सन् 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संघर्ष से लेकर 1947 ई. के स्वतन्त्रता प्राप्ति तक यहाँ के वीर सपूतों ने अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया परन्तु वीर सपूतों की यह धरती आज भी प्रशासनिक उपेक्षा का शिकार बनी हुई है।

गोरखपुर से 39 किमी. दक्षिण तथा बाँसगाँव से 17 किमी. दक्षिण पूर्व में स्थित गगहा के राजपूतों ने भी स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया। वस्तुत: गगहा चौरासी गाँवों का एक समूह है, जिसमें हतवा, डुमरी, महदेइया, बाँसगगहा, कत्थाचक, हाटा, पाण्डेपार, कुसमौरा बुजुर्ग, पशपुरवा इत्यादि गाँव सम्मिलित हैं। इसमें राजपूतों की संख्या अधिक थी। जिस समय अंग्रेज अधिकारी गोरखा सैनिकों के संरक्षण में 17 अगस्त 1857 ई. को गगहा होकर आजमगढ़ की ओर ब्रिटिश खजाने के साथ जा रहे थे, उसी समय पाण्डेपार के स्वतन्त्रता सेनानी गोविन्द बली सिंह ने यह सूचना भेजी थी कि अंग्रेजों को गगहा और बड़हलगंज के बीच रोककर खजाने को लूट लिया जाये।[52] यद्यपि गोरखपुर के नाजिम मुहम्मद हसन की सेना के आने में विलम्ब होने के कारण गगहा के राजपूतों ने निहत्थे, अंग्रेजों और गोरखा सैनिकों से मोर्चा लिया, जिसमें गगहा के लोगों को भारी क्षति उठानी पड़ी।[53]

भौवापार के श्रीनेत जमींदारों ने भी 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संघर्ष में अंग्रेजों से कड़ा मुकाबला किया। जिस समय अंग्रेज भौवापार घाट से रास्ता बदलकर राप्ती नदी पर नावों का पुल बनाकर गोरखपुर से आजमगढ़ की ओर ब्रिटिश खजाने को ले जा रहे थे, उसी समय भौवापार के श्रीनेत जमींदारों तथा आसपास की जनता ने इस खजाने को लूटने का प्रयास किया। यदि जिला मजिस्ट्रेट मि. बर्ड ने नये नावों का पुल नहीं बनवाया होता तो अंग्रेजों की सम्पूर्ण सेना राप्ती नदी के भौवापार घाट पर ही डुबो दी जाती। इसीलिए आज भी राप्ती के नये घाट को बर्डघाट के नाम से जाना जाता है।[54]

12 अगस्त 1857 ई. को मुहम्मद हुसैन ने विद्रोही सैनिकों के साथ कप्तानगंज पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने इसे पुन: अपने कब्जे में करने के लिए 40 सैनिक टुकड़ियाँ भेजीं। लेकिन इन्होंने मुहम्मद हुसैन से संघर्ष करने के बजाय उसका सहयोग करना प्रारम्भ कर दिया। 1857 ई. के बाद जब यह ब्रिटिश शासन के अधीन आया तो वहाँ के जमींदारों पर यह आरोप

लगाते हुए कि उन्होंने स्वतन्त्रता सेनानियों का सहयोग किया, उनकी सम्पत्तियों को हड़प लिया गया।[55]

1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में लार (देवरिया) के भवन सिंह के मन में भी अंग्रेजों के प्रति ज्वाला भड़क उठी। उस समय मझौली राज दरबार अंग्रेजों का समर्थक बना हुआ था और वह देशद्रोही कार्यों में लिप्त था। अत: भवन सिंह ने मझौली राज पर चढ़ाई कर उसे दण्ड देने का प्रयास किया। इसकी सूचना मझौली के राजा उदयनारायण मल्ल को मिल गयी। उसने अंग्रेजों से सुरक्षा की माँग की।[56] दूसरी तरफ भवन सिंह के नेतृत्व में धरमेर के विजयबहादुर मल्ल, भवन सिंह के पुत्र गोपाल सिंह, बरडीहा के गोविन्द सिंह, द्वारिका सिंह, पैना के ठाकुर सिंह, शिवव्रत सिंह, पल्टन सिंह, शिवजोर सिंह, कुँअर सिंह के भतीजे हरिकिशन सिंह, गोरखपुर के नायब नाजिम मुसर्रफ खाँ के साथ पाण्डेपार चिल्लूपार के राजा, बस्ती के शिवगुलाम सिंह आदि ने 25 दिसम्बर 1857 को सोहनपुर के पूरब पोखरे के दक्षिण तरफ स्थित बाग में अपना कैम्प डाल दिया।[57]

इस संघर्ष में चूँकि भवन सिंह एवं उनके साथियों की पराजय हुई जिसमें भवन सिंह का साथ सोहनपुर के युद्ध में अहिरौली के श्रीनारायण दयाल कानूनगो जो भूतपूर्व सहायक कलेक्टर थे, ने दिया था।[58] अत: 27 दिसम्बर 1857 ई. को ही नारायण दयाल कानूनगो के साथ इनका घर तोप से उड़ा दिया गया। लेकिन ये अंग्रेजों की पकड़ से बाहर रहे।[59]

10 मई 1857 ई. को फौज के सिपाहियों से प्रारम्भ होने वाले प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की ज्वाला धीरे-धीरे पूरे देश में फैल गयी जिसकी लपटों ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर क्षेत्र को भी अपनी गिरफ्त में ले लिया। एक सैनिक विद्रोह से प्रारम्भ होने वाला संग्राम पूरी आम जनता का विद्रोह बन गया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि इस विद्रोह में केवल सैनिकों तथा उन राजाओं और जमींदारों ने भाग लिया जिनकी जागीरों को ब्रिटिश सरकार ने हड़प लिया था, इस विद्रोह में आम जनता की कोई भागीदारी नहीं थी। लेकिन यह मत उचित प्रतीत नहीं होता। क्योंकि पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर क्षेत्र में इस प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में जिन लोगों ने भाग लिया, वे नि:स्वार्थ रूप से ब्रिटिश सैनिकों से लड़े जिनका एक ही लक्ष्य था- 'विदेशी दासता से अपने देश को मुक्त कराना।'

1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की गोरखपुर में शुरुआत सतासी राजा उदित नारायण सिंह ने गोरखपुर से आजमगढ़ भेजे जा रहे ब्रिटिश खजाने से भरी नावों को लूट कर किया। फलत: इस क्षेत्र में विद्रोह की ज्वाला जंगल की आग की तरह फैल गयी, जिसमें डुमरी के जमींदार बन्धु सिंह ने आजमगढ़ जा रहे ब्रिटिश खजाने को लूट लिया और खजाने को गरीब जनता में बँटवा दिया। बन्धु सिंह की सफलता से अंग्रेजों को चिन्ता हुई तथा अंग्रेजों ने इनका दमन करने का प्रयास शुरू किया। अंग्रेजों ने सरदार सूरत सिंह मजीठिया की निशानदेही पर बन्धु सिंह को गिरफ्तार कर फाँसी

पर चढ़ा दिया।

इस स्वतन्त्रता संग्राम में रुद्रपुर के सतासी राजा, बन्धु सिंह के अलावा लार के भवन सिंह ने पैना के पल्टन सिंह, शिवव्रत सिंह, बरडीहा के गोविन्द सिंह आदि की सहायता से मझौली के देशद्रोही राजा को दण्ड देने का प्रयास किया। पैना के जमींदारों, हिन्दुओं और मुसलमानों ने इस स्वतन्त्रता संघर्ष में नि:स्वार्थ रूप से हिस्सा लिया। पैना के जमींदारों ने पैना गाँव के समस्त नागरिकों को साथ में लेकर अंग्रेजों को कड़ी चुनौती दी। इस संघर्ष में पैना के उमराव मियाँ ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसके साथ ही यहाँ की स्त्रियों ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी सती स्थल के रूप में पैना ग्राम में स्थापित है। इससे यह प्रमाणित होता है कि मात्र सैनिक विद्रोह से प्रारम्भ होने वाला संघर्ष धीरे-धीरे आम जनता का संघर्ष हो गया जिसमें इस क्षेत्र की आम जनता ने पूर्ण मनोयोग से हिस्सा लिया तथा अंग्रेजों को कठिन चुनौती दी। वस्तुत: यह विद्रोह दबा दिया गया लेकिन इस क्षेत्र में अंग्रेजों को कड़ी चुनौती का सामना करना पड़ा।

सन्दर्भ:

1. नेविल, एच.आर.: गोरखपुर ए गजेटियर, वॉल्यूम XXXI, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ द यूनाइटेड प्रॉविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध, पृ. 188
2. अंसारी, अहसन : भारत की प्रथम अंगड़ाई, पृ. 123-124
3. सिंह, ठाकुर प्रसाद : जिला गोरखपुर के स्वतन्त्रता सेनानी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 2
4. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 144
5. पाण्डेय, डॉ. राजबली : गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित, पृ. 234-35
6. सतासी राज्य से प्राप्त साक्ष्यों.....'राष्ट्रीय सहारा', गोरखपुर, 15 अगस्त 2005 का लेख
7. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 303-304
8. वही, पृ. 152
9. म्यूटिनी नैरेटिव एन.डब्ल्यू.पी. आगरा, पृ. 16 (रा.अ.ल.)
10. गोरखपुर जिलाधिकारी डब्ल्यू. पेटर्सन द्वारा 12 जुलाई 1857 ई. को भारत सरकार के पास भेजा गया पत्र : प्री म्यूटिनी रिकार्ड्स बुक सं. 177, रा.अ.न.दि.।
11. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 145
12. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 146
13. तत्रैव

14. पाण्डेय, डॉ. राजबली : गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित,1946, पृ. 271
15. पाण्डेय, डॉ. राजबली : गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित,1946, पृ. 274
16. उ.प्र.डि.ग., गोरखपुर 1987, पृ. 302-303
17. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 304
18. दैनिक जागरण गोरखपुर, 7 सितम्बर 1997, पृ. 2
19. पाण्डेय, डॉ. राजबली : गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित,1946, पृ. 277
20. तत्रैव, पृ. 278
21. डुमरी कोर्ट में प्रचलित जनश्रुतियों के आधार पर प्राप्त जानकारी के अनुसार
22. पाण्डेय, डॉ. राजबली : गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित,1946, 273
23. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 144
24. तत्रैव
25. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 372
26. गोरखपुर के कार्यवाहक जिलाधिकारी द्वारा बनारस के कमिश्नर को आजमगढ़ से 28 जुलाई 1857 को लिखा हुआ पत्र, सं. 37
27. नेविल, एच.आर. : पूर्वोद्धृत, पृ. 188-95
28. सिंह, ठाकुर प्रसाद : जिला गोरखपुर के स्वतन्त्रता सेनानी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 1, 2
29. सिंह, ठाकुर प्रसाद : जिला गोरखपुर के स्वतन्त्रता सेनानी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 97
30. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 298-303
31. सिंह, ठाकुर प्रसाद : जिला गोरखपुर के स्वतन्त्रता सेनानी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 2
32. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 348
33. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 333
34. सिंह, ठाकुर प्रसाद : जिला गोरखपुर के स्वतन्त्रता सेनानी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 2
35. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 348

36. ओरिजिनल टेलीग्राम सं. 529 दिनांक 9 जुलाई 1957, स.रे.रु. लखनऊ
37. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 303
38. 5 जुलाई 1858 ई. को गोरखपुर के कमिश्नर सी. विंगाफिल्ड द्वारा विलियम मूर, सेकरेटरी एन.डब्ल्यू.पी. गवर्नमेण्ट के पास भेजा गया पत्र, सं. 135 (स.रे.रु. लखनऊ)
39. नरेटिव ऑफ इवेण्ट्स इन गोरखपुर : म्यूटिनी स्पोर्ट्स, 1857-58 ए.सि.सि. नं. 471, पृ. 5 (रा.अ.ल.)
40. तत्रैव, पृ. 3-6
41. फा.डि.एन.डब्ल्यू.पी. नरेटिव ऑफ इवेण्ट्स फार गोरखपुर, द वीक एंडिंग, 28 फरवरी 1858 (स.रे.रु.ल.)
42. सिंह, ठाकुर प्रसाद : जिला गोरखपुर के स्वतन्त्रता सेनानी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 2
43. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 297-300
44. सिंह, ठाकुर प्रसाद : जिला गोरखपुर के स्वतन्त्रता सेनानी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 21
45. नरेटिव ऑफ इवेण्ट्स इन गोरखपुर : म्यूटिनी स्पोर्ट्स, 1857-58 ए.सि.सि. नं. 471, पृ. 5 (रा.अ.ल.)
46. फा.डि.एन.डब्ल्यू.पी. नरेटिव ऑफ इवेण्ट्स फार गोरखपुर, द वीक एंडिंग, 28 अगस्त 1857 (स.रे.रु.ल.)
47. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 150
48. नेविल, एच.आर. : पूर्वोद्धृत, पृ. 229-34
49. लेखक ने स्वयं पैना गांव का भ्रमण करके वहां के लोगों से जानकारी प्राप्त की।
50. सिंह, ठाकुर प्रसाद : जिला गोरखपुर के स्वतन्त्रता सेनानी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 12, 13
51. जिला जज रेकार्ड रूम गोरखपुर, फाइल संख्या 5, 1857-58, पृ. 12
52. उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, देवरिया संस्करण 1987, पृ. 38
53. तत्रैव
54. भारतीय इतिहास संकलन समिति पत्रिका, संस्करण 1985, पृ. 133
55. उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, देवरिया संस्करण 1988, पृ. 284
56. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 297-302
57. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 297-302
58. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 300
59. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास : स्वतन्त्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृ. 301

■

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान गोरखपुर से प्रकाशित होने वाले पत्र-पत्रिकाओं का संक्षिप्त परिचय

*अनिल कुमार त्रिपाठी

प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं के केन्द्र होने के बावजूद राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाने के लिए बेचैन गोरखपुर की पत्रकारिता का वास्तविक रूप वह नहीं हैं, जो आज दिखाई पड़ रहा है। इसका इतिहास एक या दो दशक नहीं बल्कि 123 साल पुराना है। यहाँ पत्रकारिता की शुरूआत सन् 1881 ई. में उर्दू के साप्ताहिक-पत्र ''रियाजुल अखबार'' से हुई। हिन्दी पत्रकारिता की शुरूआत सन् 1907 ई. में ''क्षत्रिय'' नामक अखबार से हुई।[1]

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गोरखपुर से प्रकाशित होने वाले अखबारों ने काफी योगदान दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान यहाँ से निम्नलिखित पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित होती थीं :-

रियाजुल अखबार- सन् 1881 ई. में प्रखर देशभक्त मौलवी सुभानुल्लाह ने तमाम खतरे उठा कर इसका प्रकाशन शुरू किया। इसके सम्पादक रियाज खैराबादी थे। इसमें सर सैयद अहमद खाँ, गांधी जी, नेहरू आदि के लेख सहित देश-विदेश की खबरें छापती थीं। 5 जून 1888 ई. की रात को सम्पादक रियाज साहब पर हमला किया गया।[2] हमले में उन्हें काफी चोंट आयी फिर भी वह डिगे नहीं। उन पर हुए हमले की तत्कालीन बड़े अखबारों ने काफी भर्त्सना की। 1882 ई. से इसमें व्यंग साप्ताहिक ''इतरे फितना'' निकलने लगा, जिससे अंग्रेज अफसर काफी रूष्ट थे। यह अखबार 1898 ई. तक सम्पादित होता रहा।

सुलह कुल- सन् 1895 ई. में रेयाज खैराबादी ने रोजनाभा ''सुलह कुल'' निकाला। इसके सम्पादक मण्डल में मौलवी सुभानुल्लाह अब्बासी और बैरिस्टर हबीबुल्लाह भी शामिल थे। यह अखबार 1902 ई. तक निकलता रहा, बाद में मौलवी सुभानुल्लाह मालिक और हकीम बरहम सम्पादक बन गये।

अलवक्त- सन् 1892 ई. में गोरखपुर के निजामपुर मुहल्ले से ''अलवक्त'' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ। इस अखबार में अंग्रेजी सरकार के जुल्म प्रमुखता से छापे जाते थे ताकि लोगों के अंदर देश की आजादी के लिए दीवानगी पैदा हो।

*208बी. सरस्वतीपुरम लेन-1 जेल बाईपास मार्ग, पो. पी.एस.सी. कैम्प (बिछिया) गोरखपुर 273014 मो.न. 9839007282

मशरिक- गोरखपुर के हकीम बरहम ने सन् 1906 ई. में ''मशरिक'' नामक अखबार निकाला। तमाम बाधाओं और परेशानियों के बावजूद यह अखबार आज भी प्रकाशित हो रहा है।

बेदारी- गोरखपुर से प्रकाशित होने वाले उर्दू अखबारों में यह सबसे क्रांतिकारी अखबार था। यह साप्ताहिक अखबार था, जो 1920 ई. से निकलना शुरू हुआ। उसके सम्पादक सैय्यद कामिल हुसैन पेशे से एडवोकेट और कांग्रेस के कट्टर समर्थक थे।

क्षत्रिय- गोरखपुर में हिन्दी पत्रकारिता का शुभारम्भ मासिक-पत्र क्षत्रिय से हुआ। इसका प्रकाशन सन् 1907 ई. में गोरखपुर के ज्ञान-शक्ति प्रेस से हुआ। इसके प्रकाशक श्री मंगरू प्रसाद सिंह और मुद्रक श्री शिवकुमार शास्त्री थे।[3] इसका पत्र का प्राथमिक उद्देश्य क्षत्रिय जाति का उद्धार करना था।

ज्ञान-शक्ति- सन् 1914 में अलहदादपुर पास से मुनिश्वर शिवमुनि द्वारा ''ज्ञान-शक्ति'' साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। उनकी नीति थी कि वे वही लेख छापेंगे जो प्रजा के विरूद्ध न हो और उससे हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तान का हित हो। वह स्वयं के पराक्रम व शौर्य से आजादी पाना चाहते थे। वास्तव में ज्ञान-शक्ति एक धार्मिक पत्रिका थी। इसलिए इसमें योग, मिताहार, सत्य, ब्रह्म ज्ञान जैसे लेख मुख्य रूप से होते थे, परन्तु इसके पहले पन्ने पर अंतर्राष्ट्रीय समाचारों का सारांश और आखिरी पन्ने पर कचहरी के सम्मन और मुकदमों का वर्णन देखा जा सकता था। इसमें चीन और जापान के बीच चल रहे युद्ध का नियमित वर्णन देखा जा सकता था। इसके अतिरिक्त बीच के पन्ने पर कोई न कोई कहानी अवश्य छपती थी, जिसमें सारा लोक जीवन उजागर होता था। इस पत्र के 10 अगस्त, 1928 ई. के अंक में 'बारडोली सत्याग्रह समझौता हो गया' शीर्षक से एक लेख छपा था जिसमें किसानों के जब्त जमीन के वापसी के बाद वहाँ के किसानों में व्याप्त खुशी का वर्णन किया गया।

प्रभाकर- ज्ञान-शक्ति के सहयोग के कुछ साहित्यकारों ने अपनी छिटपुट साहित्यिक पत्र-पत्रिकायें निकाली। इसी क्रम में पण्डित गौरी शंकर मिश्र ने ''प्रभाकर'' नामक मासिक-पत्र 1915 ई. में निकाला। इस पत्र का उद्देश्य भी हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान की सेवा करना था। महिलाओं को यह पत्रिका इस शर्त पर नि:शुल्क दी जाती थी, कि वे शिक्षाप्रद लेख लिखकर दें।

स्वेदश- गोरखपुर से प्रकाशित हिन्दी अखबारों में सबसे महत्त्वपूर्ण ''स्वदेश'' था। इस अखबार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के महान उद्देश्य के साथ पत्रकारिता की एक अनुकरणीय आचार संहिता बनाई और कठिन परिस्थितियों में भी उसका कड़ाई से पालन किया। इस पत्र नें गांधीवादी विचारधारा के साथ स्वतंत्रता आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वदेश के सम्पादक पण्डित दशरथ प्रसाद द्विवेदी थे जिन्होंने गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे देशभक्त से पत्रकारिता और राष्ट्रभक्ति की दीक्षा ली थी। उन्हीं के आदेश पर गोरखपुर से स्वदेश अखबार निकला। इसमें भाई हनुमान प्रसाद पोद्दार का भी सहयोग

था।[4] स्वदेश का पहला अंक ''प्रेमोपहार'' सन् 1919 ई. में निकाला था इस अंक का सम्पादकीय महान साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद ने लिखा था। पहले ही अंक में मुंशी प्रेमचंद की कहानी ''सेवा मार्ग'' छपी। द्विवेदी जी गांधीवादी होते हुए भी रामप्रसाद बिस्मिल जैसे क्रांतिकारियों के शुभ चिंतक थे। राम प्रसाद बिस्मिल द्वारा जेल में लिखें गए लेखों को द्विवेदी जी ही गणेश शंकर विद्यार्थी तक पहुँचाते थे। अंग्रेज सरकार स्वदेश के विचारोत्तेजक लेखों से डरती थी। इस पर कई बार प्रतिबंध लगाने का प्रयास किया गया और लगा भी। जुर्माने के तौर पर द्विवेदी जी को भारी धनराशि अदा करनी पड़ती थी। स्वदेश के लेखों और कविताओं के कारण द्विवेदी जी को दस वर्ष की सजा मिली। अपार कष्ट सहकर भी स्वतंत्रता के पथ से वह विचलित नहीं हुए। द्विवेदी जी एक तरह से गोरखपुर की पत्रकारिता के 'भीष्म पितामह' थे। स्वदेश ने सन् 1919 से 1938 ई. तक पत्रकारिता की मशाल जलाए रखी। इसमें देश के नेताओं के अलावा मैथिलीशरण गुप्त, मुंशी प्रेमचंद, बेचन शर्मा 'उग्र', बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' और फिराक गोरखपुरी आदि की रचनायें प्रकाशित होती थीं।

जीवन- सन् 1932 ई. में देशभक्त शिवमंगल गांधी ने में साप्ताहिक-पत्र ''जीवन'' का प्रकाशन शुरू किया। इस पत्र की यह विशेषता थी कि इसमें विवादित लेख नहीं छपते थे।

वसुन्धरा- सन् 1932 ई. में गोलाबाजार गोरखपुर से ''वसुन्धरा'' नामक मासिक पत्रिका निकलने लगी। इसके सम्पादक व्याकरणाचार्य पण्डित केदारनाथ त्रिपाठी थे। इस पत्रिका में एक तरफ आजादी के लिए लड़ रहे युवकों के प्रति विशेष आदर भाव था, तो दूसरी ओर इसमें लोक संस्कृति को उजागर करने वाली सांस्कृतिक गतिविधियाँ और समस्याएँ होती थीं। उस समय इस पत्र का मुख्य उद्देश्य देश की आजादी थी, इसलिए इन लोगों ने ''युवक संघ'' नामक संगठन बनाया था। इस पत्र का ऊपरी आवरण तो सांस्कृतिक लगता था, परन्तु मूल में देश की आजादी छिपी थी। इस पत्र ने उस समय के प्रमुख क्रांतिकारी नेता विश्वनाथ मुखर्जी के लेख कई बार छापे थे।

बवण्डर- स्वतंत्रता संग्राम के दौर में गोरखपुर अंचल से कुछ भूमिगत पत्र भी निकलते थे। ऐसे समाचार पत्रों ने अंग्रेज सरकार को खूब छकाया। ऐसे पत्रों का प्रकाशन और लोगों में वितरण काफी जोखिम भरा था, गिरफ्तार होने की आशंका हमेशा बनी रहती थी। देवरिया के रामजी वर्मा बक्शीपुर से ''बवण्डर'' नामक साइक्लोस्टाईल भूमिगत पत्र निकाला, जो वास्तव में यथा नाम तथा गुण था।[5] सुप्रसिद्ध होमियोपैथे चिकित्सक एवं स्वतंत्रता सेनानी डॉ. शिवरत्न लाल भी इस पत्र से जुड़े थे। अपने उग्र विचारो के लिए प्रसिद्ध बवण्डर के वितरण हेतु बाबू अक्षयबर सिंह और जगदीश पाठक जैसे नेता हॉकर का काम करते थे। ये लोग बुलन्द आवाज में इसके शीर्षक और खबरें बोलकर बाँटा करते थे। उस समय बवण्डर को छापना, बाँटना, पढ़ना और पास में रखना जोखिम भरा काम था।

हलचल- बवण्डर की भांति हलचल भी एक साइक्लोस्टाइल पत्र था। यह भी बक्शीपुर से ही निकालता था। इसके सर्वेसर्वा क्रांतिकारी श्यामचरण शास्त्री और पारसनाथ राय थे। यह भी उग्र विचारधारा वाला पत्र था। इस पत्र क्रांतिकारियों से संबंधित घटनाओं और उनके विचार तथा लेख इसमें प्रकाशित होते थे।

वीर संतान- तिधरा पीपीगंज गोरखपुर से 1933 ई. में एक साप्ताहिक-पत्र वीर-संतान का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके व्यवस्थापक वाली प्रसाद तुलस्यान थे। इसमें समालोचना स्तंभ विख्यात साहित्यकार व राजनेता सम्पूर्णानन्द जी लिखा करते थे। इसमें सचीन्द्रनाथ सान्थाल जैसे क्रांतिकारियों की रचनायें बेखौफ छापी जाती थी।

सरजू- यह एक मासिक-पत्र था, जो गोरखपुर के ग्रामीण क्षेत्र खोयापार से छपता था। इसके सम्पादक एवं व्यवस्थापक राजबली पाण्डेय थे। धनाभाव के कारण यह तीन अंक छपने के बाद बंद हो गया।

कल्याण- यह एक धार्मिक पत्रिका है। इसका प्रकाशन सन् 1927 ई. में गीता प्रेस से प्रारम्भ हुआ। इसकी शुरूआत संत प्रवर भाई हनुमान प्रसाद पोद्दार ने जयदयाल गोयन्दका के सहयोग से किया। भाई हनुमान प्रसाद पोद्दार धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। गणेश शंकर विद्यार्थी से इनके मधुर संबंध थे। ये अक्सर उनके कार्यालय (प्रताप के कार्यालय) जाया करते थे। पहले तो इस पत्रिका के साधारण अंक निकलते थे परन्तु बाद में विशेषांकों का प्रकाशन शुरू हुआ। कल्याण का पहला विशेषांक ''भगवन्नामांक'' था, जो सन् 1928 ई. में छपा। तब से लेकर आज तक विशेषांकों का प्रकाशन जारी है। गीता प्रेस का मुख्य कार्य सस्ते दर पर धार्मिक साहित्य उपलब्ध कराना है। राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की आध्यात्मिक पत्रकारिता में कल्याण का कोई जवाब नहीं है। गोरखपुर को इस पत्रिका पर गर्व है, क्योंकि इस पत्रिका के कारण विश्व स्तर पर गोरखपुर की पहचान बनी है। ■

सन्दर्भः

1. तिवारी, अर्जुन; और पण्डित दशरथ प्रसाद द्विवेदी, स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता लीलाधर प्रकाशन, कानपुर, 1992 ई., पृ. 17
2. व्यास, डॉ. लक्ष्मीशंकर; पराड़कर जी और पत्रकारिता, हिन्दी बंगवासी प्रकाशन, वाराणसी, 2001 ई., पृ. 27
3. स्मारिका, गोरखपुर नगर निगम, गोरखपुर, 'आकलन' 2002 ई., पृ 109
4. स्मारिका, प्रेस क्लब गोरखपुर, अथ्, 1999 ई., पृ 82
5. सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, गोरखपुर, विकास पुस्तिका, जनपद गोरखपुर, 2004 ई., पृ. 72

राष्ट्रीय सुरक्षा : भारत के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. अभिषेक सिंह*

सार-संक्षेप : भारत जैसे विविधता पूर्ण देश में जहाँ विभिन्न जातियाँ, भाषाएँ एवं धर्म, सम्प्रदायों से सम्बन्धित लोग निवास करते हैं। वहॉ के वातावरण में राष्ट्रीय सुरक्षा को चुनौती देने वाले तत्व सहज ही उपलब्ध होते है। यद्यपि जहाँ एक तरफ अनेकता में एकता भारत की ताकत है, वहीं दूसरी तरफ कई बार विद्वेष का कारण भी बन जाती है। भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रमुख चुनौती के रूप में आतंकवाद की उत्पत्ति का करण भी भारत की संरचना के मूल में स्थित है, जो ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में विद्यमान है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में आर्थिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर शोषण हो रहा है। जिसके कारण देश को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। वर्तमान समय में देश में प्रत्येक प्रांत के आंचलों में आतंकवादी अपने-अपने संगठन निर्मित कर चुके हैं। समय-समय पर वे हिंसक घटनाओं को अंजाम देते रहते है ये आतंक के पोषक संगठन सम्पूर्ण भारत में, कहीं संसाधनों का अभाव तो कहीं क्षेत्रीयतावाद, कहीं अलगाववाद तो कहीं नक्सलवाद जैसे कारणों के माध्यम से निरंतर भारत में समस्या उत्पन्न करते ही जा रहे हैं। इसी असन्तोष के कारण आतंकवाद का जन्म होता है। आर्थिक संसाधानों पर देश के सभी नागरिकों का समान अधिकार होना चाहिए न कि कुछ वर्चस्ववादी लोगों का, यहीं वर्चस्ववाद की भावना आतंकवाद को जन्म देती है।

बीज शब्द : सुरक्षा, राष्ट्रराज्य, आपरेशन थंडर, अलगाववाद

भारत विश्व में क्षेत्रफल एवं जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़े महाद्वीप एशिया में स्थित है। हिन्द महासागर के शीर्ष पर भारत की केन्द्रीय स्थिति है। भारत की स्थलीय सीमाएं पश्चिम में पाकिस्तान, उतर-पश्चिम में अफगानिस्तान, उतर में चीन, नेपाल, उतर-पूर्व में भूटान, तथा पूर्व में बांग्लादेश एवं म्यांमार देश से मिली हुई है। पश्चिम में पाकिस्तान और पूर्व में बांग्लादेश के साथ भारत की सीमाएं मानव निर्मित अथवा कृत्रिम हैं, जबकि शेष 6 देशों के साथ भारत की सीमाएं प्राकृतिक हैं, जो अधिकांशतः ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं के रूप में हैं। भारत की सबसे लम्बी स्थलीय सीमा चीन (3,380 किमी) के साथ है जबकि

*सहायक आचार्य, रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

सबसे छोटी स्थलीय सीमा भूटान (605 किमी) के साथ है। भारत के उतर-पश्चिम में इन्दिरा कॉल (Indira Col) पर भारत की स्थलीय सीमा अफगानिस्तान, पाकिस्तान और चीन से मिलती है जबकि सुदूर उतरी-पूर्वी कोने पर उतरी-पूर्वी त्रिसन्धि है जहां पर भारत, चीन और म्यंमार की सीमाएं आपस में मिलती हैं। समुद्र पार भारत का सबसे निकटतम पड़ोसी देश श्रीलंका है। पाक जलडमरूमध्य श्रीलंका को भारत के पृथक करता है। इण्डोनेशिया हमारा दूसरा निकटतम समुद्री पड़ोसी देश है। ग्रेट चैनल इण्डोनेशिया के सुमात्रा द्वीप और भारत के ग्रेट निकोबार द्वीप को पृथक करती है। लक्षद्वीप के दक्षिण में मालदीव हमारा एक और समुद्री पड़ोसी देश है।

भारत का कुल क्षेत्रफल 32,87,262 वर्ग किमी है, जो विश्व के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 2 प्रतिशत है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का विश्व में सातवां स्थान है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत से रूस 5 गुना तथा कनाडा, चीन एवं संयुक्त राज्य अमेरिका लगभग 3 गुना बड़े हैं, जबकि भारत बांग्लादेश से 23 गुना, जर्मनी से 9 गुना, फ्रांस से 6 गुना तथा पाकिस्तान से 4 गुना बड़ा है।

देश	सीमा पर अदस्थित भारतीय राज्य
पाकिस्तान	1. गुजरात, 2. राजस्थान, 3. पंजाब, 4. जम्मू और कश्मीर
अगानिस्तान	1. जम्मू और कश्मीर
चीन	1. जम्मू और कश्मीर, 2. हिमाचल प्रदेश, 3. उतरांचल, 4. सिक्किम, 5. अरुणाचल प्रदेश
नेपाल	1. उत्तर प्रदेश, 2. उतरांचल, 3. बिहार, 4. पश्चिम बंगाल, 5. सिक्किम
भूटान	1. सिक्किम, 2. पश्चिमी बंगाल, 3. असम, 4. अरुणाचल प्रदेश
बांग्लादेश	1. पश्चिमी बंगाल, 2. असम, 3. मेघालय, 4. त्रिपुरा
म्यांमार	1. अरुणाचल प्रदेश, 2. नागालैण्ड, 3. मणिपुर, 4. मिजोरम

किसी भी राष्ट्र-राज्य के लिए राष्ट्रीय की सुरक्षा, राष्ट्र हित की सूची में सबसे ऊपर रहती है। आम आदमी के लिए तो राष्ट्रीय सुरक्षा ही राष्ट्रीय हित का पर्याय है, जिसका अर्थ वह देश की भौगोलिक सीमाओं की रक्षा के द्वारा एकता और अखंडता को निरापद रखना समझता है। राष्ट्रीय सुरक्षा की पारम्परिक परिभाषा इसे सैनिक और सामरिक आयाम तक ही सीमित रखती थी। इस सोच को पुष्ट करने का कारण यह रहा है कि एकता, अखंडता और भौगोलिक सीमाओं को आक्रमणकारी उल्लंघन से मुक्त रखने में असमर्थ कोई भी राज्य अपने को संप्रभु नहीं मान सकता। यदि वह अपने अधिकार क्षेत्र में मानचित्र पर प्रदर्शित भू-भाग पर जिसे राष्ट्र-राज्य के रूप में पहचाना जाता है। उसे वह सुरक्षित नहीं रख सकता तो उसे पराधीन ही समझा जाता है।

यह बात अकसर अनदेखी रह जाती है कि आखिर चरम महत्वपूर्ण समझी जानी वाली यह सैनिक और सामरिक सुरक्षा, आखिर क्यों इतनी महत्वपूर्ण हैं? हकीकत यह है कि राष्ट्र-राज्य की सीमा

के भीतर, घरेलू राजनीति में अपनी इच्छानुसार आर्थिक नीतियां लागू करने के लिए, राजनीतिक प्रणाली चुनने के लिए और सामाजिक संगठन को सुव्यवस्थित रखने के लिए जिस स्वायत्तता की दरकार होती है, उसी के लिए किसी भी भू-भाग विशेष्ठा में सप्रंभु आधिपत्य अवाश्यक है। इनके आर्थिक-सामाजिक तथा सांस्कृतिक राष्ट्रीय हितों की हिफाजत, सैनिक सामरिक सुरक्षा के माध्यम से करने का प्रयत्न, राष्ट्रहित समझा जाता है। यह बात दोहराने लायक है कि राष्ट्रीय सुरक्षा के आर्थिक और सामाजिक पहलू सैनिक पक्ष से कम महत्वपूर्ण नहीं समझे जा सकते। कुछ विद्वानों का मानना है कि यह बात सामरिक शब्द में अंतर्निहित है। **वॉल्टर** नामक विद्वान ने एक बड़ी सारगर्भित टिप्पणी करते हुए यह बात साफ की है कि एक राष्ट्र को तभी तक सुरक्षित समझा जा सकता है, जब तक उसे अपने आधारभूत मूल्यों की कुर्बानी के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। इन मूल्यों को, जो उसके अस्तित्व के साथ जुड़े हैं और उसकी राष्ट्रीय पहचान का हिस्सा हैं, चुनौती दिए जाने पर उसमें यह सामर्थ्य होना चाहिए कि युद्ध को नकारने की स्थिति में, इनमें किसी तरह के समझौते की जरूरत न पड़े और युद्ध की स्थिति में (इनकी रक्षा के लिए) उसकी विजय सुनिश्चित हो। राष्ट्रीय सुरक्षा का यह अमूर्त पक्ष सबसे कम समझा जाता है और सम्भवतः यही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। **बैरीबुजान** नामक विद्वान ने यह बात दो टूक कही है कि राष्ट्रीय सुरक्षा विषयक पूरी बहस का लब्बोलुआब स्वाधीनता और आसन्न संकट के इर्द-गिर्द ही केन्द्रित रहना चाहिए। **राष्ट्र-राज्य के सन्दर्भ में राष्ट्रीय सुरक्षा का सिर्फ एक अर्थ हो सकता है, राज्यों और समाजों के लिए अपनी स्वाधीन पहचान बनाये-बचाये रखने की क्षमता।**

मुद्दे एवं चुनौतियाँ : भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान ब्रिटिश शासकों ने हिन्दू और मुस्लिम धर्म के लोगों के बीच फूट एवं घृणा का बीज डाला तत्पश्चात मुहम्मद अजी जिन्ना ने

दो राष्ट्र सिद्धान्त प्रस्तुत करके पाकिस्तान नामक अलग राष्ट्र की माँग की। इसके अनुसार मुस्लिम बहुल प्रान्तों को अलग करके तत्कालीन भारत को दो राष्ट्रों में बाँटा गया, जिसके परिणाम स्वरूप देश का विभाजन हुआ, लेकिन ब्रिटिश कूटनीति के करण कुछ ऐसी सुरक्षा समस्याएँ रह गयी जो आज भी विद्यमान है। इन सुरक्षा समस्याओं में हैदराबाद व जूनागढ़ की समस्या को तो हमारे तत्कालीन गृहमंत्री सरदार बल्लभभाई पटेल ने काफी सूझ-बूझ से 20 फरवरी 1948 ई. को जूनागढ़ व 17 सितम्बर 1948 ई. को हैदराबाद की समस्या को सुलझा लिया था। वैसे सुरक्षा की दृष्टि से आज पाकिस्तान हमारे लिए एक खतरा बना हुआ है। जिसका आरम्भ जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित गतिविधियों से मानते हैं। पाकिस्तान के निरन्तर विस्फोटक व विघटनकारी प्रक्रियाओं से क्षेत्रीय सन्तुलन बिगडा है। कश्मीर एक ऐसा राज्य है जहां वर्तमान में दौ सौ से भी अधिक आतंकवादी संगठन काम कर रहे हैं। जिनमें हिजबुल, मुजाहिद्दिन, अल-बदर तारीक-अल मुजाहिद्दिन, जम्मू कश्मीर लिबरेशन फ्रंट आदि प्रमुख है, जो धर्म एवं जिहाद के नाम पर वहां की जनता को भड़का रहे हैं। जम्मू कश्मीर लिबरेशन फ्रंट एक ऐसा सैनिक संगठन था जिसका मुख्यालय ब्रिटेन में स्थित था बाद में इसकी शाखाएँ फ्रांस, हालैण्ड, जर्मनी, अमरीका एवं मध्य एशिया के चारों देशों में खुल गई। प्रारम्भ से ही पाकिस्तान इसकी गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रेक्षकों ने जम्मू कश्मीर के दौरे के बाद अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट लिखा था कि भारत के इस क्षेत्र में आतंकवाद एवं तोड़ की क्रियाओं के पीछे पाकिस्तान का ही हाथ है। भारतीय संसद पर हमला, जम्मू विधानसभा पर हमला, अक्षरधाम पर हमला, जयपुर, अहमदाबाद, बंगलौर, सूरत, लखनऊ, फैजाबाद, वाराणसी, हैदराबाद और दिल्ली में बम विस्फोट, संकटमोचन मंदिर पर हमला, अयोध्या के राम मंदिर पर हमला, मुम्बई बम विस्फोट, कश्मीर में चल रहे नियमित रक्तपात आदि घटनाओं ने हमारी आंतरिक सुरक्षा को प्रभावित किया है। वर्तमान में विश्व मानचित्र पर पाकिस्तान में आतंकवादी संगठन प्रमुख रूप से अंकित हो गए हैं। यह भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए समस्या है, क्योंकि विश्व में आतंकवाद की जड़ें कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में पाकिस्तान से जुड़ जाती है।

भारत के पंजाब प्रांत में आतंकवाद पृथक खालिस्तान की मांग को लेकर शुरू हुआ, जिसनें देश की शांति व्यवस्था को झकझोर कर रख दिया था। पंजाब में खालिस्तान की माँग 1970 ई. के आसपास उठने लगी थी और 1980 ई. में अपने चरम पर पहुँच गयी थी। पंजाब में पृथकतावादी आन्दोलन के बीज ज्ञान बख्तार सिंह के द्वारा बोए गए थे, जो बिरलीधन के एक नक्सलवादी समर्थक नेता थे। बख्तार सिंह ब्रिटेन स्थित शिरोमणी अकाली दल के खालिस्तान समर्थक गुट के नेता थे। भिंडरावाला के अलावा जगजीत सिंह ने इस आन्दोलन को अन्तराष्ट्रीय स्तर पर उठाया एवं अलग खालिस्तान की माँग कर इस समस्या को नया मोड़ दिया। इसी तरह पंजाब में आंतकवादी घटनाएं बढ़ी और इसी के चलते 31 अक्टूबर, 1984 ई. को प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी की हत्या कर

दी गई। 1985 ई. के बाद अलग खालिस्तान की मांग फिर से जोर पकड़ने लगी, स्वर्ण मंदिर पर फिर से नियन्त्रण करने का प्रयास किया गया, फलतः राष्ट्रीय सुरक्षा बल के जवानो द्वारा **'आपरेशन थंडर-2'** नामक आपरेशन चलाया गया। इससे कुछ समय के लिए सिख आतंकवाद ढीला पड़ गया, लेकिन 1989 ई. में आतंकवादी कार्यवाहियों में अचानक वृद्धि हो गई और हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली आदि में इसका प्रभाव दिखाई देने लगा, किन्तु वर्तमान समय में यहाँ शांति स्थापित है और खालिस्तान की माँग को उठाने वाले आतंकवादी देश छोड़कर अन्य देशों में जा बसे हैं।

भारत में आतंकवाद की भयावहता हमें उत्तर-पूर्व में स्थापित राज्यों में देखने को मिलती है, असम में कुल 25 आतंकवादी संगठन सक्रिय थें जिनके माध्यम से असम में आतंकवाद फैला, यहाँ एक समय अलग राष्ट्र की माँग भी उठने लगी थी। असम में विदेशियों को बाहर निकालने की माँग 'आँसू' नामक एक स्थानीय संगठन ने की थी। जब 'आँसू' की माँग पर कोई ध्यान नहीं दिया गया तो इसके कार्यकर्त्ता हिंसा पर उतर आए, असम में यहीं से हिंसा उत्तरोतर बढ़ती ही चली गई, बाद में इस प्रकार की हिंसा को अन्य संगठनों ने भी बढ़ावा दिया। 'आँसू' के बाद 1987 ई. में 'बोड़ो' नामक चरमपंथी संगठन की माँग थी कि असम को शेष भारत से अलग करके स्वतंत्र राज्य बनाओ। इन संगठनों के अनुचित मांगो के कारण असम के लोगों में क्षेत्रवाद की भावना घर कर गई। तत्पश्चात् अखिल बोडो छात्रसंघ ने सम्पूर्ण बोडो लैण्ड में हिंसा का एन नया मानदण्ड स्थापित किया। इसने आदिवासी, गैर आदिवासी आधार पर ही असम को बाँटने की माँग उठाई, जिससे हिंसा और अधिक तीव्र हो गई। इसी समय असम में **'उल्फा'** के नए संगठन का प्रभाव निरन्तर बढ़ता चला गया। असम की आंतकवादी गतिविधियों में मणिपुरी आतंवादी संगठन आकर जुड़ गए, जिनका यह मानना था कि हमारी संस्कृति एवं भाषा अलग है, आजादी के पश्चात् हमारा आर्थिक विकास भी नहीं हुआ है, इसलिए हम भारत से अलग रहकर सुखी जीवन की कल्पना कर रहे हैं। उस समय मणिपुर ने कुछ संगठन सक्रिय थे-यथा - यूनाइटेड नेशनल लिबरेशन फ्रंट, पीपल्स लिबरेशन आर्मी, वुकी नेशनल फ्रंट आदि। मेघालय में सक्रिय आतंककारी संगठनों (पीपल्स लिबरेशन फ्रण्ड ऑफ मेघालय, हिनीट्रेज नेशनल लिबरेशन काउन्सिल आदि) का मानना था कि केन्द्र हमारी समस्याओं पर ध्यान नहीं दे रहा है। इसलिए उस-समय यह संगठन हिंसात्मक कार्यवाही करने से भी नहीं हिचकिचाते थे।

असम, मेघालय, त्रिपुरा आदि में बांग्लादेशियों की संख्या काफी मात्रा में है, जिसके कारण वहाँ अशांति का जन्म हो रहा है, मिजोरम की जनता में भी अलगाववाद की भावना पाई जाती है। मिजोरम की तरह नागालैण्ड भी अशांत है, 1970 ई. के आसपास यहाँ आतंकवाद की शुरूआत हुई थी नागालैण्ड में 'नागा' जाति के लोग बहुतायत में हैं। नागालैण्ड में नागा विद्रोह की शुरूआत देश

की आजादी के समय ही हो गयी थी। जहॉ स्वतन्त्रतापूर्वक अंग्रेजों ने इन्हें लडाकू जाति के रूप में समर्थन दिया वही स्वतंत्रता के पश्चात पाकिस्तान नें आई.एस.आई के माध्यम से नागा विद्रोहियों को हथियारों की आपूर्ति की गई, जो कमोबेस अभी तक जारी है। इन विद्रोहियों का वैचारिक रूप से वामपंथियों से जुड़ाव होने के कारण चीन व म्यांमार से मदद मिलती है, इसकी कमान नागा नेशनल काउन्सिल (एन.एन.सी) एवं नेशनल सोशिलिस्ट काउन्सिल ऑफ नागालैण्ड (एन.एस.सी. एन) ने अपने हाथ में ले ली, यहाँ सैनिक एवं राजनीतिक दो प्रकार से शाखाएं काम कर रहीं हैं। ये लक्षण भारत से अपने आपको पृथकतावादी सोच के कारण पैदा हुआ, जिसमें भारत सरकार की पूर्णत: उपेक्षा की गई थी।

त्रिपुरा में 1980 ई. के आसपास आतंकवाद की शुरूआत उस समय हुई, जब त्रिपुरा के आदिवासी कबीलों ने गैर-कबीलाई लोगों को त्रिपुरा से बाहर खदेड़ना शुरू कर दिया था। त्रिपुरा के आतंकवादी संगठनों में त्रिपुरा डिफेन्स फोर्स और नेशनल लिबरेशन फ्रंट ऑफ त्रिपुरा आदि प्रमुख है। राजनीतिक, आर्थिक रूप से पिछड़ेपन के कारण इस क्षेत्र का अधिकांश युवा वर्ग नशीली दवाओं का अभ्यस्त हो चुका है, जिसके कारण वहां आतंकवाद को बढ़ावा मिल रहा है। नशीली दवाओं का धन्धा करने वाले व्यक्ति अपने निहित स्वार्थ के लिए आतंकवाद को बढ़ावा देते हैं। त्रिपुरा राष्ट्र मुक्ति मोर्चा आदि जैसे संगठनों की माँग है कि त्रिपुरा यहाँ के स्थानीय लोगों का है। त्रिपुरा की भांति ही माओवाद की गिरफ्त में भारत के ओडिशा, असम, बिहार, पश्चिम बंगाल, उतर प्रदेश, झारखण्ड, उत्तराखण्ड, आन्ध्र प्रदेश राज्य हैं, जो मात्र हिंसा की ही बोली बोलते हैं। इन क्षेत्रों में माओवादी अपनी सता स्थापित करनें के लिए ललायित हैं, जिस कारण से वे स्वयं को राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित करनें में सफल रहे हैं। भारत में नक्सलवाद के रूप में फलीभूत हो रहे आतंकवाद को चीन समर्थन दे रहा है। वह अरुणाचल प्रदेश पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। पाक एवं चीन भारत में आतंकवाद को बढ़ावा देने हेतु भरकस प्रयासरत् है तथा विभिन्न विचारधाराओं, धर्म आदि को आधार बनाकर भारत को खण्डित करना चाहते हैं।

नक्सलवाद : भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) एक प्रतिबाधित संगठन है। यह संगठन सुरक्षाकर्मियों, पुलिस के कथित मुखबिरों, छोटे कारोबारियों और सरकारी कर्मचारियों को निशाना बनाकर हिंसक गतिविधियों को अंजाम देता है। 25 मई, 2013 ई. को राजनीतिक कार्यकर्ताओं पर हमला सोची-समझी साजिश के तहत किया गया था, जिसका मकसद इस क्षेत्र के सभी राजनीतिक कार्यकर्ताओं को डराना और भयभीत करना था तथा लोगों को राजनीतिक रूप से एकजुट करने के प्रयास को नाकाम करना था। उनका इस प्रकार का कृत्य लोकतंत्र, आजादी, बोलने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर सीधा हमला था। संसदीय लोकतंत्र और भारत के संविधान को हिंसक तरीके से पराजित करने के भ्रमित लक्ष्य की प्राप्ति की कोशिश में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) द्वारा की जा रही बगावत से ज्यादा खतरनाक हमारे गणतंत्र के लिए कुछ और कुछ नहीं हो सकता। भारतीय संविधान में, संविधान और संसदीय लोकतंत्र में असंतुष्टों और मतभेद

रखने वालों, शिकायतों के निवारण तथा गरीब और वंचित वर्ग की वकालत करने के लिए पर्याप्त स्थान है।

नकसलवाद माओत्से तुंग और उग्र वामपंथी विचारधारा पर आधारित हिंसक आन्दोलन है। यह सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा राजनीतिक सत्ता परिवर्तन और हिंसक साधनों के माध्यम से शोषितों के पक्ष में सामाजिक - आर्थिक सुधारों पर बल देता है। इसका मुख्य उद्देश्य सर्वहारा के शासन की स्थापना कर अन्याय और असमानता पर आधारित राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था को समाप्त कर समानता और न्याय पर आधारित व्यवस्था की स्थापना करना है। इस आन्दोलन की शुरूआत 1967 ई. में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग के क्षेत्र के गांव नक्सलबाड़ी से हुई, जब चारू मजूमदार और कानू सान्याल के विशेष प्रयासों से सीपीआई (एमएल) नामक संगठन की स्थापना हुई। 25 मई, 1967 ई. को इस संगठन की सशस्त्र शाखा ने नक्सलबाड़ी गांव में भूमि विवाद में एक किसान की हत्या के बाद प्रतिशोध के लिए पुलिस पर हमला कर हिंसक गतिविधियों की शुरूआत कर दी। इसी वर्ष सीपीआई (एमएल) ने 'अखिल भारतीय साम्यवादी क्रान्तिकारियों की समन्वय समिति' की स्थापना की। धीरे-धीरे पश्चिम बंगाल से शुरू हुआ यह हिंसक आन्दोलन पूरे देश में फैलता चला गया। फिर वामपंथी अतिवाद पर आधारित कई सशस्त्र समूह गठित किए गए। चूंकि चरम वामपंथी विचारधारा पर आधारित आंदोलन की शुरूआत नक्सलबाड़ी गांव से हुई थी। अतः इस प्रकार के सभी हिंसक संघर्षों को सामूहिक रूप से नक्सलवाद कहा जाने लगा। सरकार ने 1970 ई. के दशक में इस सशस्त्र संघर्ष को कुचल दिया, लेकिन 1990 ई. के दशक के मध्य से इस आंदोलन ने फिर जोर पकड़ लिया। नक्सलवाद का वर्तमान चरण पहले चरण की तुलना में अधिक व्यापक है और गृह मंत्रालय के अनुसार देश के 14 राज्य इससे दुष्प्रभावित हैं।

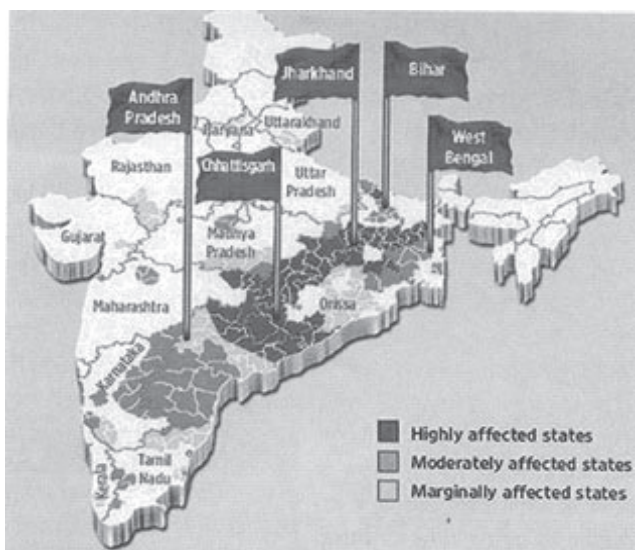

नक्सल प्रभावी राज्य और जिले :- गैर सरकारी आंकडों के अनुसार देश के 20 राज्य और 236 जिले नक्सल प्रभापित हैं जनमें एक चौथाई जिलों में नक्सलियों की मजबूत स्थिति मानी जाती है। ऐसे राज्यों और जिलों की सूची निम्नलिखित है :-

- **झारखंडः** पलामू, गढ़वा, लातेहर, चतरा, लोहरदग्गा, गुमला, रांची, हजारीबाग,

बोकारो, गिरिडीह, कोडरमा, सिमडेगा, सरायेकलाखरसवां, पश्चिम सिंहभूम, खूंटी, रामगढ़।

- **बिहारः** अरवल, पूर्वी चम्पारण, भोजपुर, गया, जमुई, जहानाबाद, सासाराम, नालंदा, नवादा, रोहतास, औरंगाबाद, सीतामढ़ी, मुंगेर, मुजफ्फरपुर।
- **आंध्र प्रदेशः** गुंटूर, करीमनगर, अनंतपुर, आदिलाबाद, खम्मम, कुर्नूल, मेंडक, महबूब नगर, प्रकाशम, श्रीकाकुलम, विशाखापट्टनम, विजयनगरम, वारंगल, निजामाबाद।
- **छतीसगढ़ः** बीजापुर, बस्तर, दंतेवाड़ा, जशपुर, कांकेर, कोरिया, नारायणपुर, राजनंदगांव, सरगूजा।
- **उतर प्रदेशः** चंदौली, मिर्जापुर, सोनभद्र।
- **पश्चिम बंगालः** बांकुड़ा, मिदनापुर, पुरुलिया।
- **उड़ीसाः** गजपति, गंजम, कोरापुट, क्योंझर, मलकानगिरि, मयूरभंज, नवरंगपुर, रायपाढ़ा, संभलपुर, सुंदरगढ़, नयागढ़, कंधामाल, देवगढ़, जसपुर, ढेंकानाल।

नक्सलवाद से लड़ने के लिए हमें उन कारणों को दूर करना होगा जिनकी वजह से इसे ऊर्वर जमीन मिली है। वस्तुतः यह समस्या विकास की गति धीमी होने के कारण उत्पन्न हुई थी, लेकिन वर्तमान में यह अतंकवाद के रूप में हमारे सामने है। इससे निपटने के लिए हमें दो मोर्चों पर संघर्ष करना होगा। एक ओर विकास की गति को तीव्र करना होगा ताकि नक्सलियों को जनता की सहानुभूति न मिल सके। दूसरी ओर पुलिस कारवाई द्वारा नक्सली आतंकवाद को कुचलने की जरूरत है।

निष्कर्षः- भारत जैसे विविधता लिए हुए देश में जहाँ विभिन्न जातियाँ, भाषाएँ एवं धर्म, सम्प्रदायों से सम्बन्धित लोग निवास करते हैं, तो यहाँ आतंकवाद के प्रसार हेतु उचित वातावरण है। यद्यपि जहाँ अनेकता में एकता भारत की ताकत है, वहीं कई बार विद्वेष का कारण भी बन जाती है। आतंकवाद के कारण भारत की संरचना के मूल में भी है, जो ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिपेक्ष्य में विद्यमान है। भारत में आर्थिक, सामाजिक दोनों स्तरों पर शोषण हो रहा है। जिसके कारण देश को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। वर्तमान में देश में प्रत्येक प्रांत के आंचलों में आतंकवादी अपने-अपने संगठन बना चुके हैं। समय-समय पर वे हिंसा को जन्म देते हैं कहीं संसाधनों का अभाव तो कहीं क्षेत्रीयतावाद, कहीं अलगाववाद तो कहीं नक्सलवाद जैसे कारण भारत में समस्या उत्पन्न करते ही जा रहे हैं। इसी असन्तोष के कारण आतंकवाद का जन्म होता है। आर्थिक संसाधनों पर सभी को समान अधिकार होना चाहिए न कि कुछ वर्चस्ववादी लोगों का यहीं वर्चस्ववाद की भावना आतंकवाद को जन्म देती है।

आतंकवाद के कारणों में अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना या अलगाववाद भी है, क्योंकि अल्पसंख्यकों में सुरक्षा एवं आत्मविश्वास की कमी देखने को मिलती है। जिसके कारण अल्पसंख्यकों को संरक्षण की तलाश सदैव ही बनी रही है। अल्पसंख्यकों को मूलभूत सुविधाओं के सम्बन्ध में उपेक्षित किया जाता है यही भावना उनमें निराशा एवं हीन भावना को जन्म देती है तो कहीं न कहीं उनमें कुण्ठा का जन्म होता है। जिसके परिणाम स्वरूप विद्रोह, हिंसा और अलगाववादी प्रवृतियाँ हमारे सम्मुख आती हैं। यही भावना वर्तमान में भारत में देखने को रही है। उप्रेती ने आतंकवाद का यही मूल कारण माना और कहा कि भारत के उतर पूर्वी राज्यों में अलगाववाद व आतंकवाद का प्रमुख कारण यही है। भारत में धार्मिक अल्पसंख्यकों को राजनीतिक रूप से संगठित कर आतंकवाद के लिए प्रेरित किया जाता है। कुछ देशों की अन्तर्राष्ट्रीय दादागिरी एवं आर्थिक साम्राज्यवादी नीतियों ने भी आतंकवाद को जन्म दिया है। अमेरिका द्वारा इराक, लीबिया, सीरिया, अफगानिस्तान पर कब्जा तथा अमेरिकन साम्राज्यवादी मकडजाल आदि के कारण अमरीका हर राष्ट्र का दुश्मन बन बैठा है। इसी कारण खाड़ी देशों में अमेरीका एवं उसके नागरिकों के प्रति वैमस्य तथा आतंकवाद का जन्म हुआ। जिस आतंकवाद की शुरूआत अमेरिका ने निर्दोष व्यक्तियों को मारने से की थी। उसकी प्रतिक्रियास्वरूप अलकायदा का जन्म हिंसात्मक कार्यवाहियों के दमन के लिए हुआ। इसलिए आतंकवाद साम्राज्यवादी भावना एवं उपनिवेशवाद की भी देन है।

आतंकवाद की उत्पति में कोई एक कारण नहीं है जिसको हम केन्द्र में रख सकें, इसके अनेक कारण हैं। जिनमें राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति, राष्ट्रों की विदेश नीति, आर्थिक पिछड़ापन, सांस्कृतिक दृष्टि, धार्मिक कट्टरता या धर्मान्धता, हथियारों की बिक्री प्रक्रिया व धर्म विशेष पर आधारित राज्य के निर्माण की मांग, विकास की अधूरी परिकल्पना, अशिक्षा, सांस्कृतिक उपेक्षा, आतंकवाद की गलत व्याख्या किया जाना, मानवीय मूल्यों में गिरावट आदि सम्मिलित हैं। आतंकवाद को बढ़ावा देने वाले सहायक तत्व हैं - तेल, खाद्यान्न व वस्त्र आदि भौतिक संसाधनों पर पूँजीवादी ताकत का वर्चस्व। स्वतंत्र भारत में हिंसात्मक उपद्रव एवं उग्रवाद का सामना करने हेतु सेना एवं अनेक सुरक्षा बलों का प्रयोग किया जा रहा है। इतना ही नहीं आतंकवाद के खिलाफ कठोर कानून भी बनाए गए हैं। सन् 1987 ई. में पहली बार आतंकवाद से लड़ने हेतु कानून का निर्माण किया गया। आतंककारी एवं विध्वंसक गतिविधियों के रोकथाम हेतु कानून (टाडा) बनाया गया, परन्तु राजनेताओं द्वारा इसके दुरुपयोग करने की खबरें आने के बाद इसे रद्द कर दिया गया, इसके बाद टाडा के स्थान पर आतंकवाद रोकथाम कानून (पोटा) लाया गया, लेकिन उससे क्या हुआ..... कुछ भी तो नहीं वरन् आतंकवाद का विस्तार ही होता जा रहा है।

आतंकवाद पर नियन्त्रण हेतु सुझाव

- राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर खुफिया एजेंसियों को अधिक मजबूती प्रदान की जाए। राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसी सुरक्षा एजेंसी का निर्माण किया जाए, जिसकी भूमिका अमरीका की सी.आई.ए. की भाँति हो।

- अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे शिक्षा कार्यक्रमों का संचालन किया जाए, जिसमें हिंसा की रोकथाम, मानव अधिकारों का संरक्षण आदि के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाए। सामूहिक स्तर पर आतंकवाद विरोधी प्रशिक्षण केन्दों का संचालन किया जाए। ये कार्य यूनेस्को एवं यू.एन.ओ. के तत्वावधान में किए जाएं।
- क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय तीनों ही स्तरों पर आतंकवाद विरोधी नीति का निर्माण किया जाए।
- आतंकवाद की रोकथाम के लिए समुद्री तटों, हवाई अड्डों, रेलवे, बस स्टेशन, सार्वजनिक स्थलों एवं लोकतन्त्र के प्रतीकों को सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है।
- आतंकवादियों को अत्याधुनिक हथियार, उपकरणों एवं आर्थिक सहायता देने वाले देशों के विरुद्ध लामबद्ध होकर विरोध करने एवं आतंकवादियों के वित्तीय स्रोत पर नियंत्रण की महती आवश्यकता है।
- जैविकीय, रासायनिक, आणविक, परमाण्विक, नाभिकीय विकिरण, सांस्कृतिक, धार्मिक, माध्यमों से साइबर आदि के द्वारा जो आतंकवाद फैलाया जा रहा है, उसके लिए कठोर कदम उठाएं जाएं। जिसके तहत दोषियों को शीघ्र ही दण्ड दिया जाए उन पर किसी भी रूप में दया न दिखाया जाय। दण्ड का ऐसा कठोर प्रावधान हो कि अन्य आतंकवादियों को उससे भय लगे।
- आतंकवाद से निवारण हेतु सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण को सही स्थिति में रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति से सामाजिक, आर्थिक स्तर पर समानता का व्यवहार किया जाए।
- आतंकवाद का निदान तभी हो सकता है, जब आम नागरिक अधिक जागरूक हो, स्वयं के स्तर पर उनका मुकाबला करने का उसमें साहस हो।
- गांधी दर्शन के मूल्यों का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार हो, अहिंसा का दर्शन वास्तविक रूप से अपनाया जाए।
- नवीन तकनीकी का प्रयोग मानव के विकास के रूप में हो, न कि विध्वंस के रूप में इसका ज्ञान सही रूप में प्रसारित हो।

सन्दर्भ

1 जॉन रोज, कार्टर (एडीटर) *रिलिजियसनैस इन श्रीलंका*, मर्गा इन्सटीच्युट, 1979 पृ०121

2 हरप्रसाद चट्टोपाध्याय, *एथनीक अनरेस्ट इन मार्डन श्रीलंका : एन अकाउन्ट ऑफ तमील-सिन्हेलिज रेस रिलेशन्स,* एम.डी. पब्लिकेशन्स, 1994. पृ०107

3 स्टेनली वोलपोर्ट, *इण्डिया एण्ड पाकिस्तान : कन्टीन्यूड कॉनफ्लीक्ट कॉपरेशन*, युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 2010

4 सुमित गांगुली, द *क्राईसीस इन कश्मीर : पोरटेन्टस ऑफ वार होप्स ऑफ पीस,* वूडरो विल्सन सैन्टर प्रेस एण्ड कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, 1997, पृ०302

5 गुप्ता डॉ0 जे.बी. दास *इण्डो-पाक रिलेशन (1947-55)* (एम्सट्रडम डिजम्बटन 1958)

6 बोस सुमन्त्र, *कश्मीर : रूट्स ऑफ कोनफ्लीक्ट पाथ ऑफ पीस* (हावर्ड युनिवर्सिटी प्रेस), 2003

7 सिंह प्रो. लल्लन जी *'राष्ट्रीय रक्षा और सुरक्षा'* पृ०116

8 सिंह डा० बी. पी. *'प्रतिरक्षा एवम् कूटनीति अधययन'*

9 रस्तोगी जी. एन. *'राजनीति शास्त्र'*

10 पुष्पेश पंत *21वीं शताबदी में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध* पृ० 39-46

11 रक्षार्थ अंक अगस्त 2012, पृ० 12

12 इण्डिया टुडे, मार्च, अंक 2013, पृ० 27

13 प्रतियोगिता दर्पण, अंक फरवरी 2012, पृ०19

14 प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त, 2018, पृ०33

15 चाणक्य सिविल सर्विसेज टुडे, अगस्त, 2018, पृ०39

16 प्रतियोगिता साहित्य सीरिज

17 सामान्य अध्ययन, अंक 2006, पृ०81

■

स्वस्थ जीवन शैली एवं कैंसर से बचाव

डॉ. मदन लाल ब्रह्म भट्ट*

सार-संक्षेप : जीवन शैली से जुड़ी बीमारियाँ आज एक महामारी का रूप ग्रहण कर चुकी हैं। इसके अन्तर्गत हृदय के रोग, फेफड़े की बीमारियाँ, मधुमेह, मोटापा, उच्च रक्तचाप, मस्तिष्क पक्षाघात, मानसिक बीमारियाँ तथा कैंसर प्रमुख हैं। हृदय की बीमारियों के बाद कैंसर आज विश्व में मृत्यु का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारण बन चुका है। विश्व में कैंसर के कारण लगभग 1 करोड़ लोगों की प्रतिवर्ष मृत्यु हो जाती है। हमारे देश में कैंसर के लगभग 14 लाख मरीज प्रतिवर्ष देखे जाते हैं और भारतवर्ष में प्रतिवर्ष कैंसर के कारण लगभग 6 लाख लोगों की अकाल मृत्यु हो जाती है। इसमें से 10 प्रतिशत या इससे कम कैंसर आनुवांशिकी कारणों से होते हैं, जबकि 85-90 प्रतिशत वातावरण- जन्य कारणों से होते हैं, जिनसे बचाव सम्भव है।

बीज शब्द : कैंसर, जीवनशैली, महामारी, तम्बाकू

जीवन शैली से जुड़े कैंसर के कारणों में तम्बाकू तथा शराब का प्रयोग, अस्वास्थ्य-कारक भोजन एवं पर्याप्त शारीरिक श्रम के अभाव के अतिरिक्त मोटापा, प्रदूषण एवं अत्यधिक तनाव भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन कैंसर से बचने के लिए तम्बाकू एवं शराब का निषेध, नियमित व्यायाम एवं मोटापा से बचना, स्वास्थ्यपरक भोजन एवं तनाव से बचाव आवश्यक है। नियमित दिनचर्या, पर्याप्त आराम एवं नींद भी इन बीमारियों से बचाव का साधन है। हिपेटाइटिस-बी एवं ह्यूमन पैपिलोमा वायरस (**HPV**) वैक्सीन के माध्यम से इन संक्रमण के कारण से होने वाले कैंसर से बचा जा सकता है। लाल माँस के प्रयोग से बचना चाहिए एवं संकर गायों के दूध के प्रयोग के स्थान पर भारतीय मूल की देशी गाय के दुग्ध पदार्थों का सेवन करना चाहिए। धूप का पर्याप्त सेवन तथा 6-7 घण्टे की निद्रा भी इस बीमारी से बचाव में सहायक होते हैं। फलों-सब्जियों का अधिकाधिक प्रयोग तथा मोटे अनाज का प्रयोग भी कैसंर होने की सम्भावना को कम करते हैं।

*प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, रेडियेशन आंकोलॉजी विभाग एवं चेयरमैन, आंकोलॉजी सर्विस, किंग जार्ज चिकित्सा विश्वविद्यालय, लखनऊ (एवं भूतपूर्व कुलपति, के०जी०एम०यू० तथा पूर्व निदेशक, कल्याण सिंह सुपर स्पेशियलटी कैंसर संस्थान, लखनऊ)।

⇨ राष्ट्रसंत ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ स्मृति सप्तदिवसीय व्याख्यान माला के चौथे दिन 25 अगस्त, 2022 को स्वस्थ्य जीवन शैली एवं कैंसर से बचाव विषय पर महाराणा प्रताप महाविद्यालय जंगल धूसड़ में दिया गया भाषण।

जीवनशैली एवं स्वास्थ्यः-

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार ''स्वस्थ जीवन शैली जीवन जीने की एक ऐसी कला है, जो व्यक्ति को गम्भीर रूप से बीमार होने अथवा असामयिक मृत्यु की संभावना को कम करता है''। हमें यह भलीभाँति ज्ञात है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन **(WHO)** की उपर्युक्त परिभाषा सर्वथा अपर्याप्त है। अतः एक व्यावहारिक परिभाषा अग्रेकित है: ''स्वस्थ जीवन शैली व्यक्ति के व्यवहार की एक प्रणाली है जो व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक कल्याण के साथ सार्थक दीर्घायु प्रदान करती है।''

आज विश्व में जीवन शैली की बीमारियों ने महामारी का रूप ग्रहण कर लिया है। ये बीमारियां वैश्विक स्तर पर प्रतिवर्ष 4 करोड़ लोगों की मृत्यु का कारण बन रही हैं, जो कुल मृत्यु का लगभग 71 प्रतिशत है। वर्ष 2017 में जीवन शैली से जुड़े गैर-संचारी रोगों के कारण भारतवर्ष में कुल 61.8 प्रतिशत मृत्यु हुई।

अच्छा स्वास्थ्य केवल बीमारियों से बचे रहना ही नही है, अपितु शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक पूर्णता की स्थिति है। इसका मतलब है- संतुलित भोजन, नियमित व्यायाम, तम्बाकू एवं व्यसन से बचना एवं पर्याप्त आराम तथा निद्रा पर आधारित जीवनचर्या। हमारे शरीर तन्त्र के सुचारू रूप से संचालन हेतु प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज तत्व तथा जल का संतुलित सेवन आवश्यक है। इस संतुलन के अभाव में, व्यक्ति का स्वास्थ्य खराब हो जाता है।

वास्तव में जीवन शैली से जुड़ी हुई बीमारियाँ, जीवन की मुख्यतः 3 आदतों से जुड़ी हुई हैं, यथा-तम्बाकू एवं शराब का प्रयोग, अस्वास्थ्यकारक भोजन एवं पर्याप्त शारीरिक श्रम का अभाव। इसके अतिरिक्त मोटापा, प्रदूषण (हवा, जल एवं मृदा) एवं अत्यधिक तनाव भी जीवन शैली की बीमारियों के कारणों में शुमार हैं। इसके परिणाम स्वरूप तमाम दीर्घ कालीन बीमारियाँ, यथा-हृदय के रोग, मस्तिष्क-पक्षाघात, मधुमेह, उच्च रक्तचाप मोटापा, चपापचय रोग, फेफड़ों की बीमारी, मानसिक बीमारियाँ तथा कुछ प्रकार के कैंसर का प्रादुर्भाव होता है।

स्वस्थ जीवन शैली के 4 सिद्धान्तों यथा-सही वजन का होना, नियमित व्यायाम, स्वास्थ्यपरक भोजन की आदत तथा तम्बाकू एवं शराब के निषेध के माध्यम से इन जीवन शैली की बीमारियों में 80 प्रतिशत तक कमी लाई जा सकती है।

जीवनशैली एवं कैंसरः-

वर्तमान में, भारत वर्ष में लगभग 14 लाख नये कैंसर के मरीज प्रतिवर्ष देखे जाते हैं। इसके कारण लगभग 6 लाख लोगों की प्रतिवर्ष मृत्यु पूरे देश में हो जाती है। इनमें से 10 प्रतिशत या इससे कम कैंसर आनुवांशिकी (जेनेटिक अथवा फेमिलियल) कारणों से होते हैं, जबकि 85-90 प्रतिशत कैंसर वातावरण- जन्य कारणों से होते हैं, जिनसे बचाव सम्भव है। वास्तव में कैंसर जैसी जानलेवा

बीमारी से बचाव ही सबसे आसान एवं वास्तविक सम्भावना है। एक बार कैंसर हो जाने पर इलाज आर्थिक ही नहीं, शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से व्यक्ति को क्षत-विक्षत कर देता है।

जीवन शैली, यथा तम्बाकू का सेवन, शराब का सेवन, मोटापा, आहार एवं नियमित व्यायाम अथवा पर्याप्त शारीरिक श्रम के द्वारा दो-तिहाई कैंसर से बचा जा सकता है। विश्व में तम्बाकू का प्रयोग कुल एक-तिहाई कैंसर का कारण है। तम्बाकू के साथ शराब का सेवन, कैंसर के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारण है।

तम्बाकू एवं कैंसरः-

तम्बाकू का प्रयोग कैंसर का एक सर्व प्रमुख कारण है। विकासशील देशों में लगभग 40 प्रतिशत पुरूष तथा 5 प्रतिशत महिलाएँ तम्बाकू का सेवन करते हैं। पश्चिमी देशों में पुरूषों में यह प्रतिशत कुछ कम है, किन्तु पश्चिमी देशों में महिलाओं में तम्बाकू का प्रयोग तीन गुना तक ज्यादा है। आधुनिक विश्व में तम्बाकू के हानिकारक प्रभाव यथा-कैंसर तथा हृदय की बीमारियों के सम्बन्ध में जानकारी सर्वप्रथम 1964 ई. में **अमेरिका के सर्जन जनरल** की रिपोर्ट में दिया गया। जिसके परिणाम स्वरूप पश्चिमी जगत में तम्बाकू का सेवन लगातार कम होता जा रहा है, लेकिन ऐसा विकासशील देशों में नही देखा जा रहा है।

तम्बाकू के धुएँ में लगभग 72 कैंसर कारक रसायन पाये जाते हैं। इनमें से नाइट्रोसामीन, बेन्जीन, ब्यूटाडीन, एरोमैटिक अमीन, एवं कैडमियम मुख्य कैंसर कारक हैं। इसके साथ ही पॉली साइक्लिक एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन **(PAH)** एवं बेन्जोपाइरिन भी कैंसर कारी हैं। चबाकर खाने वाले तम्बाकू में भी एन-नाइट्रोसामीन, पॉली साइक्लिक एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन **(PAH)** एवं कार्बोनिल कम्पाउण्ड के साथ ही हानिकारक धातु तत्व भी पाये जाते हैं। यह भी प्रमाणित हो चुका है कि **PAH** तथा नाइट्रोसामीन फेफड़े का कैंसर करते हैं, एवं बेंजीन ल्यूकिमिया (ब्लड कैंसर) के लिए जिम्मेदार होता है।

तम्बाकू के प्रयोग से होने वाले कैंसर में फेफडें का कैंसर सर्व प्रमुख हैं। विश्व में 85 प्रतिशत फेफड़े के कैंसर तम्बाकू के प्रयोग से होते हैं। मुँह एवं गले के भी एक-तिहाई कैंसर तम्बाकू के प्रयोग से होते हैं। भारत में खाने वाली तम्बाकू के बहुतायत प्रयोग के कारण, मुँह एवं गले के कैंसर, कुल कैंसर के 40-45 प्रतिशत तक होते है। मुँह एवं गले के कैंसर के अतिरिक्त स्वर यंत्र, आहार नली, आमाशय, गुर्दे, अग्नाशय, यकृत, मूत्र थैली, गर्भाशय ग्रीवा, बड़ी आँत तथा मलाशय के कैंसर भी तम्बाकू के प्रयोग से होते हैं। ब्लड कैंसर यथा एक्यूट माइलॉयड ल्यूकिमिया भी तम्बाकू के प्रयोग से जुड़ा है, तथा महिलाओं में स्तन के कैंसर का तम्बाकू के प्रयोग से सम्बन्ध देखा गया है।

आहार एवं कैंसरः-

एक-तिहाई कुल कैंसर आहारजन्य कारणों से होते हैं। आहार एवं कैंसर के अर्न्तसम्बन्धो को समझना एक जटिल विषय है क्योंकि कुछ खाद्य-पदार्थो में कैंसर कारक तत्व होते हैं, तो कुछ में कैंसर रोधी तत्व पाये जाते हैं। आहार एवं कैंसर के प्रमुख कारण निम्नवत हैं।

1. **ऊर्जा एवं कैलोरीः**-मोटापा कैंसर के लिए एक सर्वप्रमुख कारण है। **अमेरिकन कैंसर सोसाईटी** के अधययन में मोटापा को निम्न कैंसर में महत्वपूर्ण कारण के रूप में देखा गया है, जैसे बड़ी आँत तथा मलाशय का कैंसर, स्तन का कैंसर, गर्भाशय का कैंसर, गर्भाशय ग्रीवा का कैंसर, अग्नाशय एवं पित्त की थैली का कैंसर आदि।
2. **शराब का सेवनः**- शराब का सेवन भी कैंसर का एक प्रमुख कारण है। **'इण्टरनेशनल एजेन्सी फॉर रिसर्च ऑन कैंसर'** ने शराब को एक कैंसर- कारक तत्व के रूप में वर्गीकृत किया है। शराब के सेवन से होने वाले प्रमुख कैंसर हैंः यकृत, आहार नली, ग्रसनी, मुख, स्वर यंत्र, स्तन, बड़ी आँत तथा मलाशय और प्रास्टेट के कैंसर। वास्तव में शराब किसी भी प्रकार एवं मात्र में मनुष्य के स्वास्थ के लिए हितकर नही है।
3. **वसा युक्त भोजनः**- पिछले कुछ दशकों से भोजन में वसा की मात्र को कम करना, कैंसर की रोकथाम के एक प्रमुख तरीकों में शामिल किया गया है। नेशनल एकेडमी ऑफ सांइस, अमेरिका ने भोजन में वसा की मात्र को 30 प्रतिशत से कम ऊर्जा एवं कैलोरी हेतु अनुशंसित किया है। अधिक वसा युक्त भोजन के प्रयोग से निम्नलिखित कैंसर में बढोत्तरी देखी गई है, यथा- स्तन, बड़ी आँत, प्रॉस्टेट, तथा गर्भाशय के कैंसर। लेकिन वसा एवं कैंसर के सम्बन्ध को जानवरों से उत्पादित वसा के साथ ही देखा गया है, वनस्पति स्रोत के वसा के साथ नहीं। कैंसर का यह सम्बन्ध, रेडमीट (बीफ, पोर्क, लैम्ब, बकरी आदि) के साथ सर्वाधिक देखा गया है। वहीं अनसचुरेटेड फैट के प्रयोग से यह सम्बन्ध नही देखा गया है। किसी भी प्रकार के वसा पदार्थ को बार-बार तलने-भूनने (फ्राई) करने से उसमें ट्रांस फैट बन जाता है, जो कि कैंसर का एक प्रमुख कारण होता है, साथ ही इससे दिल की बीमारियों की सम्भावना भी बढ़ जाती है।
4. **फल एवं सब्जियाँः**- फलों एवं सब्जियों में कैंसर रोधी तत्व पाये जाते हैं, अतः इन्हे कैंसर के प्रभावी रोकथाम के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। इनमें आक्सीकरण रोधी तत्वों के अतिरिक्त, रेशे, पोटैशियम, कैरोटिनायड्स, बिटामिन-सी, फोलेट, एवं अन्य विटामिन पाये जाते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए हितकर एवं कैंसर रोधी हैं।

   शोध में यह भी देखा गया है कि बचपन एवं किशोरावस्था में फल एवं सब्जियों का प्रयोग कैंसर की रोकथाम में ज्यादा प्रभावी होता है। साथ में फलों एवं सब्जियों के नियमित प्रयोग से उच्च रक्तचाप, हृदय की बीमारियों एवं पक्षाघात होने की भी रोकथाम देखी गयी है।

5. **आहार में रेशें का प्रयोगः**- वनस्पति स्रोत से प्राप्त बहुशर्करा एवं लिग्निन जिनका पाचन रस से हाइड्रोलिसिस न हो पाये, उन्हें फाइबर (रेशे) की संज्ञा दी जाती है। फाइबर दो प्रकार के होते हैं, घुलनशील एवं अघुलनशील। इनका बड़ी आँत में किण्वन **(Fermentation)** होता है। रेशों में बल्किंग का गुण-धर्म पाया जाता है, जो मल की मात्र को बढ़ा देते हैं। जिससे मल शीघ्र नीचे मलाशय की तरफ चला जाता है और यह कब्जियत से बचाता है साथ ही ये हानिकारक रसायन को भी सोख लेते हैं। रेशे के पाचन के दौरान शार्ट चेन फैटी एसिड के उत्पादन में भी सहायता करते हैं, जो स्वास्थ के लिए हितकर होते हैं। रेशे युक्त भोजन के लिए, आहार में ताजे फल एवं सब्जियों के साथ मोटे अनाज, यथा- ज्वार, बाजरा, रागी आदि का अधिकाधिक सेवन करना चाहिए।

   आहार में रेशे युक्त भोजन के समावेश से जिन कैंसर में रोकथाम को देखा गया है, उनमें प्रमुख हैं- बड़ी आँत एवं मलाशय कैंसर, स्तन कैंसर, आमाशय कैंसर, आँत के एडिनोमा आदि।

अन्य आहार, पोषक तत्व एवं कैंसर :-

1. **रेड मीट (लाल माँस):**- इसके अन्तर्गत चौपायों, यथा-भैंसे, बकरी, भेड़ बीफ आदि आते हैं, जो कैंसर को काफी बढावा देते हैं। इससे बड़ी आँत का कैंसर, स्तन कैंसर, प्रास्टेट कैंसर तथा गर्भाशय कैंसर के खतरे में वृद्धि देखी गई हैं। माँस का पशुओं में उत्पादन बढ़ाने के लिए जो हार्मोन प्रयोग किया जाता है, वह अत्यंत हानिकारक होता है। इसके अतिरिक्त माँस के संरक्षण में एवं पकाने में पैदा होने वाले हेटरोसाइक्लिक अमीन, एवं पॉली साइक्लिक एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन तथा नाइट्रोसामीन आदि भी कैंसर को बढ़ाते हैं।

2. **दूध, दुग्ध उत्पाद तथा कैल्शियमः**-

दूध का नियमित प्रयोग बड़ी आँत के कैंसर को रोकने में सहायक देखा गया है, और यह सम्भवतः उसमें पाये जाने वाले कैल्शियम के कारण होता है। **राष्ट्रीय आहार नीति** के अन्तर्गत एक वयस्क को प्रतिदिन 3 गिलास दूध के सेवन की सलाह दी गई है। दूध के ज्यादा प्रयोग से गर्भाशय कैंसर तथा प्रास्टेट कैंसर केहोने की रिपोर्ट भी सामने आई है, जिसका कारण सम्भवतः गाय के दूध में प्रयुक्त होने वाले स्टीरायड के कारण होता है। साथ ही। दूध जो संकर गाय द्वारा प्राप्त होता है; यथा-जर्सी, रेड डेन, ब्राउन स्विस, होल्स्टीन फ्रिसियन, आयरशायर एवं गुथनीटी आदि से प्राप्त दूध भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। इसके विपरीत भारतीय देशी गाय का दूध स्वास्थ्य के लिए अति उत्तम गुणकारी होता है।

3. **विटामिन डी:**- वर्ष 1980 ई. में गारलैण्ड एवं गारलैण्ड ने देखा कि सूर्य की रोशनी या विटामिन डी के प्रयोग से बड़ी आँत के कैंसर की रोकथाम में मदद मिलती है। बाद में प्रास्टेट कैंसर, स्तन कैंसर तथा अण्डाशय के कैंसर में भी इसका प्रभाव देखा गया। एक व्यक्ति को पर्याप्त मात्र में विटामिन डी के लिए प्रतिदिन 15 मिनट सूर्य की रोशनी पूरे शरीर पर लेने की आवश्यकता होती है। जिन्हे सूर्य का प्रकाश, पर्याप्त मात्र में नही मिल पाता है, उन्हे प्रतिदिन 1000 यूनिट विटामिन-डी लेने की आवश्यकता होती है। जाड़े भर पर्याप्त धूप लेने से पूरे वर्ष की विटामिन - डी की आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। गर्मी में दोपहर की धूप से बचना चाहिए।
4. **कैरोटिनायडस:**- फलों एवं सब्जियों में बहुतायत से पाये जाने वाले एण्टीआक्सीडेण्ट-कैरोटिनायडस को कैंसर रोधी एवं रोकथाम में सहायक देखा गया है। बीटा-कैरोटिन के अनुपूरण से फेफड़ों के कैंसर को कम होता हुआ देखा गया है। बीटा-कैरोटीन, अल्फा-कैरोटिन तथा ल्यूटीन के प्रयोग से स्तन कैंसर के होने से बचाव देखा गया है। टमाटर में पाये जाने वाले कैरोटीनॉयड-लाइकोपीन के प्रयोग से प्रास्टेट, फेफड़े एवं आमाशय के कैंसर में कमी देखी गई है। लाइकोपीन की जैव उपलब्धता पके टमाटर में कच्चे टमाटर से ज्यादा होती है, अत: सलाद की अपेक्षा पके टमाटर, सूप अथवा सॉस का प्रयोग बेहतर होगा।
5. **सोयाबीन एवं सोयाबीन उत्पाद:**- एशिया के उन देशों में जहाँ सोयाबीन का प्रयोग प्रचुर मात्र में होता है, वहाँ स्तन कैंसर महिलाओं में काफी कम देखा गया है। एक मेटाएनलिसिस शोध में देखा गया कि सोयाबीन के प्रयोग से स्तन कैंसर में कमी होती है। इस शोध में ही यह भी देखा गया कि सोयाबीन का बचपन में प्रयोग ज्यादा कैंसर रोधी प्रभाव रखता है। सोयाबीन में पाया जाने वाला आइसोफ्लेविन जो एक फाइटोइस्ट्रोजन है, जो इस्ट्रोजन रिसेप्टर पर इस्ट्रोजन के कुप्रभाव को कम करता है।
6. **कार्बोहाइड्रेट:**- हाई ग्लाइसिमीक इण्डेक्स वाले कार्बोहाइड्रेट शरीर में ग्लूकोज का रक्त स्तर अत्यधिक एकाएक बढ़ा देते हैं। जिससे इन्सुलिन का भी स्तर बढ़ता है और मधुमेह होने का खतरा बढ़ जाता है। कुछ केस-कन्ट्रोल शोधों में मधुमेह एवं बड़ी आँत एवं स्तन के कैंसर में परस्पर सम्बन्ध देखा गया है। कुछ अन्य शोधों में अग्नाशय एवं गर्भाशय के कैंसर में भी सफेद चीनी के अधिक प्रयोग से वृद्धि देखी गई है। इसी लिए मोटे अनाज, फलों एवं सब्जियों आदि लो-ग्लाइसिमिक इण्डेक्स वाले कार्बोहाइड्रेट के प्रयोग पर बल दिया जाता है।

भोजन का प्रकार एवं कैंसर:-

आहार एवं आहार के तत्व अलग-अलग रूपों में नही लिए जाते, अपितु एक समग्रता में लिए जाते हैं। कुछ शोधों में देखा गया है कि शाकाहार कुछ प्रकार के कैंसर में कमी करने में सहायक होते हैं, यथा आँत के कैंसर, प्रोस्टेट कैंसर आदि। पश्चिमी आहार (वेस्टर्न डाइट), यथा-अत्यधिक वसा युक्त भोजन, वर्ण संकर गाय का अत्यधिक दुग्ध पदार्थ, मक्खन, अण्डे, सफेद चीनी, मिष्ठान, रिफाइण्ड तेल तथा रिफाइन्ड अथवा प्रसंस्कृत अन्न का अधिकाधिक प्रयोग आधुनिक जीवन शैली की तमाम बीमारियों को बढ़ावा देते हैं, तथा कैंसर भी उनमें से एक है।

वर्तमान काल में विश्व में प्रचलित विवेकपूर्ण आहार (प्रुडेण्ट डाइट) के अन्तर्गत पर्याप्त फलों एवं सब्जियों का सेवन, भूसी सहित पूर्ण मोटे अनाज, दालें-छिलके के साथ, मछली, आदि का आहार में प्रयोग की सलाह दी जाती है। इनके प्रयोग से आँतों एवं स्तन के कैंसर तथा प्रास्टेट कैंसर में कमी देखी गई है।

जीवन शैली में परिवर्तन द्वारा कैंसर के होने की सम्भावना को कम किया जा सकता हैं। तम्बाकू निषेध इनमें से सर्वप्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त वजन पर नियन्त्रण, नियमित व्यायाम अथवा योग का जीवन में समावेश अत्यंत आवश्यक है। मोटापा और आलसपन कैंसर का एक महत्वपूर्ण कारण है। जिससे बचने की नितांत आवश्यकता है।

फलों एवं सब्जियों का नियमित पर्याप्त प्रयोग करना कैंसर के रोकथाम में प्रभावी देखा गया है। वास्तव में स्थानीय एवं मौसमी फलों एवं सब्जियों का प्रयोग ज्यादा महत्वपूर्ण है। शरीर में विटामिन-डी का पर्याप्त मात्र में होना, कैंसर की रोकथाम में काफी प्रभावी देखा गया है। नियमित धूप का सेवन, खासकर जाड़े के दिनों में तथा उसके अभाव में विटामिन-डी का औषधीय प्रयोग आवश्यक होता है। कैंसर के बचाव के साथ ही, शरीर में विटामिन-डी के पर्याप्त मात्र में होने पर अस्थि-भंग से भी बचा जा सकता है।

लाल माँस, प्रसस्कृत माँस एवं शराब के प्रयोग न करने या कम प्रयोग से स्तन, बड़ी आँत, आमाशय, आहार नली, प्रास्टेट आदि के कैंसर की रोकथाम में मदद मिलती है। दूध के अत्यधिक प्रयोग से पुरूषों में प्रास्टेट कैंसर एवं महिलाओं में गर्भाशय कैंसर में वृद्धि तथा कैंसर का सफल इलाज किये गये मरीजों में पुनरावृत्ति (रिकरेंस) ज्यादा देखी गई है, लेकिन यह वृद्धि हार्मोन के इन्जेंकशन एवं वर्ण-संकर पश्चिमी गायों के दूध के प्रयोग के साथ देखा गया है। भारतीय देशी गायों के दुग्ध एवं दुग्ध-उत्पाद के प्रयोग से मिलने वाल । दूध, स्वास्थ्य के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। इसी तरह शरीर में पर्याप्त मात्र में कैल्शियम की उपलब्धता से भी हड्डियों के मजबूत होने के साथ ही कैंसर की भी रोकथाम होती है। टमाटर-युक्त आहार से प्रास्टेट कैंसर में कमी देखी गई है।

संक्रामक बीमारियाँ एवं कैंसरः-

संक्रामक रोगों के कारण लगभग 15-20 प्रतिशत कैंसर होते हैं। यथा हिपेटाइटिस-बी एवं सी के संक्रमण से यकृत का कैंसर, ह्यूमन पैपिलोमा वाइरस इन्फेक्शन से गर्भाशय ग्रीवा तथा गले का, एब्सटीन-बार वाइरस से जबड़े का कैंसर, हेलिकोबैक्टर पाइलोरी से आमाशय का कैंसर, सिस्टोसोमा के कारण पेशाब की थैली आदि कुछ प्रमुख कैंसर हैं। सौभाग्य से इनमें से प्रमुख इन्फेक्शन यथा- हिपेटाइटिस बी तथा ह्यूमन पैपिलोमा वाइरस के खिलाफ वैक्सीन लगवाकर बचा जा सकता है।

महिलाओं में कैंसर से बचावः-

महिलाओं में गर्भाशय ग्रीवा एवं स्तन का कैंसर बहुतायत से पाया जाता है। गर्भाशय ग्रीवा के कैंसर से बचाव के लिए कम बच्चों का प्रजनन तथा स्वच्छ प्रसव आवश्यक है तथा जननेन्द्रियों की स्वच्छता का ध्यान, विशेषरूप से माहवारी के समय। अतः अस्पताल में ही प्रसव करवाना उचित है। साथ ही, ह्यूमन पैपिलोमा वायरस **(HPV)** के वैक्सीन से भी बच्चेदानी के मुंह के कैंसर से बचाव सम्भव है।

स्तन कैंसर के कारणों में देर से प्रथम प्रसव तथा नवजात को स्तनपान न कराना प्रमुख कारण हैं। बचाव के लिए प्रथम प्रसव 18-25 वर्ष की आयु में तथा नवजात को प्रथम छः माह तक केवल माँ का दूध पिलाना ही आवश्यक उपाय हैं। इससे बचने के लिए तम्बाकू एवं शराब का निषेध, मोटापा से बचना तथा नियमित व्यायाम अथवा शारीरिक श्रम भी आवश्यक उपाय हैं।

कैंसर से बचाव के लिए सलाहः-

आहार एवं कैंसर के सम्बन्धों पर काफी शोध पत्र उपलब्ध हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि, कुल 30-40 प्रतिशत कैंसर का प्रभावी बचाव खाद्य सामग्री में परिवर्तन के माध्यम से सम्भव हैं। आहार का कुप्रभाव वास्तव में मोटापा एवं शारीरिक श्रम की कमी के कारण परिलक्षित होता है। आहार का संतुलित एवं समुचित प्रयोग केवल कैंसर ही नहीं, अपितु, हृदय, फेफड़े एवं अन्य आधुनिक जीवन शैली की बीमारियों से बचाव में सहायक होते हैं।

उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए कैंसर से बचाव के लिए **अमेरिकन कैंसर सोसाइटी** ने निम्नलिखित दिशा-निर्देश जारी किये हैं-

1. **नियमित शारीरिक श्रम अथवा व्यायामः**- प्रतिदिन 30 मिनट या इससे अधिक व्यायाम या शारीरिक श्रम कैंसर से बचाव में सहायक हैं, यथा-गर्भाशय, आँत, स्तन, प्रास्टेट आदि। इस दृष्टि से सूर्य नमस्कार एक पूर्ण व्यायाम है, एवं योगासन, प्राणायाम एवं ध्यान स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वोत्तम है।

2. **मोटापा से बचें:**- शरीर का वजन बढ़ना एवं अधिक वसा का प्रयोग कैंसर का एक प्रमुख कारण है। वजन को उम्र के हिसाब से, सामान्य से 10 प्रतिशत से ज्यादा न होने दें।
3. **शराब का प्रयोग:**- शराब के अधिक सेवन से बचें। पूर्ण वर्जना तो वास्तव में सर्वोत्तम है।
4. **पर्याप्त मात्र में ताजे फल एवं सब्जियों का सेवन:**- मौसमी एवं स्थानीय उपलब्ध फलों एवं सब्जियों का सेवन कैंसर के साथ अन्य जीवन शैली की बीमारियों से बचाव करता है।
5. सम्पूर्ण एवं मोटे अनाज का अधिक सेवन तथा प्रसस्कंष्त कार्बोहाइड्रेट का कम सेवन, यथा-मैदा एवं सफेद चीनी के प्रयोग से सर्वथा बचें।
6. लाल माँस तथा संकर गायों का दूध का कम सेवन तथा सूखे-मेवे, दालों तथा मछली का ज्यादा प्रयोग हितकर है।
7. विटामिन-डी का अनुपूरण अथवा धूप का सेवन:- विटामिन-डी की कमी काफी बड़े जन-समुदाय में देखी गई है, खासतौर में जो लोग घर के अन्दर अथवा अन्तर्वासी कार्यस्थल पर कार्यरत हैं। प्रतिदिन 15-30 मिनट धूप लेने से शरीर में पर्याप्त विटामिन-डी का त्वचा में संश्लेषण हो जाता है अथवा प्रतिदिन 1000 यूनिट दवा के रूप में विटामिन-डी के लेने की सलाह दी जाती है।
8. हिपेटाइटिस-बी तथा ह्यूमन पैपिलोमा वायरस के लिए वैक्सीन के प्रयोग से यकृत, गर्भाशय ग्रीवा तथा गले के कैंसर से बचा जा सकता है। ■

अशोक की धम्म विषयक अवधारणा पर परम्परा का प्रभाव

प्रो. राजवन्त राव*

सार-संक्षेप : अशोक सिर्फ भारत अपितु विश्व के समस्त दिग्विजयी शासको में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अशोक वह शासक है जिसने विश्व को सर्वप्रथम जीओ और जीने दो का सन्देश दिया अशोक विश्व का प्रथम शासक था, जिसकी उदार दृष्टि में सम्पूर्ण मानव समाज ही नहीं, अपितु सभी जीवधारी समानरूप से समान थे। अशोक विश्व इतिहास का वह शासक है, जो शक्ति सामर्थ्य और सैन्य बल के चरम पर पहुँचकर दुनियॉ को जीतनें की कवायद छोड़कर स्वयं को जीतने की दिशा में सात्विक-आध्यात्मिक मार्ग पर चल पड़ा। राजा रहते हुए धम्म का प्रतिपादन एवं प्रसार कर उसने यह सिद्ध कर दिया कि सत्ता के चरम पर जाकर भी किस प्रकार राजा को अपनी उदार दृष्टि जीवमात्र के कल्याणर्थ समर्पित हो जाना चाहिए। इस दृष्टि से अशोक अपने पूर्ववर्ती, समकालीन एव उत्तरवर्ती क्रमशः रैमसिज, साइटस, डेरियस, कान्टेस्टाइन, सीमर, सिकन्दर, नेपोलियन तथा अकबर और औरंगजेब आदि सभी की अपेक्षा महान कहलाने के अधिक योग्य है।

बीज शब्द : धम्म, बौद्धिक परम्परा, धर्मशास्त्र, शिलालेख, सम्प्रदाय

अब यह एक स्वीकृत तथ्य है कि मौर्यवंशी राजा अशोक व्यक्तिगत जीवन में बौद्ध मतावलम्बी था। किन्तु अपने अभिलेखों में उसने अपनी प्रजा के लिए जिस धम्म का उपदेश दिया वह बौद्ध धर्म के आदर्शो से प्रभावित होते हुए भी उससे भिन्न था। अशोक स्पष्टतः अपने अभिलेखों में 'धम्म' और 'पाषंड' में भेद करता है। पाषंड शब्द का प्रयोग उसने ब्राह्मण, निर्ग्रन्थ, बौद्ध तथा आजीवक आदि सभी सम्प्रदायों के लिए किया है जिसकी विशिष्ट उपासना पद्धतियाँ थीं तथा परलोक विषयक पृथक मान्यताएँ भी, जबकि वह 'धम्म' का प्रयोग एक ऐसी आचार संहिता के लिए करता है जिसे किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता। बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों 'बुद्धं शरणं गच्छामि', 'धम्मं शरणं गच्छामि' और 'संघं शरणं गच्छामि' बौद्धों के दैनिक प्रार्थना के अंग हैं, वहाँ स्पष्टतः धम्म शब्द बौद्ध धर्म के उपासनात्मक स्वरूप को ही प्रकट करता है। यहाँ यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि अशोक ने अपने द्वारा प्रसारित लेखों को 'धम्म लिपि' क्यों कहा तथा नैतिक उपदेशों के लिए 'धम्म' शब्द की प्रेरणा उसे कहाँ से मिली?

*आचार्य एवं पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर, उ0प्र0

हमारा यह विनम्र मत है कि अशोक ने धम्म शब्द धर्मशास्त्रों के धर्म शब्द से ग्रहण किया जिसका प्रयोग अशोक कालीन समाज में आचार और विधि के लिए प्रचलित था और यह शब्द वैदिक काल से ही अनेक परिवर्तनों से होता हुआ मौर्य युग तक सामाजिक आचार और सामाजिक विधि के लिए प्रचलन में था। यहाँ धर्म शब्द की विकास यात्रा किंचित विचारणीय है। 'धृ' धातु से व्युत्पन्न धर्म शब्द का प्रयोग वैदिक सन्दर्भो में अनेक अर्थो में हुआ है। **ऋग्वेद** में इसका प्रयोग धार्मिक क्रिया-संस्कारों तथा धार्मिक विधियों के लिए तो हुआ ही है,[1] साथ ही सामाजिक परम्पराओं तथा आचरण सम्बन्धी नियमों के लिए भी इसका प्रयोग मिलता है।[2] इस प्रकार ऋग्वेद में धर्म शब्द का प्रयोग उपासनात्मक विधि-नियम और सामाजिक परम्पराओं तथा समाज को व्यवस्थित रखने वाले नियमों के लिए समान रूप से मिलता है। **उत्तर वैदिक साहित्य** में भी धर्म शब्द का प्रयोग याज्ञिक विधि-नियम के साथ-साथ सामाजिक तथा नैतिक नियमों के लिए मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद[3] में यज्ञ, अध्ययन, दान एवं तप को धर्म स्कन्ध कहा गया है। यहाँ धर्म शब्द का प्रयोग मूल्य-परक और नैतिकतापरक प्रतीत होता है। **तैतिरीय उपनिषद्** में जहाँ 'सत्यं वद' के साथ 'ध र्मम् चर' का उपदेश है वहाँ धर्म के आचार मूलक स्वरूप की ओर ही संकेत है। आगे चलकर भगवत्गीता में 'स्वधर्म' की जो बात कही गयी वहाँ स्पष्टत: धर्म सामाजिक कर्त्तव्य का बोधक है। धर्म का नीतिमूलक अथवा सदाचार मूलक स्वरूप महाभारत में अनेकत्र स्पष्टत: प्रतिपादित है।

महाभारत में जहाँ धर्म की परिभाषा करते हुए इसे आचार मूलक कहा गया है, वहीं- 'धारणात् धर्म इत्याहु:' के रूप में इसकी परिभाषा की गयी है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वैदिक काल के अन्त तक जब **कल्पसूत्र** साहित्य श्रौतसूत्रों, गृह्यसूत्रों एवं धर्मसूत्रों में विभाजित हुआ तब याज्ञिक विधि-नियम और सामाजिक विधि नियम का वर्गीकरण हुआ। इस प्रक्रिया में जहाँ श्रौतसूत्र एवं गृह्यसूत्र वैदिक यज्ञों एवं अनुष्ठानों से सम्बन्धित विधि निषेध के निर्देशक बने वहीं धर्मसूत्र सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित आचार एवं विधि के परिचायक बन गये। पाण्डुरंग वामन काणे ने गौतम, आपस्तम्ब और बौधायन के धर्मसूत्रों को प्राचीनतम मानते हुए इनकी रचना का काल 600 ई.पूर्व से 300 ई.पूर्व के मध्य निर्धारित किया है। उसके अनुसार ये ग्रन्थ यास्क के निरुक्त के पूर्ववर्ती हैं। मौर्य युग तक निश्चय ही धर्मसूत्र साहित्य विधि और आचार के लिए प्रमाण माने जाने लगे थे और सामान्य जनजीवन में इनकी महत्त्वपूर्ण स्वीकृति थी। यह बात पतंजलि के महाभाष्य के इस कथन से प्रमाणित है कि ईश्वर की आज्ञा के बाद धर्मसूत्र ही आचार के लिए प्रमाण है।[4] यह उल्लेखनीय है कि धर्मसूत्रों में वेदों एवं वेदज्ञों के स्मृति एवं शील को धर्म अथवा विधि का मूल माना गया।[5] कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह प्रमाणित है कि मौर्यकाल तक राजकीय न्यायिक व्यवस्था अस्तित्व में आ गयी थी। 'धर्मस्थीय' एवं 'कण्टक-शोधन' जैसे न्यायालय अस्तित्व में थे। मान्य विधि के अभाव में न्यायिक प्रक्रिया की कल्पना नहीं की जा सकती। अतएव यह सहज कल्पनीय है कि न्यायालयों में धर्मसूत्रों द्वारा विहित विधि ही प्रमाण मानी जाती रही होगी। यह भी ध्यातव्य है कि मूलत: संन्यास मूलक होने के कारण बौद्ध धर्म के द्वारा न तो कोई पृथक् सामाजिक

व्यवस्था दी गयी और न ही समाज के व्यवस्थापन के लिए विधि नियम की कोई स्वतन्त्र व्यवस्था ही दी गयी। ऐसी स्थिति में मौर्य कालीन समाज में भी अधिकांशत: वैदिक परम्परा में विकसित धर्मसूत्र ही सामाजिक आचार-संहिता के मानदण्ड थे और चूँकि धर्मसूत्रों में धर्म शब्द का प्रयोग सामाजिक आचार और समाज को नियन्त्रित करने वाले विधि-नियमों के लिए प्रचलित हो चला था अत: बहुत सम्भव है कि अशोक ने वैदिक परम्परा में विकसित आचार मूलक धर्म शब्द को अपने अभिलेखों की धम्म-लिपि में प्रयुक्त किया।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अशोक स्वयं को अपनी प्रजा के बीच एक लोकप्रिय शासक के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता था। इसलिए वह ऐसी अनेक बातों का उल्लेख अपने अभिलेखों में बार-बार करता है जो वैदिक परम्परा से गहराई के साथ जुड़ी हुई थी। उदाहरण के लिए वह अपने अभिलेखों में स्वयं को 'देवानाप्रिय' कहकर गौरवान्वित करता है। अपने एक लघुशिलालेख (रूपनाथ संस्करण) में वह कहता है कि इस काल तक जम्बूद्वीप में देवता जो (मनुष्यों से) अमिश्र थे अब मिश्र कर दिए गये है। यहाँ भी स्पष्टत: मनुष्यों और देवताओं की सन्निकटता की बात कही गयी है और यह अवधारणा भी कदाचित् वैदिक परम्परा से ही ग्रहण की गयी प्रतीत होती है क्योंकि ऋग्वेद में देवताओं का उल्लेख अनेकत्र मुनियों के सखा और राजाओं के सहायक के रूप में हुआ है। मनुष्यों एवं देवताओं का यह सम्पर्क जहॉ समाज के नैतिक स्तर में उन्नयन का सूचक माना जाता था वहीं यह कुशल शासन का भी द्योतक समझा जाता था। इसका संकेत महाभारत के अनेक सन्दर्भो से मिलता है। महाभारत के वनपर्व में शिबि उषीनर के सदन में मुनियों एवं देवताओं के साथ-साथ होने का उल्लेख तो मिलता ही है साथ ही इसी ग्रन्थ में रामराज्य का वर्णन भी हुआ है-

ऋषीणाम देवतानाम् च मनुष्याणाम च सर्वसः।
पृथिव्यां सह वासोऽभूत रामराज्ये प्रशासति॥

अशोक न केवल वैदिक देवताओं के अस्तित्व को आदरपूर्वक स्वीकृति देता है वरन् अपने अभिलेखों में वह अनेकत्र स्वर्ग तथा स्वर्गीय सुखों की भी चर्चा करता है। अपने एक लघु शिलालेख में ही वह विपुल स्वर्ग की प्राप्ति की भी बात करता है। अपने छठे शिलालेख में भी वह स्वर्गीय सुखों की प्राप्ति की बात करता है। डी.आर. भण्डारकर अशोक के अभिलेखों में उल्लिखित स्वर्गीय सुखों के पीछे बौद्ध ग्रन्थ 'विमानवत्यु' में वर्णित स्वर्गीय सुखों को प्रेरक स्रोत मानते है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि स्वर्ग की अवधारणा मूलत: वैदिक है तथा निर्वाण अथवा मोक्ष की अवधारणा से सर्वथा भिन्न है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों मे आनन्द और प्रकाश से परिपूर्ण स्वर्ग का उल्लेख मिलता है।[6] स्वर्ग में मधु, घी और सोम के प्रवाह की बात कही गयी है।[7] अथर्ववेद में तो स्वर्ग के सुखों का अत्यन्त आकर्षक वर्णन प्राप्त होता है। इसके अनुसार स्वर्ग प्राप्त करने वालों का बहुत ही सुन्दर स्त्रियाँ, भोज्य पदार्थ और सुगन्धित पुष्प प्राप्त होते हैं। वहॉ मधु और दुग्ध की नदियाँ हैं और सुरा जल की भाँति बहती है। यहॉ कमलों से युक्त पुष्करणियाँ हैं तथा यहाँ रहने वाले रोगमुक्त और प्रकाशमय जीवन व्यतीत करते है।[8] कठोपनिषद् के अनुसार स्वर्ग का जीवन भूख, भय और

जरा से मुक्त है।[9] तैतिरीय उपनिषद में भी स्वर्ग को आनन्दमय लोक कहा गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि देवताओं से सामीप्य और स्वर्ग विषयक अवधारणा जो अशोक के अभिलेखों में मिलती है मूलतः वैदिक परम्परा से प्रभावित है।

हरप्रसाद शास्त्री जैसे विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि अशोक ने अपने प्रथम शिलालेख में पशुबलि का निषेध किया है। यह इस बात का सूचक है कि वह वैदिक यज्ञों और प्रकारान्तर से वैदिक धर्म का विरोधी था, किन्तु हिंसात्मक यज्ञों के विरुद्ध उत्तर वैदिक काल में ही कृषि की लोकप्रियता में वृद्धि तथा आध्यात्मिक चिन्तन के विकास के साथ, स्वर मुखरित होने लगा था। छान्दोग्य उपनिषद् तथा वृहदारण्यक उपनिषद् में क्रमशः अहिंसा और दया की प्रशंसा की गयी है।[10] मुण्डकोपनिषद में तो यज्ञ को ही टूटी हुई नाव कहा गया है जिसमें बैठकर संसार सागर को पार नहीं किया जा सकता है। महाभारत में अनेकत्र अहिंसा परमोधर्मः का उपदेश मिलता है। यह सच है कि अशोक ने समकालीन बौद्ध एवं जैन धर्मो के प्रभाव तथा सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों को दृष्टि में रखते हुए अहिंसा के पालन पर विशेष बल दिया तथापि अहिंसा का सिद्धान्त उपनिषद काल में पूर्णतः अज्ञात नहीं था।

अशोक ने अपने द्वारा उपदिष्ट धम्म के अन्तर्गत अपासिनव, लोक कल्याण, दया, दान, सत्य, शुचिता, मृदुता, साधुता आदि नैतिक गुणों के विकास पर बल दिया। इसके साथ ही चाँड्य, नैष्ठुर्य, ईर्ष्या, द्वेष आदि विकारों से मुक्त होने के लिए भी प्रजा को प्रेरित किया। साथ ही उसने माता-पिता की सेवा, ब्राह्मणों, श्रमणों की सेवा, गुरुजनों का सम्मान तथा दासों मूल्यों के प्रति सद्व्यवहार की संस्तुति की। भण्डारकर महोदय के अनुसार ये उपदेश, उपासक बौद्ध धर्म के अंग थे जिनका उल्लेख दीघनिकाय के सिगालोवादसुत्त में मिलता है। निश्चय ही भण्डारकर के इस कथन से पूरी तरह असहमत नहीं हुआ जा सकता क्योंकि अशोक बौद्ध धर्म से प्रभावित भी था और बौद्ध त्रिपिटक साहित्य से परिचित भी, तथापि इनमें से अनेक नैतिक आदर्श वैदिक युग से ही स्वीकृत थे और उनका उद्गम वैदिक परम्परा में देखा जा सकता है। तैत्तिरीय उपनिषद की शिक्षावल्ली में मातृदेवों भव, पितृदेवों भव, आचार्य देवोभव का उपदेश है जो गुरु-शिष्य परम्परा से अशोक के काल तक प्रचलित रहा होगा। सत्य, अहिंस, दान, तप और आर्जव जैसे सद्गुणों की प्रशंसा उपनिषदों में भी अनेकत्र मिलती है। छान्दोग्य उपनिषद में तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य वचन को वास्तविक दक्षिणा कहा गया है।[11] वृहदारण्यकोपनिषद् में दम, दान और दया की शिक्षा देने की बात कही गयी है।[12] गौतम धर्मसूत्र में आत्मा के आठ गुणों की चर्चा करते हुए सभी प्राणियों के प्रति दया, शान्ति, अनुसूया, शौच, अकार्पण्य, मंगल और अस्पृहा का उल्लेख किया गया है। यह भी कहा गया है कि ये गुण ब्रह्म से सायुज्यता और सलोकता की प्राप्ति में सहायक है।[13] परवर्ती ध र्मसूत्रों तथा स्मृतियों में भी नैतिक गुणों को ही धर्म का लक्षण माना गया है।[14] पुराणों में धर्म के दस अंगों का उल्लेख करते हुए उनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, क्षान्ति, दम, शम, अकार्पण्य, शौच तथा तप को स्थान दिया गया है।[15] इनका पालन सभी वर्णो का कर्त्तव्य बताया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अशोक

ने अपने धम्म के माध्यम से जिन नैतिक गुणों का प्रचार-प्रसार किया उनमें से निश्चय ही अनेक बौद्ध परम्परा से ग्रहण किये गये थे तथापि उसके कतिपय तत्त्व वैदिक युग से ही प्रवहमान थे।

अशोक ने लोक कल्याण की दिशा में अपने द्वारा किये गये कार्यो का उल्लेख करते हुए राजमार्गों, आरामों, कूपों तथा जलाशयों आदि के निर्माण की बात करता है। वैदिक परम्परा मे इसे पूत कर्म कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद्, प्रश्नोपनिषद् तथा मुण्डकोपनिषद् में पूतकर्म की प्रशंसा की गयी है।[16] किन्तु इसे ब्रह्म ज्ञान की तुलना में हीनतर बताया गया है क्योंकि प्रश्नोपनिषद् के अनुसार पूतकर्म करने वाले चन्द्रलोक में पहुँचते हैं किन्तु पुण्य के क्षीण होने पर उन्हें पुनः मृत्यु लोक में आना पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अशोक ने जिस धम्म का उपदेश किया उसमें वैदिक परम्परा के स्वर भी सन्निहित थे वह अपने धर्म के प्रचार-प्रसार को कोई नयी बात न मानकर प्रचलित परम्परा का अग्रसारण मात्र मानता है। यह बात उसके सातवें स्तम्भ लेख की उसकी इस उक्ति से इंगित है जिसमें वह कहता है कि-अत्यन्त प्राचीन काल में भी ऐसे राजा हुए जिन्होंने लोगों में धर्म की वृद्धि के लिए प्रयत्न किये किन्तु उनकी इच्छा और आशा के अनुरूप धर्म की अभिवृद्धि नहीं हो सकी। इसी क्रम में मैंने भी धर्मवृद्धि की दिशा में प्रयत्न किया है। धर्मश्रावण की व्यवस्था करायी है। धर्मानुशास्तियाँ अनुज्ञापित की हैं, धर्मस्तम्भ लगवाये हैं, धर्ममहामात्रों की नियुक्ति की है और लोक के सुख के लिए अनेक कल्याणकारी कार्य किये है।

सन्दर्भ

1. ऋ.1.22.18; 5.26.6; 7.45.24 तथा 9.74.1 आदि।
2. ऋ. 3.3.1; 3.17.1 आदि।
3. छा.उप. 2.23
4. महाभाष्य जि. 1, पृ. 115
5. गौतम धर्मसूत्र, 1.1.2; आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.1.12
6. ऋ. 1.35.6; 8.5.8; 8.41.9; 9.13.10-11
7. ऋ. 10.154.1-3
8. अथर्ववेद, 4.34.2-6
9. कठोनिषद्, 1.12
10. छान्दोग्य उपनिषद्, 3.17.4; वृहदारण्यक, 5.2
11. छान्दोग्य, 3.17.4
12. वृहदारण्यकोपनिषद्, 5.2
13. गौतम धर्मसूत्र, 8.24-25
14. वशिष्ठ, 4.4; मनु. 10.63; याज्ञवल्क्य, 1.122
15. वामन पुराण,14.1.2
16. छान्दोग्य, 5.10.3, प्रश्नोपनिषद्, 1.9; मुण्कोपनिषद्, 1.2.10 ■

भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा

डॉ. सलिल कुमार पाण्डेय*

सार-संक्षेप : भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी उपलब्धि पुरुषार्थ चतुष्टय है, सकारात्मक जीवन शैली से सामाजिक तथा राष्ट्रीय गतिविधियाँ उन्नति की ओर अग्रसर होती है, तथा नकारात्मक दृष्टिकोण समाज और राष्ट्र को क्षति पहुँचाते हैं। भारतीय इतिहास का प्रमुख ध्येय रहा है कि सभी सुखी हों, सभी स्वस्थ हों। अर्थात् किसी को भी कष्ट की प्राप्ति न हो।

बीज शब्द : पुरुषार्थ धर्म, छन्द, सदगुण विश्वमंगल, कर्तव्य

भारतीय इतिहास की सुदीर्घ चिन्तन धरा पर दृष्टिपात करने से यह परिलक्षित होता है कि भारतीय मनीषियों, ऋषियों ने जितना अधिक बल भौतिक विकास पर दिया है उतना ही आध्यात्मिक विकास पर भी। यदि एक ओर उसका लक्ष्य व्यक्तित्व विकास रहा है तो दूसरी ओर राष्ट्रनिर्माण भी। राष्ट्रबोध भारतीय इतिहास की अमूल्य निधि है। इतिहास को 'यह ऐसा ही था' या 'प्राचीन आख्यान' के रूप में प्रारम्भिक स्तर पर जाना जाता है। जब हम गम्भीरता से इस विषय पर विचार करते हैं तब स्पष्ट हो जाता है कि वेद में वर्णित संवाद सूक्त, नाराशंसी, गाथा आदि भी इतिहास के अन्तर्गत आते है। 'इतिहास पुराण' कथन यह स्पष्ट करता है कि पुराण 'इतिहास' के प्रमुख स्रोत हैं वेदव्यास ने महाभारत को इतिहास कहा ही है। कालिदास रचित रघुवंश, अभिज्ञानशाकुन्तलतम् आदि ग्रन्थ भारतीय 'इतिहास' के उज्ज्वल अध्याय हैं। यद्यपि उपनिषदों का प्रधान कथ्य दार्शनिक तथ्यों का विवेचन है, तथापि उनकी पृष्ठभूमि भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ हैं।

भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी उपलब्धि पुरुषार्थ चतुष्टय है। सकारात्मक जीवन शैली से सामाजिक तथा राष्ट्रीय गतिविधियाँ उन्नति की ओर अग्रसर होती हैं तथा नकारात्मक दृष्टिकोण समाज और राष्ट्र को क्षति पहुंचाते हैं। यही कारण है कि हमारे प्राचीन ऋषियों, मुनियों ने उसी मानव जीवन को सफल माना जिसनें पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त कर लिया हो। किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना ही पड़ता है। इस प्रयत्न को पौरुष या पुरुषार्थ कहते हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय में प्रथम है 'धर्म'। धर्म वह सदाचरण है जो किसी को दु:ख नहीं पहुँचाता तथ स्व के साथ साथ सबके विकास पर बल देता है। धर्म मानव जीवन के सकारात्मक पक्ष का आधारस्तम्भ है। पुरुषार्थ चतुष्टय

*असिस्टेण्ट प्रोफेसर-राजनीति विज्ञान विभाग- महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, जिला-गोरखपुर (उ.प्र.)

में दूसरे क्रम पर अर्थ का उल्लेख आया है। लोक में कहा जाता है कि 'निर्धन पुरुष पतंग समाना' अर्थात् निर्धन पतंग की तरह इधर-उधर उ़डता रहता है। उसका कोई आधार नहीं होता। धन प्राप्ति अवश्य करनी चाहिए क्योंकि धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन में अर्थ का प्रमुख योगदान है पर भारतीय इतिहास इस पर बल देता है कि वह धन धर्म के आधार पर उपार्जित हो न कि छल-छद्म या प्रपंच के आधार पर। अर्थ या धन का सही सदुपयोग है व्यक्तिगत विकास विकास के साथ उसका राष्ट्रीय विकास में खर्च किया जाना। जो अकेले के लिए धन का उपयोग करता है उसे पापी माना जाता है पर जिसने अपने धन में यथोचित अंश समाज तथा राष्ट्र की प्रगति हेतु दान कर दिया है। उसका अर्थ सार्थक है तथा धन प्रशंसनीय है। तृतीय पुरुषार्थ 'काम' कामना को कहते हैं। कामना से व्यक्ति वंशवृद्धि तथा अनेक प्रकार की उपलब्धियों को प्राप्त करता है। भारतीय इतिहास परम्परा उसी 'काम' की प्रशंसा करती है जिसके मूल में मंगल एवं कल्याण की भावना हो। चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष है। मोक्ष का आशय है आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना। भौतिक जीवन की सफलता तभी है जब व्यक्ति आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो। भारतीय चिन्तन परम्परा में मोक्ष की अवधारणा ने भारतीय दर्शन को विश्व प्रतिष्ठा दी है। इन पुरुषार्थों का प्रधान लक्ष्य है। व्यक्ति को व्यक्तिगत भौतिक सामाजिक राष्ट्रीय तथा आध्यात्मिक स्तर पर विकसित करना जो भारतीय इतिहास की महत्तम उपलब्धि है। प्रस्तुत शोध निबंध में उन्हीं विषयों का मौलिक एवं प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भारतीय इतिहास का प्रमुख ध्येय रहा है सभी सुखी हों सभी स्वस्थ हों अर्थात् किसी को भी कष्ट की प्राप्ति न हो। स्वयं का सुख गौण तथा समाज का सुख प्रधान है। पूरा विश्व एक परिवार है हमें भारतीय इतिहास अनेक रूपों में प्राप्त होता है। यदि कहीं वह आख्यानक-व्याख्यानात्मक प्रधान है तो कहीं वह नाराशंसी तथा गाथा के रूप में है। पुराण भारतीय साहित्य के स्वर्णिम पृष्ठ हैं। महाभारत को वेदव्यास ने स्वयं ही इतिहास कहा है। वाल्मीकि रामायण भारतीय इतिहास का वह हीरक हस्ताक्षर है जो हजारों लाखों वर्षों से देश-विदेश में भारतीय संस्कृति का कीर्तिधवज फहरा रहा है। अन्य अनेक ग्रन्थ हैं जिनमें भारतीय इतिहास का वह मधुरस मिलता है जिसे हम पुरुषार्थ चतुष्टय कहते हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय मानव-जीवन की सार्थकता का प्रमाण पत्र है। धर्माचरण पूर्णजीवन, धर्म से अनुप्राणित अर्थ एवं काम, भौतिक जीवन को तो समृद्ध करते ही हैं, साथ ही मोक्ष का मार्ग भी प्रशस्त करते हें। पुरुषार्थ चतुष्टय की पृष्टभूमि व्यक्तित्व का विकास, राष्ट्र निर्माण, तथा चेतना-बोध को सुदृढ़ करती है। यदि भारत को पुनः विश्वगुरु और सोने की चिड़िया का बनना है तो उसे भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा को पुष्ट करना ही होगा।

इतिहास शब्द इति+ह+आस के संयोग से बना है जिसका आशय है-इस प्रकार का था। परम्परा से प्राप्त उपाख्यान (कथा-कहानी) के समूह को इतिहास कहते हैं, उपदेश समन्वित धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इतिहास के लक्षण में सम्मिलित है। इन पुरुषार्थ चतुष्टय का आख्या इतिहास है जो कथाक्रम के रूप में आज भी उपलब्ध है। दूसरे शब्दों में धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष का इतिहास से प्रत्यक्ष संबंध है। वीरगाथा जैसे महाभारत, इतिहास ग्रन्थ है। पुराण इतिहास को प्रमाण मानते हैं।[1] वेदव्यास ने महाभारत को अनेकशः इतिहास कहा है।[2] और इस ग्रन्थ के लिए आख्यान नाम का प्रयोग किया है।[3] अथर्ववेद में ज्ञानियों को इतिहास, पुराण, नाराशंसी एवं गाथाओं का प्रिय स्थान कहा गया है।[4] पुराण का तात्पर्य पुरानी कहानी, प्राचीन आख्यान है। पुराण हिन्दू कथा-शास्त्र

के अक्षय भण्डार हैं। पुराण के पाँच लक्षण कहे जाते हैं- सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर वर्णन तथा वंशानुचरित।[5] अठारह पुराण प्रमुख माने गये हैं-ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, तथा ब्रह्माण्ड। जिन मन्त्रों द्वारा मनुष्यों की प्रशंसा की गयी है उन्हें वैदिक साहित्य में नाराशंसी कहा गया है।[6] यह शब्द नाराशंस के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। पूर्व वैदिक साहित्य में नाराशंसी अनेक अर्थों में प्रयुक्त दिखाई देता है। यथा-Praise of men इसका एक अर्थ मनुष्यों द्वारा प्रणीत प्रशंसा भी है। The praises composed by men[6] गाथा का अर्थ है छन्द, धार्मिक, श्लोक, या छन्द जो वेदों से सम्बन्ध न रखता हो, श्लोक, गीत आदि यह अर्थ आप्टे के संस्कृत हिन्दी शब्दकोश में दिया गया है।[7] वेद में गाथा शब्द श्लोकात्मक साहित्य के रूप में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वैदिक गाथाओं में इन्द्रगाथा एवं यज्ञ गाथा प्रमुख थे।[8] आख्यान का आशय है बोलना, किसी पुरानी कहानी की ओर निर्देश करना। इसके लिए कथा कहानी शब्द का प्रयोग होता है। मूलतः पौराणिक कथाओं को आख्यान कहा जाता है।[9] वैदिक काल में आख्यान शब्द का प्रयोग मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में शुनः शेप का आख्यान प्रसिद्ध है। महाभारत आख्यानों उपाख्यानों के लिए प्रसिद्ध है। श्री हरिस्वामी के श्लोक से विदित होता है कि स्वयं देखे हुए प्रकरण का कथन आख्यान तथा दूसरे वक्ता द्वारा सुने गये प्रकरण को कहने पर उपाख्यान माना जाता है।[10] आचार्य चाणक्य ने पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका (कथाएँ) उदाहरण, धर्मशास्त्र, तथा अर्थशास्त्र को इतिहास कहा है। इन कथनों से स्पष्ट है कि इतिहास का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है और हमारे प्राचीन साहित्य से ही 'इतिहास' का तत्त्व बोध होता आ रहा है। हमें अपने इतिहास-बोध के प्रति सतर्क तथा सजग रहना है।

धर्म-

धर्म (धृ+मन्) का आशय है कर्त्तव्य, जाति सम्प्रदाय, आदि के प्रचलित आचार का पालन। कानून प्रथा, तथा धार्मिक गुण या नैतिक गुण तथा अच्छे कार्य को भी धर्म कहते हैं। शास्त्र विहित आचरण, निष्पक्षता, पवित्रता, औचित्य तथा शालीनता को धर्म कहा जाता है। धर्मात्मा वह व्यक्ति है जो न्यायशील, भला तथा पुण्यात्मा, हो, जो सद्गुण तथा पवित्रता की दृष्टि से आगे बढ़ा हुआ हो उसे धर्मवद्धि कहते हैं।[11] वेदवयास ने धर्म की विवेचना करते हुए कहा कि जिस कार्य से दूसरे को कष्ट न पहुँचे वह धर्म है। धर्म मात्र करने का दिखावा करने वाला कभी धार्मिक नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार नेत्रहीन सूर्य की प्रभा से अछूता रहता है उसी प्रकार धर्म का दिखावा करने वाला भी धर्म से अछूता ही रहता है।[12] मनुस्मृति में धर्म को अनेकश चर्चा की गयी है तदनुसार आचार ही श्रेष्ठ धर्म है। धर्म ही प्रज्ञा को धारण करता है जिसका आधार नैतिक नियम तथा सदाचरण है। मनु के अनुसार धर्म का स्रोत वेद, स्मृति (धर्मशास्त्र) सदाचार तथा स्वयं की सन्तुष्टि है। भारतीय चिन्तन परम्परा में धर्म को व्यक्ति का नियामक, मार्गदर्शक माना गया हैं धर्म ही मानव की गतिविधियों को परिस्थितियो के अनुसार नियमित-नियंत्रित करता है। महाभारत की मान्यता है कि सदाचरण से ही धर्म फलीभूत होता है।[13]

धर्म एक ऐसा तत्त्व है जो जीवन में मानव को प्रतिष्ठा देता ही है, मृत्यु के पश्चात भी साथ देता है। भारतीय मान्यता कहती है कि व्यक्ति की मृत्यु होने पर धर्म पृथ्वी में गड़ा रह जाता है, परिश्रम से पाले पोसे गये पशु बाड़े में ही रह जाते हैं पत्नी घर के दरवाजे तक साथ निभाती है, मित्रगण श्मशान तक साथ देते हैं और सबसे प्रिय देह चिता तक साथ देती है, फिर परलोक मार्ग में धर्म ही साथ जाता है।[14] अतएव धर्म पूर्ण जीवन-यापन को उत्तम माना गया है। यदि इतिहास-पुराण के पृष्ठों पर दृष्टि डाली जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन लोगों ने विपरीत परिस्थितियों में भी धर्म का आचरण नहीं छोड़ा वे ही इतिहास के स्वर्णाक्षरों में प्रतिष्ठित और प्रशंसित हुए। राजा शिवि ने कबूतर की प्राणरक्षा के लिए अपने शरीर का मांस बाज को दे दिया। महर्षि दधीचि ने देवताओं की रक्षा के लिए अपनी हड्डियों को दे दिया। महाराज हरिश्चन्द्र ने सत्यवचन की रक्षा के लिए अनेक भयावह कष्टों को झेला, इन लोगों ने धर्म की रक्षा के लिए ही अनेक भीषण यंत्रणाएं भोगी तभी गोस्वामी तुलसीदास ने इनकी प्रशंसा की।[15] महात्मा गांधी सत्य को ईश्वर मानते थे और अहिंसा को परमधर्म। गोस्वामी तुलसीदास ने भी अहिंसा को ही परमधर्म (श्रेष्ठधर्म) कहा है।[16]

अर्थ- (ऋ+धन्) का अभिप्राय है आशय, प्रयोजन लक्ष्य उद्देश्य विषय, वस्तु आदि। इस शब्द का तात्पर्य धन या सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति से भी है। यहाँ यह तथ्य विचारणीय है कि अर्थ-धन वही सार्थक है जो स्वयं या समाज की भलाई के लिए समर्पित हो और जिससे धार्मिक क्रियाएँ पूर्ण होती हैं यही कारण है कि अर्थ को चतुर्वर्ग पुरुषार्थ, पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत रखा गया है। अर्थ का तात्पर्य उन भौतिक संसाधनों से है जो मानव को सांसारिक सुख प्रदान करते हैं। भारतीय चिन्तन परम्परा में संसार तथा स्वर्ग दोनों को महत्त्व दिया गया हैं मानव को धर्म विहित रीति से धनार्जन करना चाहिए उसका उपयोग स्वयं के उत्थान के साथ-साथ समाज के उत्थान के लिए भी करना चाहिए। लोकोक्ति है कि यदि नाव में पानी भरने लगे और अधिक धनागम होने लगे तो दोनों हाथों से पानी तथा धन उलीचना चाहिए।[17] दूसरे शब्दों में उस धन को समाज की प्रगति में लगा देना चाहिए। तुलसीदास का कथन है कि पक्षी के पीने से नदी का जल नहीं घटता और यदि राम जी सहायक है तो दान देने से धन नहीं घटता।[18] अर्थ के सदुपयोग के पीछे मान्यता है कि जो अकेला खाता है वह पाप खाता है अर्थात उसे अपने धन में से कुछ अंश किसी न किसी रूप में अन्य को जिसे जरूरत हो देना चाहिए। कालिदास ने रघुवंश में राजा रघु का वर्णन करते हुए लिखा है कि उन्होंने विश्वजित नामक यज्ञ में सर्वस्व दान कर दिया और मिट्टी के पात्र में भोजन करने लगे। उनके पास धन न होने की स्थिति में गुरूदक्षिणा के लिए चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं के याचक कौत्स को निराश नहीं किया। महाभारत में एक से एक सम्पन्न राजा थे पर दानवीर की उपाधि कर्ण को ही मिली। उसने मरते समय भी याचना किये जाने पर याचक को दाँत में लगे सोने को दान कर दिया था। भामाशाह को कौन भूल सकता हैं जिन्होंने राष्ट्र की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व

धन महाराणा प्रताप को समर्पित कर दिया। भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। इसके पीछे भारत की अकूत आर्थिक सम्पदा थी। विदेशी आक्रान्ताओं ने भारतीय सम्पदा को कितनी बार लूटा और कितना नष्ट किया कौन कह सकता है। उपनिषदों में; भौतिक सम्पदा तथा आध्यात्मिक ज्ञान दोनों को समान महत्त्व देते थे। महाराज जनक के राज्य में समाज के उपेक्षित वर्ग के पास जो संपदा थी उसे देखकर इन्द्र भी मुग्ध हो जाता था।[19] महाराज जनक उपनिषदकालीन ज्ञानपुंज थे। आचार्य चाणक्य ने तो अपने ग्रन्थ का नाम ही 'अर्थशास्त्र' रक्खा। उन्होनें धन को धर्म का आधार माना है जिससे उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। राष्ट्र के विकास में अर्थ का अति महत्त्वपूर्ण योगदान है। राष्ट्र का आर्थिक विकास हम सबके हित में है। याद रखना है कि राष्ट्रहित सर्वोपरि और व्यक्तिगत हित गौण है। अपनी प्राप्ति का प्रथम अंश राष्ट्र को समर्पित करना चाहिए। अर्थ नामक पुरुषार्थ दोनों लोकों में सुख देता है।

काम- का तात्पर्य है कामना, इच्छा, अभीष्ट पदार्थ, स्नेह अनुराग। काम के अन्तर्गत मानव की कामनाएँ, वासना जन्य तथा आसक्ति मूलक प्रवष्टत्तियों का समावेश होता है। 'काम' से सन्तानोत्पत्ति होती है तथा वंश परम्परा अग्रसर होती है। काम को दो रूपों में देखा जा सकता है-मंगल काम और अमंगल काम। मगल काम मंगल मूलक होता है जिससे स्व तथा समाज दोनों का कल्याण होता है और अमंगल काम से अन्ततः अपमान और विनाश ही उत्पन्न होते हैं। मनुस्मृति के अनुसार विधाता ने सृष्टि के निर्माणार्थ तप, वाणी, रति, प्रेम, काम, क्रोध, आदि की थी।[20] मनुस्मृति की मान्यता है कि इस संसार में किसी वस्तु की कामना करना श्रेष्ठ नहीं है, फिर भी कामना नहीं है, ऐसा नहीं है। वेदों का अधययन करना तथा वेदविहित कर्मानुसार करना भी काम्य है।[21] कामना का पूर्ण अभाव सम्भव नहीं है। अतः कामना को एक सीमित स्तर पर रखकर उसे मांगलिक पृष्ठभूमि देकर उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। वेदों का अधययन करना तथा वेद विहित कर्मानुसार किया गया कार्य सुखद एवं शुभद होता है। वेदाध्ययन विश्वमंगल का प्रारंभिक सोपान है। वैदिक साहित्य में 'काम' तत्त्व पर गम्भीरता से विचार किया गया है। कामोत्पत्ति का उल्लेख ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में हुआ है, तदनुसार, सृष्टि के पूर्व चतुर्दिक अंधकार एवं जल व्याप्त था 'वह प्रादुर्भूत होने वाला परमात्म तुच्छ जल से आच्छादित हो गया था तत्पश्चात् तप की महत्ता से वह एक तत्त्व प्रकट हुआ। सृष्टि के पूर्व काल में मन रूपी पुरुष का जो सर्वप्रथम काम रूपी विकार था, उत्पन्न हुआ। मनीषी कवियों ने अपनी प्रार्थना शक्ति से हृदय में ही ढूँढकर, इस वर्तमान जगत के अव्याकष्टत परमात्मतत्त्व से स्थित निकट सम्बन्ध को जान लिया।[22] इस मन्त्र में काम को सृजन की इच्छा को मन का रेत अर्थात उत्पादक बीज कहा गया है क्योंकि इच्छा के अभाव में मन कुछ भी उत्पन्न नहीं कर सकता। सत् और असत् इन दोनों का बन्धु अर्थात सम्बन्धित स्थापित करने वाला सूत्र काम है। काम या अभिलाषा न हो तो उत्पत्ति सम्भव नहीं है। जयशंकर प्रसाद की कामायनी का मूल स्वर है मंगल काम, जिससे सृष्टि गतिमान् होकर, एक सुन्दर रूप ग्रहण करती

है।[23] काम नामक पुरुषार्थ का सृष्टि के अग्रसरित होने और मानव की मंगलकारी प्रगति में विशेष योगदान है।

मोक्ष द्धमोक्ष्+ध्ञ्र शब्द का अभिप्राय है मुक्ति, छुटकारा बचाव तथा स्वतंत्रा आदि। इस शब्द का आध्यात्मिक अभिप्राय भी होता है तदनुसार इस शब्द का अर्थ है उद्धार, परित्रण, परम मुक्ति, आवागमन अर्थात् पुनर्जन्म के चक्कर से आत्मा की मुक्ति। यह मानव जीवन चार उद्देश्यों में से अन्तिम उद्देश्य है।[24] मोक्ष क्या है? अनेक विद्वानों के अनेक मत हैं। एक नदी बहती हुई समुद्र में समा गयी। नदी और समुद्र का जल एक हो गया, दोनों को अलग कर देखना सम्भव नहीं। जब आत्मा और परमात्मा में विलीन हो जाता है तब वह भी उसी का अंश बन जाता है। यही तो मोक्ष है। जब जीव कर्म बंधन से मुक्त होकर परमात्मा में लीन हो जाये तो उसे मुक्त मोक्ष प्राप्त कहते हैं। मोक्ष प्राप्ति के प्रमुख रूप से तीन मार्ग हैं-कर्म, ज्ञान और भक्ति। साधक अपनी योग्यता और इच्छानुसार इनमें से किसी का चयन करता है। भारतीय मान्यता में मोक्ष को अन्तिम पुरुषार्थ का स्थान दिया गया है अर्थात् धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति के पश्चात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम के अनन्तर ही मोक्ष की प्राप्ति का प्रयत्न श्रेयस्कर है। हमारी संस्कृति एक ओर भोगमयी तो दूसरी ओर त्यागमयी है। मानव के लिए संसार का आकर्षण जितना महत्वपूर्ण है उतना ही संसार से वैराग्य भी। रघुवंशी राजा शैशव में विद्याओं का अभ्यास, यौवन में विषयों के प्रति अनुराग, वृ) हो जाने पर मुनियों सा आचरण करते थे। अन्ततः योग विद्या से शरीर त्याग कर मोक्ष प्राप्त करते थे।[25] गौतमबुद्ध के दर्शन में मोक्ष को निर्वाण कहा गया है। जैसे दीपक तेलहीन होकर बुझ जाता है निर्वाण को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार मानव सांसारिक राग, मोह को छोड़कर निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।[26] सांसारिक भोग विलास की पूर्ति के अनन्तर, मोक्ष का प्राविधान है। मानव को अपने कर्त्तव्यों को जो परिवार, समाज तथा राष्ट्र के प्रति हैं पूरा कर, मोक्ष की कामना श्रेयस्कर है। भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा सनातन धर्म के दोनों अंगों को परिपुष्ट करती है जिसमें दर्शन और सदाचार, भोग तथा योग, अनुराग तथा विराग, लौकिकता तथा आध्यात्मिकता का सुसमावेश है। स्वस्थ तन तथा उन्नत मस्तिष्क की मान्यता पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का सोपान है। भारतीय इतिहास के अनेक प्रकरण हमें उन स्थलों से प्रेरणा लेने को विवश करते हैं जिनमें अंकित था सदाचार, सदाशयता, सहयोगिता तथा विश्वबंधुता जो भारतीय सस्कृति के सनातन अंग हैं।

सन्दर्भ

1. आप्टे- संस्कृत हिन्दी शब्द कोश पृ. 174, धर्मार्थ काम मोक्षणा मुपदेश समन्वित्। पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।।
2. व्यास, महाभारत (उद्योगपर्व 136-18), जयनामे तिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणां

3. व्यास, महाभारत (आदि 2-37), अनाश्रित्येद माख्यानं कथा भुवि न विद्यते
4. अर्थववेद काण्ड 15 सूक्त 6 मन्त्र 12, इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद।
5. आप्टे, संस्कृत हिन्दी शब्दकोश पृ. 624, सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्।।
6. दुबे विपुला-पूर्वा जनवरी, 2017, पष्ट0 55, येन नराः प्रशस्यन्ते स नाराशंसो मन्त्रः यास्क-निरुक्त 9-9
7. आप्टे-संस्कृत हिन्दी शब्द कोश पृ. 342
8. पाठक-वी0एस0, एन्सिएन्ट हिस्ट्री ऑफ इंडिया दुबे विपुला के उक्त लेख में उद्धृत
9. आप्टे, सं0हि0श0पृ0 : 39
10. श्रीधार स्वामी, स्वयं दृष्टार्थ कथनं प्राहुराख्यानं बुधाः। श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते।।
11. चाणक्य, अर्थशास्त्र 1.5.10, पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणम्। धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः।।
12. आप्टे, संस्कृत हिन्दी शब्द कोश पृ. 489-490
13. व्यास महाभारत, यस्य धर्मो हि धर्मार्थेक्लेश भाङ् न स पण्डितः न स धार्मस्य वेदार्थ सूर्यस्यान्धः प्रभामिव
14. परम्परागत, धनानि भूमिः पशवश्च गोष्ठे नारिगृहद्वारि सखा श्मशाने। देहाश्चितयां परलोकमार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः।।
15. तुलसीदास-रामचरित मानस, सिवि दधीचि हरि चंदनरेसा।सहे धारम हित कोटि कलेसा।।
16. परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा
17. परम्परागत, पानी बाढ़ नाव में घर में बाढ़े दाम। दोउ हाथ उलीचिए यह सज्जन को काम।।
18. तुलसी दोहावली, तुलसी पंछी के पिये घटे न सरिता नीर। दान किए धान ना घटे जौ सहाय रघुबीर।।
19. तुलसीदास रामचरित मानस बालकाण्ड, जौं संपदानीच गृह सोहा। सों बिलोकि सुरनायक मोहा।।
20. मनुस्मृति 1-25, तपोवाचं रतिं चैव कामं च क्रोधामेव च। सृष्टि ससर्ज चौवेमां सृष्टमिच्छन्तिमाः प्रजाः।।
21. मनुस्मृति 2-2, कामात्मका न प्रशस्ता न चैवेहास्यकामता। कामोहित वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः।।
22. ऋग्वेद 10-129-4, कामस्तदग्रे समवर्ततााधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्। सतो बन्धुमसीत निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।।
23. प्रसाद जयशंकर, कमायनी श्रद्धा सर्ग, काम मंगलसे मंडित श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम। तिरस्कृत कर उसको तुम भूल बनाते हो असफल भवधाम।।
24. सं0 आप्टे, संस्कृत हिन्दी शब्द कोश पृ. 819
25. कालिदास रघुवंश प्रथम सर्ग,शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां यौवने विशयैषिणाम्। बर्धके मुनिवृत्तिनां योगेनान्ते तनुत्यजांम्।।
26. अश्वघोष-सौन्दरनन्द, दीपेयथ, निर्वृत्तिमम्युपेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्। कृति तथा निर्वृत्तिम्म्युपेतो रागक्षयात् केवलामेतिशान्तिम्।। ■

मनुष्यता के सन्दर्भ में कर्म की उपयोगिता : कर्म योग

मनीष कुमार त्रिपाठी*

सार-संक्षेप : हमारा जीवन प्रभु की कृपा है जो एक निश्चित कार्य और कर्म के लिए प्रभु ने दिया है किन्तु मनुष्य अपनी जीवन पिपासा में इस प्रकार डूबा है कि उसकों अपने जन्म के उद्देश्य का लेश मात्र भी स्मरण नही है और वह नित सकाम करने में लगा पड़ा है चाहे उसके लिए किसी दूसरें अनिष्ट ही ना क्यों करना पड़े। कर्म का महत्व इतना प्रभावी था कि कर्म की प्रधानता के आधार पर ही मनुष्यों का वगह्लकरण किया गया परन्तु मनुष्य की विकृत अवधारणा ने इसे एक अभिशाप के रूप में परिवर्तित कर दिया और उसका बिगड़ा हुआ स्वरूप हमारे बीच में विद्यमान है जो आज हो रहे समस्त विवादों का प्रारम्भिक कारण है। अत: उक्त के सन्दर्भ में कर्म के वास्तविक स्वरूप का निरूपण करने का एक छोटा सा प्रयास किया गया है जो आज भी हमारे शास्त्र में विद्यमान है । यदि आज भी कर्म में सात्विकता जोड़ सके तो कर्म और मनुष्यता की सार्थकता माँ की ममता के समान पवित्र और निष्काम होगा ।

बीज शब्द :मनुष्यता, अभिशाप, कर्म, सात्विकता, कर्म संधान, अग्रदूत

''मनुष्य का आधार है कर्म, और है यही प्रभु की उपासना,
करते रहो निष्काम कर्म तुम होकर प्रभु का अग्रदूत ।
कर्तव्य-पथ पर होकर अडिग करते रहो संधान तुम,
है यही जीवन ए मानव कर्म कर तू कर्म कर तू सात्विक तू कर्म कर ।''

''कर्म'' शब्द कृ धातु से निकला है, कृ धातु का अर्थ है करना । अर्थात् जो कुछ भी किया जाता है, वह ही कर्म है। इस शब्द का पारिभाषिक अर्थ 'कर्मफल' भी होता है। दार्शनिक दृष्टि से यदि देखा जाये तो, इसका अर्थ कभी कभी वे फल होते हैं, जिनका कारण हमारे पूर्व जन्म के कर्म होते है। परन्तु कर्म योग में कर्म शब्द से हमारा मतलब केवल कार्य ही है। मानव जाति का अन्तिम ध्येय सिर्फ और सिर्फ मोक्ष प्राप्ति है न कि सुख प्राप्ति। सुख या आनन्द तो इस जगत् में स्थाई नहीं है उसका अंत आज नहीं तो कल होना ही है। अत: हम सुख और दु:ख से विविध ज्ञान को प्राप्त करते हुए आत्म के उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर चारित्रिक धन का उपार्जन करते है जो हमारे

*शोध छात्र, रसायन विज्ञान विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय), वाराणसी, उत्तर प्रदेश

जीवन का परम कर्तव्य है। चरित्र को ढालने में जितना योगदान सुख का है उतना ही दु:ख का भी है अर्थात् दोनों का समान योगदान है। यदि हम स्वयं का अध्ययन करें, तो पाएंगे कि हमारा हँसना-रोना, सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, हमारी शुभकामनाएं एवं श्राप, स्तुति तथा निन्दा ये सभी हमारे मन के ऊपर केवल बाह्य जगत् के घात-प्रतिघात का परिणाम मात्र है जो मूलत: हमारे चरित्र को ही प्रकट करता है तथा ये सभी घात-प्रतिघात मिलकर ही कर्म को उद्घाटित करते हैं।

स्वामी विवेकानंद जी कर्म को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि आत्मा की आभ्यन्तरिक अग्नि तथा उसकी अपनी शक्ति एवं ज्ञान को बाहर प्रकट करने के लिए जो मानसिक अथवा भौतिक घात उस पर पहुँचाये जाते हैं, वे ही कर्म है। अत: स्वामी जी ने कर्म का व्यापक रूप हमारे सामने उद्घृत करना चाहा है। अत: हम कह सकते हैं कि हम हर क्षण कर्म करते रहते हैं। कर्म का अर्थ केवल भौतिक कर्म ही नहीं है अपितु हमारा बातचीत करना, सुनना,श्वास लेना, चलना या जो कुछ भी हम करते हैं चाहे वो शारीरिक हो या मानसिक सब रूप में हम कर्म ही कर रहे होते हैं तथा उसका प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता जाता है।

भगवद्गीता के तृतीय अध्याय में भगवान कृष्ण ने कर्म के विविध चरणों की व्याख्या की है जहाँ उन्होंने निष्काम कर्म जो ज्ञान मार्ग से होकर जाता है को प्राथमिकता दी है। इस धरती पर कोई भी प्राणी कर्म किये बिना नहीं रह सकते हैं। अर्थात् वे सदैव कर्म बंधन से बँधे होते हैं तथा इससे हम कभी भी मुक्त नहीं हो सकता है। अत: मनुष्य क्षण भर भी कर्म से विरक्त नहीं रह सकता है। उसे हर पल प्रकृति के अधीन होकर कर्म करना पड़ता है। प्रत्येक युग में जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को मन से अपने वश में करते हुए बिना किसी महत्वकांक्षा के धर्मरत होकर निष्काम कर्म करता है वास्तविक रूप में वही सब मनुष्यों में श्रेष्ठ है। अत: भगवान के कथनानुसार समस्त जीव को बिना रुके कर्म करते रहना चाहिए क्योंकि खाली बैठने से लाख गुना अच्छा है कि हम कर्म करते रहें जिससे हमारे जीवन का ध्येय पूर्ण हो सके क्योंकि खाली व्यक्ति का दिमाग शैतान का घर होता है जो कुछ न कुछ अधर्म तो करेगा ही इससे अच्छा है अपने कर्म में रत रहना। कर्म के प्रभाव से हम सब अपने इष्ट को प्राप्त करते हुए सब सुखों का उपभोग करेंगे। हमें अपने कर्म के द्वारा अपने इष्ट की कीर्ति में उन्नत करते रहना होगा जिससे कि हमारे इष्ट हमारा उन्नत करते रहें। इस प्रकार हम सभी अपने कर्म द्वारा परम कल्याण को प्राप्त कर सकते हैं। यदि हम बिना कर्म किये ही सुखों का उपभोग करते है तो यह एक प्रकार की चोरी ही है जो हमारे अंदर निकृष्ठता को जन्म देता है।

मनुष्य का कर्म कुछ ऐसा होना चाहिए जिससे समस्त संसार का उत्थान हो सके। भगवान कृष्ण के अनुसार मनुष्यों को यज्ञ से बचे हुए अन्न का ही उपभोग करना चाहिए क्योंकि इस अन्न में समस्त जीवों के कल्याण का भाव निहित होता है जो पाप मुक्त होता है। परन्तु जो मनुष्य अपनी इन्द्रिय सुख के लिए भोजन करते है वे लोग पाप का भोजन करते है जिसमें केवल उनके ही

इन्द्रियों को सुख प्राप्त होता है जो किसी भी रूप में सही या नीति संगत नहीं है। इस संसार में समस्त जीव का होना अन्न से ही है, अन्न की उत्पत्ति वर्षा से है, वर्षा की उत्पत्ति यज्ञ से होती है तथा यज्ञ की उत्पत्ति नियत शास्त्र सम्मत कर्म करने से होती है। इस भू लोक में समस्त वस्तुएं भगवान के द्वारा ही उत्पन्न की हुई हैं जो सिर्फ और सिर्फ हमारे उत्थान के लिए है उसको केवल अपने तक ही सीमित रखना जघन्य अपराध की श्रेणी में आता है।

कर्म का निर्धारण भगवान के द्वारा हुआ है जिसका प्रमाण हमे हमारे वेद में मिलता है जो अपने आप में ही अविनाशी है जिसकी उत्पत्ति भगवान के द्वारा हुई है और उसी की व्याख्या भगवान कृष्ण ने अपने उपदेश में किया है जो हमारे सामने भगवद्गीता के रूप में विद्यमान है। अतः हम जो भी कर्म करते है उसमें परमात्मा का सदा निवास है। भगवान कृष्ण के अनुसार जो मनुष्य जीवन में वेदों द्वारा बताए गए नियत कर्मों को नहीं करता वह निश्चित रूप से पाप युक्त जीवन व्यतीत करता है तथा झूठ में ही अपनी इन्द्रियों के लिए जीता है। अतः हमें नियत कर्म करना चाहिए जिसमें सबका हित निहित हो। भगवान कहते है कि जो मनुष्य अपने आत्मा में ही आनन्द प्राप्त कर लेता है हर प्रकार से यदि उसकी आत्मा संतुष्ट है तो उसके लिए कोई नियत कर्तव्य शेष नहीं रह जाता है। मनुष्य का परम उद्देश्य स्वयं को जानने में ही निहित है। उस महापुरुष के लिये इस संसार में न तो कर्तव्य-कर्म करने की आवश्यकता रह जाती है और न ही कर्म को न करने का कोई कारण ही रहता है तथा उसे समस्त प्राणियों में से किसी पर निर्भर रहने की आवश्यकता नही रहती है।

यदि मनुष्य वास्तविक रूप में चाहता है कि वह भौतिकवादी जीवन से दूर रहे तो उसे आशा करना छोड़ना पड़ेगा। यदि कोई व्यक्ति कर्म में आसक्त नहीं होता तभी उस कर्म की सार्थकता है। अतः हमारे मन में कर्मफल के प्रति लिप्तता का भाव न हो और हमें कर्तव्य को समझ कर सतत् कर्म करना चाहिए क्योंकि इसी मार्ग से ही हम एक दिन परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं। महाराजा जनक जी इस भाव के उत्कृष्ठ उदहारण हैं जो एक सामान्य मनुष्य हो कर अपने कर्तव्य कर्म के पथ पर चल कर परम सिद्धि को प्राप्त किया। मनुष्य यदि अपने कर्म से समस्त सांसारिक जनों के हित के लिए विचार करे तो मनुष्य द्वारा किया गया कर्म उचित और श्रेष्ठ है। प्रारम्भ से ही अपने से श्रेष्ठ महापुरुषों का मनुष्य अक्षरसः अनुकरण करता है। अतः महापुरुषों को चाहिए कि वे अपने आचरण के द्वारा आदर्श स्थापित करें जिससे सामान्य मानव उसका अनुकरण कर परमात्मा को प्राप्त कर सके। इस संसार के पालन कर्ता परमात्मा है तथा जिनकी मर्जी के बिना हम यहाँ एक क्षण भी नहीं व्यतीत कर सकते हैं। अतः इतनी बड़ी शक्ति के सामने हमारा कोई अस्तित्व नहीं है फिर भी वे हमारे जीवन के लिए कर्मरत है जिसकी वजह से हम जीवित हैं।

भगवान श्री कृष्ण जी कहते है कि आज के समाज में बहुत सारे लोग ऐसे है जो वास्तविक रूप में बिना कर्म किये केवल प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग करते है। इसे हम गाँव की एक

कहावत से और ज्यादा स्पष्ट कर सकते है- न हर चले न चले कुदारी अमृत भोजन देत मुरारी। भगवान स्वयं भी अपने कर्मो का निर्वहन करते हैं तथा समस्त जीव उसका अनुसरण करते हुए अपने समस्त कार्यो को करता हुआ अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इसलिए भगवान कहते है कि यही एक कारण है कि मैं हर कर्तव्य को अपना समझ कर कर्म में रत रहता हूँ जिससे मनुष्य पथ भ्रष्ट न हो कर सृष्टि के उत्थान के लिए कर्म रत रहे। यदि मैं (भगवान) अपना कर्म ना करू तो इस सम्पूर्ण सृष्टि का विनाश हो जायेगा जिसके के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार होऊंगा। मनुष्य जन्म से लेकर अपनी मृत्यु तक के काल खण्ड में सदैव कर्म करता रहता है उनमें से बहुत से कर्म प्रकृति सम्मत होते है और कुछ नहीं भी। कुछ लोगो को ये लगता है कि यदि वे न होते हो वह कार्य नहीं होता अर्थात उनको अपने कर्म का अहंकार हो जाता है परिणामस्वरुप व्यक्ति मोहग्रस्त हो जाता है और अपने को ही कर्म का कर्ता मान बैठता है। भगवान कृष्ण ने मनुष्यों के लिए कहा है कि व्यक्ति को सब प्रकार के कर्मो को मुझे अर्पित करके, आत्म ज्ञान से ओतप्रोत होकर आशा, ममता और सन्ताप रूपी विचलित करने वाले इन सभी का ही त्याग कर के अपने कर्म युद्ध में आगे बढ़ते रहने का उपदेश दिया है। परन्तु जो मनुष्य भगवान के आदेशों का पालन नहीं करता उसे सब प्रकार से नष्ट-भ्रष्ट समझा जाता है ऐसा भगवान कृष्ण जी का कहना हैं। भगवान ने दूसरों के कर्तव्य (धर्म) को भली-भाँति अनुसरण (नकल) करने की अपेक्षा अपने कर्तव्य-पालन (स्वधर्म) को दोष-पूर्ण ढंग से करना भी अधिक कल्याणकारी बताया है। दूसरे के कर्तव्य का अनुसरण करने से भय उत्पन्न होता है, अपने कर्तव्य का पालन करते हुए मरना भी श्रेयस्कर है।

मनुष्य अपने जीवन काल में विभिन्न परिस्थितियों से हो कर गुजरता है जिनका प्रभाव हमारे जीवन में बहुत गूढ़ होता है तथा मनुष्य इन परिस्तिथियों से अपना ज्ञान वर्धन करता है। ज्ञान वर्धन का अर्थ है नवीन विचारों की खोज करना अर्थात् अपने ज्ञान की पूंजी के बल पर मनुष्य अपने कर्म, मन एवं आत्मा आदि के उत्थान हेतु अनवरत प्रयासरत हैं। हम यही जानते हैं कि न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का आविष्कार किया। इसका अर्थ ये तो नहीं की गुरुत्वाकर्षण न्यूटन की ही प्रतीक्षा में बैठा किसी कोने में प्रतीक्षा कर रह था। ऐसा बिल्कुल भी नहीं हैं क्योंकि इसके ज्ञान की खोज तो अनवरत उनके मन के अंदर हो रहा था जो एक निश्चित समय पर उन्हें इसकी अनुभूति करायी और परिणाम हमारे सामने है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस भौतिकवादी संसार में जो कुछ भी पाया है या लाभान्वित हुआ है उसका केवल एक मात्र माध्यम हमारा अपना मन है क्योंकि मन से बड़ा पुस्तकालय इस संसार में कोई है ही नहीं। अत: गुरुत्वाकर्षण के नियम का आविष्कार सेब के गिरने के कारण हुआ जिसने न्यूटन के मन को उद्दीपित कर दिया तथा उन्होंने मन में विद्यमान ज्ञान को एक बार पुन: श्रृंखलाबद्ध कर गुरुत्वाकर्षण के नियम की खोज की। जो न तो सेब में था और न ही पृथ्वी के केंद्र में था वो था तो केवल और केवल न्यूटन के मस्तिष्क में था। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य का मस्तिष्क सभी ज्ञानों का भण्डार हैं जिसमे व्यावहारिक ज्ञान के साथ साथ पारमार्थिक ज्ञान का भी समावेश होता है। जो हमेशा प्रकाशित न होकर सुषुप्त अवस्था में रहता

है और धीरे-धीरे प्रदीप्तमान होता है। जिसका अर्थ है कि ज्ञान हो रहा है। अत: मन उस चमकीले पत्थर के समान है जहाँ उसके टुकड़े में अग्नि का वास होता है ठीक वैसे ही मन में ज्ञान का वास होता है।

यदि हम शांत हो कर अपना अवलोकन करे तो हमें ज्ञात होगा कि हमारा हँसना-रोना, सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, शाप, प्रार्थना एवं बुराई ये सभी हमारे मन के ऊपर बाह्य जगत् के घात-प्रतिघात के ही परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुए हैं तथा हमारा चरित्र भी इसी का फल है। अत: हमारे जीवन के सभी घात-प्रतिघात का समन्वय ही कर्म है जिसका प्रभाव हमारे स्वयं के जीवन तथा इस संसार में दिखता हैं।

कई कार्य ऐसे हैं जो वास्तविक रूप में बहुत छोटे होते हैं परन्तु उनका प्रभाव बहुत बड़ा होता है। हमारे द्वारा किये गए बड़े कार्य मूलत: इन्ही छोटे छोटे कार्यो का ही सम्मिलित परिणाम होता हैं। इसको हम एक उदाहरण के माध्यम से समझ सकते हैं, यदि हम समुद्र के किनारे खड़े हों और लहरों के टकराने की आवाज सुने तो ऐसा प्रतीत होता है कि एक बहुत भयंकर आवाज हो रही है किन्तु हमें ज्ञात है कि बड़ी लहर अनगिनत छोटी-छोटी लहरों का ही सम्मिलित स्वरूप है। हर एक छोटी लहर की अपनी खुद की एक आवाज होती है जो हमे सुनाई नहीं देती हैं परन्तु जब ये छोटी-छोटी आवाजें आपस में मिल जाती हैं तो ये एक बड़ी आवाज का निर्माण करती हैं जो हमे सुनाई देती है। ठीक इसी प्रकार हमारा हृदय भी अपनी प्रत्येक धड़कन के साथ कार्यो को कर रहा होता है जिसका हम अनुभव करते हैं तथा वे इन्द्रियग्राह्य होती है जो अनेक छोटे-छोटे कार्यो का ही समष्टि स्वरूप है।

संसार में हम जो भी क्रियाकलाप देखते हैं, इस भौतिकवादी समाज में या हमारे इर्द-गिर्द जो कुछ भी हो रहा है वास्तविक रूप में ये सब केवल हमारे मन का ही किया धरा है। इस दुनिया में तकनीक के विभिन्न साधनों का आविष्कार भी मनुष्य की इच्छा शक्ति का ही एक प्रतीकात्मक स्वरूप मात्र है जिसका विकास मनुष्य के मन के द्वारा हुआ है। मनुष्य की इच्छाशक्ति उसके चरित्र से उत्पन्न होती है तथा चरित्र का विकास व्यक्ति के कर्मो द्वारा होता हैं। अत: हमारा कर्म जैसा होगा ठीक वैसे ही हमारी इच्छा शक्ति का भी विकास होगा।

भगवद्गीता के अनुसार, कर्मयोग का अर्थ है कुशलता से अर्थात् वैज्ञानिक प्रणाली से कर्म करना। हमारे द्वारा किये गए समस्त कर्मो का उदेद्श्य मन के भीतर विद्यमान शक्तियों को पहचान कर उनके अनुकूल क्रियान्वयन करना जिससे सम्पूर्ण समाज के साथ-साथ पूरे जगत का उद्धार हो सके। इस भू लोक में मनुष्य नाना प्रकार के हेतु लेकर कार्य करता है, क्योंकि बिना हेतु के कोई कार्य नहीं होता है अर्थात् कुछ लोग यश के लिए कार्य करते है, कुछ लोग पैसे के लिये अपना जीवन लगाते है, कई लोग अधिकार को प्राप्त करने के लिए करते है, कुछ लोग स्वर्ग की लालसा से कार्य करते हैं। यूँ कहे तो हर कार्य के पीछे मनुष्य का उसका स्वयं का स्वार्थ होता है जिसके

लिए वो अपना सम्पूर्ण जीवन उस एक इच्छा की प्राप्ति के लिए न्यौछावर कर देता है। इन सब के अतिरिक्त भी कुछ लोग हमारे समाज में ऐसे हैं जो केवल दूसरों को खुशी प्रदान करने के लिए कार्य करते हैं। जिनका नाम यश अथवा स्वर्ग से कोई वास्ता नहीं होता। वे केवल मानवता के लिए ही अपना सम्पूर्ण जीवन लगा देते हैं जिससे कि सम्पूर्ण मानव समाज का उत्थान हो सके।

अत: यदि कोई मनुष्य नि:स्वार्थ भाव से अपना कर्म करे तो उसका कर्म अधिक फलदायी होता है क्योंकि नि:स्वार्थता मनुष्य की महान अभिव्यक्ति है। यदि कोई मनुष्य नि:स्वार्थता से कोई कार्य करे तो वह एक महापुरुष हो सकता है। इस अवस्था को प्राप्त करना अत्यंत कठिन है तथा इसके लिए बहुत संयम की जरूरत होती हैं। नि:स्वार्थ कर्म को कुछ ऐसे समझ सकते है जैसे कि एक तोप का गोला हवा में बिना किसी अवरोध के काफी दूर तक जाता है तथा वही एक दूसरा गोला थोड़ी दूर जाकर एक दीवार से टकरा जाता है जिस कारण वो अधिक दूर तक नहीं जा पाता है परन्तु दीवार से टकराने पर एक बहुत बड़ी शक्ति को निकालता है जो आग के समान होता है ठीक इसी प्रकार मन की समस्त बहिर्मुखी गतियां किसी स्वार्थपूर्ण उदेद्श्य की ओर दौड़ती रहने से छिन्न भिन्न हो जाती हैं जो किसी भी प्रकार से हमारी शक्तियों के विकास के लिए उपयोगी नहीं होती है। यदि इसका संयम किया जाये तो अपने अंदर असीमित शक्ति को अर्जित किया जा सकता हैं। स्वार्थ पूर्ण कर्म हमें ऐसे पशु के समान बना देता है जो केवल अपने एक दो कदम आगे ही देख सकता है अर्थात् मनुष्य अपने भविष्य से कोसों दूर हो जाता है और अपने भविष्य से अनभिज्ञ रहता है। जो मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है – शक्तिहीनता। भगवद्गीता के अनुसार हमारा अधिकार केवल कर्म करने में है उसके फल में हमारा कोई अधिकार नहीं है अत: हमे केवल अपने कर्म के बारे में ही सोचना चाहिए और उसे ठीक करने की कोशिश करनी चाहिए क्योंकि यदि हमें एक श्रेष्ठ और भला कार्य करना है तो उसके फल के बारे सोचने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। बल्कि हमें सतत कर्मशीलता को धारण कर सदैव कर्म में रत रहने की जरूरत है।

दूसरों के प्रति हमारे कर्तव्य का अर्थ हैं दूसरों की सहायता करना, संसार का भला करना। परन्तु हम संसार का भला क्यों करे ऐसा हमारे मन में प्रश्न हमेशा उठता ही रहता है। वास्तविक रूप में अगर हम देखें तो हम अपना ही उपकार कर रहे होते दूसरों का उपकार करके। परन्तु अज्ञानतावश हम ये सोचते हैं कि हम ने उसका भला किया है आदि आदि। वास्तविकता तो कुछ और ही है, हम होते ही कौन है किसी का उपकार करने वाले। हम भगवान तो है नहीं फिर हमारे पास इतनी शक्ति कहां से आ गयी कि हम संसार में सबका उपकार कर रहे है परन्तु ध्यान पूर्वक देखा जाये तो इस संसार को हमारी जरूरत ही नहीं है। यह संसार भगवान ने बनाया है जिसे किसी की भी आवश्यकता नहीं है। ये संसार हमारे यहाँ होने से पहले जैसे था ठीक वैसे ही आगे भी चलता रहेगा और हम इस संसार के द्वारा अपनी सहायता करते हैं न कि किसी दूसरे की। अनासक्ति से किया गया कार्य कभी दु:ख अथवा अशांति नहीं पैदा करता है। इस संसार में सदैव दु:ख था

और रहेगा चाहे हम उस दुःख के लिए कुछ करें या न करें उससे इस संसार का कुछ बनने या बिगड़ने वाला नहीं है। इस वक्तव्य को हम एक कहानी के माध्यम से समझ सकते है जो स्वामी विवेकानन्द जी अपने व्याख्यान में प्रायः सुनाया करते थे-

एक गरीब आदमी को कुछ रुपये की जरूरत पड़ी। उसे कही से यह मालूम हो गया कि यदि वह किसी भूत को अपने वश में कर ले, तो वह उससे जो चाहे मँगवा सकता हैं। सो इसके निदान हेतु उसे एक भूत ढूँढ़ने की सूझी। वह किसी ऐसे आदमी को ढूँढ़ने लगा, जिससे उसे एक भूत मिल जाय। ढूँढ़ते ढूँढ़ते उसे एक साधु मिले। इन साधु के पास बड़ी शक्तियाँ थीं और उसने उनसे सहायता की याचना की। साधु ने उससे पूछा, ''तुम भूत का क्या करोगे ?'' उसने उत्तर दिया, ''महाराज, मै भूत इसलिए चाहता हूँ कि वह मेरा काम कर दे। कृपा कर मुझे उसको प्राप्त करने का ढंग बता दीजिये। मुझे उसकी बड़ी जरूरत है।' साधु बोले, देखो तुम इस झमेले में मत पड़ो, अपने घर लौट जाओ। 'दूसरे दिन वह आदमी साधु के पास फिर गया और बहुत रोने लगा। उसने कहा, ''महाराज, मुझे एक भूत दे ही दीजिये न। मुझे बड़ी आवश्यकता है।'' अंत में साधु कुछ चिढ़ से गये और उन्होंने कहा, ''अच्छा, लो, यह मन्त्र लो इसका जप करने से एक भूत प्रकट होगा और फिर उससे तुम जो काम कहोगे, वही करेगा; परन्तु देखो, होशियार रहना। ये बड़े भयंकर प्राणी होते हैं। उसे निरंतर काम में लगाए रखना। यदि कभी वह खाली रहा, तो तुम्हारी जान ले लेगा। ''तब उस मनुष्य ने कहा,'' यह कौन सी कठिन बात है? मैं तो उसे इतना काम दे दूंगा कि उसके जीवन भर खत्म ही न हो। ''इसके बाद वह आदमी एक वन में चला गया और मन्त्र का जाप करने लगा। कुछ देर तक जाप करने के बाद उसके सामने विकराल दाँतों वाला एक भयंकर भूत प्रकट हुआ। भूत ने कहा,'' देखो मैं भूत हूँ। तुम्हारे मंत्र ने मुझे जीत लिया है। परन्तु देखो तुम्हें मुझको निरन्तर काम में लगाए रहना होगा क्योंकि ज्योंही मुझे थोड़ा सा भी अवकाश मिला कि मै तुम्हारी जान ले लूँगा। ''आदमी बोला,'' ठीक है जाओ, मेरे लिए एक महल तैयार करो। ''भूत ने जवाब दिया, लो हो गया, महल तैयार है।'' आदमी ने कहा, ''जाओं मेरे लिए धन ले के आओ। '' भूत बोला, ''लो, धन भी तैयार है।'' फिर आदमी ने कहा, ''जंगल काट डालो और यहाँ एक शहर बसा दो।'' भूत बोला, 'लो, यह भी हो गया। अब और क्या करूँ बतलाओ? अब तो वह आदमी बड़ा घबराने लगा; उसने मन में सोचा, ''अब तो मेरे पास कोई काम नहीं है, जो मैं इसे करने को कहूं। यह तो प्रत्येक काम क्षण भर में ही कर डालता है। ''भूत इधर गरजकर बोला,'' देखो, मुझे जल्दी कुछ काम करने को दो, नहीं तो मैं तुम्हे खा जाऊँगा। ''बेचारा आदमी अब कोई काम सोच ही न सका और मारे भय के थर-थर काँपने लगा। अब तो वह बेतहाशा भागा और भागते भागते उन्हीं साधु के पास जा पहुँचा और वहाँ जाकर गिड़गिड़ाने लगा।'' महाराज, रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, मेरी जान बचाइये। ''साधु ने पूछा, कहो, क्या हुआ,'' मनुष्य ने उत्तर दिया, ''अब मैं क्या करूँ? अब तो मेरे पास उस भूत को देने के लिए कोई भी काम शेष नहीं है। मैं उससे जो कुछ भी करने को कहता हूँ, वह क्षण भर में कर डालता है, और जब उसके पास कोई काम नहीं रह

जाता, तो मुझे खा डालने की धमकी देता है।'' इतने में ही वहाँ भूत आ पहुँचा, और कहने लगा, ''अब तो मैं तुम्हें खा जाऊँगा।'' और सचमुच वह उसे खा जाता। आदमी मारे डर के काँपने लगा और उसने साधु से अपने प्राणों की भिक्षा मांगी। साधु ने कहा, ''अच्छा, मैं तुम्हे रास्ता बताता हूँ। देखो, उस कुत्ते की पूँछ टेढ़ी है, अपनी तलवार निकालो और यह पूँछ काटकर इस भूत को दे दो और उससे कहो कि इसे सीधा कर दे। आदमी ने झट से कुत्ते की पूँछ काट ली और उसे भूत को देकर कहा, लो, इसे सीधी करके मुझे दो।'' भूत ने पूँछ ले ली और उसे बड़ी सावधानी से सीधी की, पर ज्योंही उसको सीधी करके छोड़ दिया त्योंही वह फिर से टेढ़ी हो गयी। भूत ने दुबारा कोशिश की परन्तु जैसे ही उसने छोड़ दी, वैसे ही वह फिर टेढ़ी हो गयी। उसने तीन बार कोशिश किया, किन्तु वह फिर टेढ़ी की टेढ़ी हो गयी। इस प्रकार वह कई दिनों तक प्रयत्न करता रहा, यहाँ तक कि वह थक गया और बोला, ''मुझे ऐसा कष्ट तो अपने जीवन भर में कभी नहीं हुआ। मैं एक बड़ा पुराना भूत हूँ, ऐसी मुसीबत में मैं कभी नहीं पड़ा।'' अब तो वह भूत उस आदमी से कहने लगा, ''आओ भाई हम तुम समझौता कर लें। तुम मुझे छोड़ दो और मैंने अब तक जो कुछ तुम्हें दिया है, वह सब तुम अपने पास रखे रहो। मैं वादा करता हूँ, अब आगे तुम्हे किसी प्रकार का कष्ट न दूँगा।'' यह सुन कर वह आदमी बड़ा खुश हुआ और बड़ी प्रसन्नता पूर्वक उसने इस समझौते को स्वीकार कर लिया।

ठीक वैसे ही जैसा कुत्ते का पूँछ है जो लाख कोशिश करने के बाद भी टेढ़ा ही है संसार भी वैसे ही है। अपनी प्रारम्भिक अवस्था में आ ही जाता है। पर अब तक संसार का बहुत उन्नत हो गया होता पर लाख प्रयास के बाद भी यह संसार जस का तस पड़ा है। अत: मनुष्य को पहले यह जान लेना होगा कि आसक्तिरहित होकर उसे किस प्रकार कर्म करना चाहिए, तभी मनुष्य दुराग्रह और मतान्धता से ऊपर हो अपने कर्म कर सकता है तथा जब उसे यह ज्ञात हो जायेगा कि संसार भी कुत्ते की टेढ़ी दुम के ही समान है जो कभी सीधा नहीं हो सकता, तब मनुष्य बिना किसी दुर्भावना के अपने कर्तव्यों का निर्वहन करेगा जिसमें केवल उसका अनासक्त भाव होगा समाज के प्रति या संसारीजनों के प्रति। इस कहानी का मूल भाव है कि हमारा यह संसार अपने आप में ही पूर्ण है। पूर्णता का अर्थ है कि संसार के अंदर हर वो सामर्थ्य है जिससे संसार का प्रयोजन होता है बल्कि मनुष्य अपने कर्तव्यों के माध्यम से ईश्वर की उपासना करता हैं।

अत: कर्म योग, नि:स्वार्थ भाव और सत्कर्म के द्वारा स्वयं के मुक्ति के लिए किया गया कर्म होता है। कर्मयोग को किसी भी धर्म का विश्वास लेने की आवश्यकता नहीं है कर्म अपने आप में ही मनुष्य को पूर्णता प्रदान करता है। सत्कर्म पर चल कर मनुष्य जो भी कर्म करता है वो उसके लिए उन्नति का ही मार्ग प्रशस्त करता है। मनुष्य अपने जीवन भर तमाम तरह के कर्मों का निर्वहन करता है जो उसके स्वयं के लिए भी होता है और समाज के लिए भी होता है अर्थात् वह अपने कर्मो से अपने को कृतार्थ करता है। आत्मा का पाप मुक्त होना मनुष्य के कर्म पर निर्भर करता

है। कर्म से चरित्र का निर्माण होता है जो आत्मा के पवित्रता को निर्धारित करता है। हम संसार के सुख या दु:ख घटा या बढ़ा नहीं सकते हैं क्योंकि इन्ही के द्वारा संसार में शुभ और अशुभ शक्तियों का समन्वय बना रहता है। हम उसे यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ ही कर सकते हैं और कुछ नहीं, क्योंकि उसका होना संसार में निश्चित है और वह हमेशा वैसा ही रहेगा। हमारे कर्म से केवल क्षण मात्र के ही लिए वह विस्थापित हो सकता है और फिर कुछ समय बाद वैसा हो जायेगा। अत: हमें बिना किसी आसक्ति के अपने कर्म को भगवान को समर्पित करते हुए सदैव उसमें रत रहना चाहिए बिना किसी तर्क वितर्क के। यह संसार अपना सा दिखता भर है किन्तु कभी अपने साथ रहेगा नहीं क्योंकि हमको तो यहाँ से एक दिन अवश्य ही जाना है फिर कहाँ हमारा संसार और हमारे लोग। अत: हमारा केवल यही कर्म है कि हम अपना कर्म बिना किसी आसक्ति और स्वार्थ को साधे बिना करते रहें। इसको एक कविता से समझ सकते है जो स्वामी जी` अपने व्याख्यानों में अक्सर कहा करते थे -

थे बड़े-बड़े महाराजा,
जिनके बजे रात दिन बाजे।
वे भी बने काल के खाजे।
मिले नहीं बार बार शरीर।
उम्र क्यों गफलत में खोते हो।

कर्म का फल मनुष्य के सत्कर्मों पर आधारित होता है। मनुष्य को जीवन पथ पर सत्य का आचरण धारण करना चाहिए क्योंकि सत्य का भाव जितना प्रगाढ़ होगा उसके कर्मों की उत्कृष्ठता भी उतना ही होगा अर्थात् जिसने सत्य को स्थापित कर लिया है उसके मुखारवृन्द से प्रस्फुटित शब्द सत्य सिद्ध होंगे। प्राचीन भारत के ग्रंथों में अनेक उदाहरण प्राप्त होते है। ऋषि, मुनि, साधक के मुख से निकले शब्द निश्चितरूप से सत्य होते थे। आधुनिक भारत के उच्च कोटि के संतों के जीवन में भी ऐसी अनेक घटनाएँ हुई है। काची कामकोटि के शंकराचार्य चंद्रशेखरेंद्र सरस्वती जी महाराज जिनको लोग श्रद्धा से परमाचार्य भी कहते थे 11 वर्ष की अवस्था मे इस पद के उत्तराधिकारी बन गए। सदा पैदल ही यात्रा करते, जो जिस भाषा मे वार्तालाप करे वे भी उसी में करते थे चाहे वे विदेशी ही क्यों न हो परंतु वो कभी विदेश नही गए थे। उनके जीवन की एक घटना है। पैदल हीं कहीं जा रहे थे। रास्ते मे एक ग्राम के ग्रामवासी उनसे आग्रह करके ग्राम में ले गये। एक मंदिर परिसर में वृक्ष के नीचे आसन पर विराजमान हुए। ग्राम के छोटे-छोटे बच्चे पंक्तिबद्ध होकर परमाचार्य को प्रणाम करते और आशीर्वाद प्रसाद लेकर आगे बढ़ जाते। परमाचार्य किसी बच्चे से संक्षिप्त वार्ता भी कर लेते। इसी क्रम में एक बच्चा आया। परमाचार्य ने उसको प्रसाद दिया और कहा बोलो बच्चा श्रीराम श्रीराम। लेकिन बच्चे ने कुछ नही बोला। समीप खड़े ग्रामवासियों ने बताया कि यह जन्म से ही गूंगा बहरा है। अत: बोल नही सकता। परमचार्य जी ने फिर कहा बोलो बच्चा श्रीराम श्रीराम और उस जन्मजात गूंगे बहरे बच्चे ने बोला श्रीराम श्रीराम।

जिसने भी मनसा वाचा कर्मणा सत्य को धारण किया है वैसी वाणी सिद्ध होती है और सत्य होती है।

उपसंहार:

संसार से हम क्या ले लेंगे? धन, सुख, या फिर वैभव वास्तविकता तो ये है कि हम ले कुछ नहीं पायेंगे। हमारे साथ सिर्फ और सिर्फ धोखा ही होगा। इस संसार में पूर्ण सुख मिल ही नहीं सकता है क्योंकि हमारा यह शरीर जो हमे जान से भी प्यारा है वो नाशवान है। केवल हमारी आत्मा ही अविनाशी है जो अनंन्त काल तक थी और अनंन्त काल तक रहेगी शेष सब कुछ नाशवान है। मनुष्य का एकमात्र ध्येय केवल कर्म ही है जिसका शास्त्रविहित होना अनिवार्य हैं। ऐसे कर्म जो सभी जीवों को लाभ पहुँचाए वही कर्म हमारे द्वारा किया जाना चाहिए यदि ऐसा नहीं करते हैं तो हमारे जीवन की सार्थकता नहीं होगी। नि:स्वार्थ भाव से किये गये कर्म हमें प्रत्येक क्षण उच्च कीर्तिमान पर हमें स्थापित कर हमारा कल्याण करता है। क्योंकि नि:स्वार्थ भाव से किया गया कर्म भी एक प्रकार से भगवान की ही उपासना का एक माध्यम हैं। जो हमे सदैव उन्नतशील बनाये रखता हैं। स्वामी विवेकानन्द जी नर की सेवा को ही नारायण की सेवा कहते हैं। अत: जो नारायण की सेवा बिना किसी स्वार्थ के करेगा उस मनुष्य पर सदैव प्रभु की छाया बनी रहती है। स्वामी जी कहते है कि राजसिक कर्म से सात्विक कर्म श्रेष्ठ है सात्विक कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ हैं, परन्तु वह भी सात्विक ज्ञान हो तो। नीतिसंगत कर्म जो सबके कल्याण का मार्ग है वास्तविक रूप में उसका मूल आधार सात्विक ज्ञान है। यदि मनुष्य अपने कर्तव्य को भगवान और ऋषियों की आज्ञा मानकर उन्हें समर्पित करके अपना कर्म करे तो उसका लोक परलोक अपने आप ही सिद्ध हो जाता है किन्तु यदि मनुष्य मान, बड़ाई, स्वार्थ आदि को महत्व दे तो उसका लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाता है।

॥ हरि: ॐ तत् सत् ॥ ■

सन्दर्भ:

1. Complete work of Swami Vivekananada by Ramkrishna Mission.
2. श्री रामकृष्ण वचनामृत (खण्ड 1 एवं 2), रामकृष्ण मिशन द्वारा प्रकाशित ।
3. भगवद्गीता, गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित ।
4. कर्म योग, स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा रचित ।

भारतीय समाज और मीडिया : एक समाज शास्त्रीय अध्ययन

डॉ. हनुमान प्रसाद उपाध्याय*

सार-संक्षेप : मीडिया यानि मीडियम या माध्यम। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है। मीडिया की भूमिका संवाद वहन की होती है, वह समाज के विभिन्न वर्गो, सत्ता केन्द्रों, व्यक्तियों और संस्थाओं के बीच सेतु का कार्य करता है। आधुनिक युग में मीडिया का सामान्य अर्थ समाचार-पत्र, पत्रिकाओं, टेलीविजन, रेडियों, इंटरनेट आदि से लिया जाता है किसी भी देश व समाज की उन्नति व प्रगति में मीडिया का बहुत योगदान होता है। आज हमारी सरकार अपनी जनता को जागरूक करने एवं उसके लिए लागू की गई किसी भी नई योजनाओं की जानकारी मीडिया के द्वारा ही आम जनमानस तक पहुँचाती है।

बीज शब्द : मीडिया, जनसंचार, समाचार-पत्र, पत्रिकाएं, सूचना प्रौद्योगिकी, वेबसाइट, लोकतंत्र आदि।

उद्देश्य:- भारतीय समाज में मीडिया का क्या प्रभाव रहा है? समाज में मीडिया का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से क्या योगदान दे रहा है? मीडिया का यह योगदान सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ने समाज को किस प्रकार प्रभावित किया है, आदि का अध्ययन करना ही मेरे इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य है।

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। लोकतांत्रिक देश में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के क्रिया कलापों पर नजर रखने के लिए मीडिया को **''चौथे स्तंभ''** के रूप में जाना जाता है। 18वीं शताब्दी के बाद से खासकर अमेरिकी स्वतंत्रता आंदोलन और फ्रांसीसी क्रांति के समय से जनता तक पहुंचने और उन्हें जागरुक कर सक्षम बनाने में मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मीडिया सकारात्मक भूमिका अदा करे तो किसी भी व्यक्ति, संस्था, समूह और देश को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है। मीडिया एक समग्र तंत्र है जिसमें **पत्रकार, प्रिंटिंग प्रेस, पत्रकार, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, रेडियो, सिनेमाहाल, इंटरनेट** आदि सूचना के माध्यम सम्मिलित होते हैं। यदि समाज में मीडिया की भूमिका की बात

*अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

करें तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि समाज में मीडिया प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से क्या योगदान दे रहा है? संबंधों का परस्पर ताना-बाना जिसमें विवेकवान और विचारशील मनुष्यों वाले समुदायों का अस्तित्व होता है।[1]

भारतीय समाज हो या अंतरराष्ट्रीय मामलों, जिसमें मीडिया निर्णय के प्रभाव को देखा जाए तो इसका प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रहा है। प्रभाव पर धयान देने से स्पष्ट होता है कि मीडिया का समाज में शक्ति महत्व एवं उपयोगिता में वृद्धि से इसके सकारात्मक प्रभावों में काफी शक्ति महत्ता एवं उपयोगिता में वृद्धि से इसके सकारात्मक प्रभाव में काफी वृद्धि हुई है, लेकिन साथ-साथ इसके नकारात्मक प्रभाव भी उभर कर सामने आए हैं। मीडिया ने जहां जनता को निर्भरता पूर्वक जागरूक करने, भ्रष्टाचार को उजागर करने, सड़क पर तार्किक नियंत्रण एवं जनहित कार्यों में अभिवृद्धि में योगदान दिया है, वहीं लालच, भय, द्वेष, स्पर्धा, दुर्भावना एवं सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक कुचक्र में फंसकर अपनी भूमिका को कलंकित भी किया है। व्यक्तिगत या संस्थागत निहित स्वार्थों के लिए यलोजर्नलिज्म अपनाना, ब्लैकमेल द्वारा दूसरों का शोषण करना, चटपटी खबरों को तवज्जो देना और खबरों को तोड़ मरोड़ कर पेश करना, दंगे भड़काने वाली खबरें प्रकाशित करना, घटनाओं और कथनों द्वारा द्विअर्थिक रूप प्रदान करना, भय या लालच में सत्तारुढ दल की चापलूसी करना, अनावश्यक रूप से किसी की प्रशंसा और महिमा मंडन करना, दूसरे की आलोचना करना जैसे अनेक अनुचित कार्य आजकल मीडिया द्वारा किए जा रहे हैं।

दुर्घटना एवं संवेदनशील मुद्दों को बढ़ा चढ़ाकर पेश करना, ईमानदारी, नैतिकता, कर्तव्यनिष्ठा और साहस से सम्बंधित खबरों को नजरअंदाज करना, आज कल मीडिया का एक सामान्य लक्षण हो गया है। मीडिया के इसी व्यवहार से समाज में अव्यवस्था और असंतुलन की स्थिति पैदा होती है। प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया एवं सिनेमा के माध्यम से पश्चिमी संस्कृति का आगमन और प्रसार हो रहा है, जिससे समाज में अनावश्यक फैशन, अश्लीलता, चोरी, गुंडागर्दी जैसी घटनाओं में वृद्धि हुई है। इस कारण युवा पीढ़ी भी पतन के गर्त में धंसती जा रही है। इंटरनेट के माध्यम से असामाजिक क्रिया कलाप युवाओं तक पहुंच रहे हैं, जिससे उनमें सामाजिक मूल्यों, नैतिकता, संस्कृति और सभ्यता में लगातार गिरावट हो रही है। मीडिया की खबरों और घटनाओं का प्रस्तुतीकरण ऐसा होना चाहिए जो जनता एवं समाज का मार्गदर्शन कर सके, सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को नया आयाम दिया है।[2] आज प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी डर के सोशल मीडिया के माध्यम से अपने विचार रख सकता है और उसे हजारों लोगों तक पहुंचा सकता है, परंतु सोशल मीडिया के दुरुपयोग ने इसे एक खतरनाक उपकरण के रूप में भी व्यवस्थित कर दिया है जिसके कारण इनके विनियमन की आवश्यकता लगातार महसूस की जा रही है।[3] आवश्यकता यह है कि निजता के अधिकार का उल्लंघन किए बिना सोशल मीडिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए सभी बच्चों के साथ विचार-विमर्श कर नए विकल्पों की खोज की जाए ताकि भविष्य में इसके संभावित दुष्प्रभावों से बचा जा सके। यह व्यवस्था भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 एवं अनु0 21 में दिया गया है।[4]

मीडिया के द्वारा दी गई सूचना दो धारी तलवार की तरह होती है, एक ओर उसका उपयोग भ्रम और कहरता फैलाने में किया जा सकता है तो दूसरी ओर रचनात्मक कार्यों में भी किया जा सकता है। सूचना क्रांति के इस आधुनिक दौर में सोशल मीडिया की भूमिका को लेकर हमेशा सवाल उठते रहते हैं। आर्थिक, राजनीतिक, और सामाजिक प्रगति में सूचना क्रांति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, किंतु सूचना क्रांति की ही उपज सोशल मीडिया को लेकर उठने वाले सवाल भी महत्वपूर्ण है। सवाल यह है कि क्या सोशल मीडिया हमारे समाज में ध्रुवीकरण की स्थिति उत्पन्न कर रहा है? समाज की प्रगति में इनकी क्या भूमिका होनी चाहिए? आज हम एक ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जहां सूचना के न केवल उपभोक्ता है बल्कि उत्पादक भी है यही अंर्तद्वन्दता इसके नियंत्रण को दूर कर देता है। प्रतिदिन कई विलियन लोग फेसबुक पर लॉगइन करते हैं, हर सेकेंड ट्विटर पर ट्वीट किए जाते हैं और इंस्टाग्राम पर कई तस्वीर भी पोस्ट की जाती है।

सूचना प्रौद्योगिकी, आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण एवं संचार सुविधाओं के माध्यम से सोशल मीडिया द्वारा ध्रुवीकरण की बात की जाए तो हम पाते हैं कि अतीत में इस सम्बन्ध में कई प्रयोग किए गए थे। 1950 के दशक में सामाजिक मनोवैज्ञानिक **सोलोमन असच** द्वारा मनोवैज्ञानिक प्रयोगों की एक पूरी श्रृंखला की शुरुआत गई थी। ये प्रयोग यह निर्धारित करने के लिए किए गए थे कि बहुमत की राय के आगे किसी व्यक्ति की राय किस प्रकार प्रभावित होती है, इसका यह निष्कर्ष सामने आया कि कोई व्यक्ति सिर्फ बहुमत की राय के साथ शामिल होने के कारण गलत जवाब देने के लिए तैयार था, कुछ लोगों ने उसका अपना उपहास उड़ने देने के कारण गलत जवाब भी दिए। यद्यपि 1950 ई. के दशक से संचार का यह स्वरूप विकसित होकर नए रूप में प्रकट हुआ है, लेकिन इसके बावजूद मानव का स्वभाव इसके साथ सामंजस्य बैठाने में सफल नहीं हो पाया है। कुछ हद तक यह धारणा ऑनलाइन फेक न्यूज के प्रभाव को भी इंगित करती है, जिसने समाज में ध्रुवीकरण के विस्तार में योगदान दिया है। सोशल मीडिया की साइट्स, उत्प्रेरक की भूमिका निभाती है। उदाहरण स्वरूप ट्वीटर नियमित रूप से उन लोगों के अनुसरण हेतु प्रेरित करता है जो हमारे समान दृष्टिकोण रखते हैं वे सभी प्रक्रियाएं जो दुनिया भर के सामाजिक संबंधों को गहरा और घनिष्ठ कर रही है समाजशास्त्रीय वैश्वीकरण है।[5]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सोशल मीडिया के प्रभाव के कारण लोगों के सोचने का दायरा संकुचित होता जा रहा है, जो न केवल मतदान के समय व्यवहार में परिवर्तन लाता है बल्कि हर रोज व्यक्तिगत वार्ताओं में भी इसका भारी प्रभाव पड़ रहा है। अगर सोशल मीडिया के मूल अर्थ की बात की जाए तो कंप्यूटर, टैबलेट या मोबाइल के माध्यम से किसी भी मानव संचार या इंटरनेट पर जानकारी साझा करना सोशल मीडिया का काम है।, इस प्रक्रिया में कई वेबसाइट एवं एप का योगदान होता है। सोशल मीडिया वर्तमान समय में संचार के सबसे बड़े साधन के रूप में उभर

कर आया है और इसकी लोकप्रियता में भी वृद्धि हो रही है। सोशल मीडिया द्वारा विचारों, को सामग्रियों को एवं सूचना और समाचार को तीव्र गति से लोगों के बीच साझा किया जा सकता है। सोशल मीडिया को एक तरफ जहां लोग वरदान मानते हैं तो दूसरे तरफ इसे एक अभिशाप के रूप में भी देखते हैं।

सोशल मीडिया के सकारात्मक प्रभाव की बात जाए तो यह समाज के सामाजिक विकास में मदद करता है उसके द्वारा प्रदत सोशल मीडिया मार्केटिंग जैसे उपकरण द्वारा लाखो प्रभावित ग्राहकों तक पहचान स्थापित की जा सकती और समाचार को प्रेषित किया जा सकता है। सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता उत्पन्न करने के सन्दर्भ में सोशल मीडिया को एक बेहतरीन उपकरण माना जाता है। इसके द्वारा समान विचारधारा वाले लोगों के साथ संपर्क स्थापित किया जा सकता है। विश्व के सुदूरतम कोने तक अपनी बातो को कम समय में तीव्रगति से अधिकतम लोगो तक पहुचाने के लिये सर्वश्रेष्ठ साधन भी बन चुका है मीडिया के माध्यम से हम विश्व संस्कृति, विश्वसमाज, समाजशास्त्र की दृष्टि में विश्व के विभिन्न संस्कृतियों के बढ़ते तीव्र संपर्क और उससे होने वाले प्रभाव जो मूल्य, प्रतिमान, विचारधारा, भाषा, कला, संख्यात्मक वस्तुओं और सामाजिक संस्थाओं में देखा जा रहा है, उसे हम वैश्वीकारण कहते हैं, जो सोशल मीडिया शब्द का प्रभाव रहा है कोने-कोने तक अपनी बात को कम समय में तीव्र गति से अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए यह एक सर्वश्रेष्ठ साधन बन चुका है मीडिया के माध्यम से हम विश्व संस्कृति विश्व समाज से जुड़कर वैश्वीकरण को दर्शाते हैं।[6]

वर्तमान भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में सोशल मीडिया को शिक्षा प्रदान करने की भूमिका में एक बेहतरीन साधन माना जा रहा है। इसके द्वारा ऑनलाइन जानकारी का तेजी से हस्तांतरण होता है, ऑनलाइन रोजगार के बेहतरीन अवसर प्राप्त होते हैं।, साथ ही व्यवसाय, चिकित्सा, नीति-निर्माण को प्रभावित करने में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्तमान समय में शिक्षक एवं छाओं द्वारा फेसबुक ट्विटर आदि जैसे प्लेटफार्म का प्रयोग किया जा रहा है।, इसके द्वारा शिक्षक एवं छात्रों के मध्य दूरी सिमटकर कम हो गई है। प्रोफेसर/शिक्षक स्काइप, ट्विटर और अन्य जगहों पर इसके मदद से लाइव चैट करते हैं। सोशल मीडिया के कारण शिक्षा आसान हो गई है।

आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं भौतिक वादी लोगो का मानना है कि सोशल मीडिया लोगों में अवसाद और चिंता के प्रसार का एक सबसे बड़ा कारण है। सोशल मीडिया के अत्यधिक प्रयोग से सोने की आदतों में बदलाव, साइबर अपराध, बच्चो के प्रति लगातार बढ़ते दबाव और एक प्रभावशाली प्रोफाइल युवाओं को बड़े पैमाने पर प्रभावित कर रही है।, इसमें अत्यधिक व्यस्तता के कारण अन्य कार्यो के लिए बहुत कम समय बचता है, अन्य गंभीर मुद्दो की उत्पत्ति होती है, जैसे ध्यान कम लगना, चिंता एवं अन्य मुद्दे।, इसके अत्यधिक प्रयोग एवं

गोपनीयता से निजता में कमी आती है। उपयोगकर्ता को साइबर अपराधी जैसे हैकिंग, पहचान संबंधित चैट, फिशिंग, अपराधों आदि के प्रति संवेदनशील बनाता है।

समकालीन दृश्य में सोशल मीडिया का दुरूपयोग भी कई रूपों में किया जा रहा है इसके जरिए न केवल सामाजिक और धार्मिक उन्माद फैलाया जा रहा है, बल्कि राजनीतिक स्वार्थ के लिए भी गलत जानकारियां पहुंचाई जा रही है। इससे समाज में हिंसा को तो बढ़ावा मिलता ही है साथ ही हमारी सोच को भी नियंत्रित करता है। भारत एक मौखिक समाज था और संपूर्ण संचार व्यवस्था समाज में मौखिक रूप से चलती रही है बड़े-बड़े व्यापार मौखिक ही होते थे। यह मौखिक आज मीडिया समाज बन गयी है, विश्व आर्थिक मंच की एक रिपोर्ट के अनुसार सोशल मीडिया के जरिए झूठी सूचना का प्रसार उभरते जोखिम में से एक है, यकीकन यह देश की प्रगति की राह में रुकावट है और ऐसे में जरूरी हो जाता है कि हमारी सरकार इसमें दखल कर इस पर लगाम लगाने का प्रयास करें। केंद्र सरकार ने सूचना तकनीक कानून की धारा-79 में संशोधन के द्वारा फेसबुक और गूगल जैसी कंपनियों की जवाबदेही तय करने का प्रयास किया है।[7] इसके तहत आईटी कंपनियां की फेक न्यूज शिकायतों पर न केवल अदालत और सरकारी संस्थाएं बिल्कुल आम जनता के प्रति भी जवाबदेही होगी। देश जैसे-जैसे आधुनिकीकरण के रास्ते पर बढ़ रहा है चुनौतियां बढ़ती जा रही हैं। ऐसे में भारत को कठोर कानून बनाने की जरूरत है, जो सोशल मीडिया पर आपत्तिजनक सामग्री का इस्तेमाल करने वालों पर शिकंजा कसने के लिए पर्याप्त हो इसके अलावा सोशल मीडिया के जरिए सोशल मीडिया से भी आपत्तिजनक सामग्रियों को हटाया जा सकता है। सोशल मीडिया का प्रभाव विभिन्न प्रकार के समाज पर पड़ा है स्पेन्सर, दुर्खीम, तथा मार्क्स द्वारा वर्गीकृत किया गया है। [8] [9] [10]

भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 में की गई है सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को नया आयाम दिया है आज प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी डर के सोशल मीडिया के माध्यम से अपने विचार रख सकता है और इसे हजारों लोग तक पहुंचा सकता है दूसरी तरफ सोशल मीडिया के दुरुपयोग ने अनेक रूप स्थापित कर दिया है।, जिसके कारण इसका दुरुपयोग रोकने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। सोशल मीडिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए सभी बच्चों के साथ विचार कर नए विकल्पों की खोज कर इसकी जानकारी से संभावित दुरूपयोग से बचा जा सके। **प्रेस, इनफार्मेशन ब्यूरो, प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया, आज, यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया,** न्यूज एजेंसिया हैं जो देश को संपूर्ण विश्व के साथ जोड़ते हैं।

समाजशास्त्र की दृष्टि में विश्व के विविध संस्कृतियों में बढ़ते तीव्र संपर्क और उससे होने वाले प्रभाव जो मूल्य, प्रतिमान, विचारधारा, भाषा, कला, संज्ञानात्मक वस्तुओं और सामाजिक

संस्थाओं में देखा जा रहा है, उसे हम वैश्वीकरण कहते है, जिस पर सोशल मीडिया शब्द का प्रभाव रहा है।[11]

मीडिया का प्रभाव नैतिकता के संदर्भ में :-

मीडिया के प्रचार प्रसार का दायित्व पत्रकारिता पर है, पत्रकारिता पत्रकार करता है। पत्रकार समाज का प्रतिबिंब ही सम्मुख रखते हैं, वे जानकारी विचार, अभिमत सबके सामने लाने मे विशिष्ट भूमिका निभाते हैं वह तथ्यों को खोजते हैं, उद्धृत करते हैं, दर्ज करते है, सवाल उठाते हैं, लोगों के विचार करने के लिए इनपुट देते हैं मनोरंजन करते हैं और लोगों को प्रेरित करते हैं। वे समाज को जानकारी देते हैं तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

ब्रिटेन के मैनचेस्टर के से प्रकाशित होने वाले मेनचेस्टर डार्जियन के एक सौ वर्ष पूरे होने पर **संपादक सी० पी० स्कांट** जिन्हें स्वयं इस अखबार का संपादन करते हुए 50 वर्ष हो चुके थे मई 2021 में एक हंड्रेड ईयर्स शीर्षक से एक आलेख लिखा, जिसमें आज भी विशेष समाचार पत्रों और मूलत: पत्रकारिता की स्वतंत्रता का पाथेय माना जाता है, इसे पत्रकारिता में नैतिक मानदंडों का भी निर्देशक माना जाता है। स्कांट ने जो बातें अखबारों के लिए लिखी और उन पर अमल किया वे किसी भी प्रकार की मीडिया के लिए कालातीत तथा समुचित है। आखिर मीडिया की प्रौद्योगिकी उपकरण, अवयव और प्रस्तुति का तरीका बदल जाने से उसके आधारभूत सिद्धांत नहीं बदल जाते, पत्रकारिता की आत्मा वही रहती है। स्कांट ने लिखा है कि अखबारों के दो पक्ष हैं एक दूसरे किसी के व्यवसाय तरह एक व्यवसाय है, और इसे जीवित रखने के लिए खर्च करना यानि राजस्व कमाना पड़ता है। लेकिन यह व्यवसाय से बढ़कर भी कुछ है यह एक संस्था है यह पूरे समाज के जीवन को प्रतिबिंबित करता है तथा समाज को प्रभावित भी करता है यह अपने स्वरूप पर एक तरह से सरकार का उपकरण भी है, यह लोगों के मानसिक और आत्मा से व्यवहार करता है। इसका नेतृत्व और भौतिक अस्तित्व है, और इसका चरित्र तथा प्रभाव इन दो शक्तियों के संतुलन से होता है, यह सिर्फ लाभ कमाने तथा पावर शक्ति हासिल करने को अपना पहला लक्ष्य बना सकता है या फिर यह स्वयं को अधिक बड़े तथा महत्वपूर्ण कार्य के लिए तैयार कर सकता है।

स्काट मानते थे कि अखबार का एक नैतिक मानदंड जो उनकी स्वतंत्रता होनी चाहिए। उसकी चाहे जो स्थितियां चरित्र हो कम से कम उसकी अपनी आत्मा होनी चाहिये उच्च नैतिक मानदंडों का बखान करते हए स्कांट ने लिखा है अखबार का प्राथमिक कर्तव्य समाचार इकठ्ठा करना है। पत्रकरिता का अपनी आत्मा के मरने का खतरा मानते हुए उसे यह पक्का करना चाहिए कि उसकी खबरें दूषित या दागी न हो, वह अपने पाठकों के लिए चाहे जो (सामग्री) पेश करें उसके (संपादकीय सामग्री) प्रस्तुतीकरण उज्जवल सत्य के साथ तिल मात्र से छेड़छाड़ नहीं होना चाहिए। उसे अपना विचार रखने की संपूर्ण स्वतंत्रता है लेकिन तथ्य पवित्र हो। अखबारों के साथ किसी भी

प्रकार का छेड़छाड़ नहीं होना चाहिए। अखबारों के माध्यम से प्रोपेगेंडा घृणास्पदन है, विरोधी के आवाज न्यायपूर्ण ढंग से मित्र की आवाज की तरह सुनी जानी चाहिए अखबारों के मामले में ज्यादा खुलापन की हिमायत हो सकता है, लेकिन इसका निष्पक्ष होना बेहतर है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम को महात्मा गांधी, तिलक, लाला लाजपत राय, वीर सावरकर, माखनलाल चतुर्वेदी, बाबूराव विष्णु पराडकर, गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे अनगिनत संपादक सेनानियों ने पत्रकारिता का यही मानदण्ड निरुपित किए है। स्वतंत्रता संग्राम के इन महान सेनानियों ने सत्य लिखने के लिए ब्रिटिश सरकार के दबाव की चिंता नहीं की और न ही उसके दमन की। पत्रकारिता के उच्च नैतिक आदर्शो पर चलते हए उन्होंने देश को जगाया, प्रेरित किया तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लड़ने को तैयार किया। **महात्मा गांधी** तो कहते थे कि **''जो व्यक्ति धर्म के मार्ग पर चलता है, वह कभी असुरक्षित तथा असहाय नहीं हो सकता है''**। पत्रकार समाज का प्रतिबिम्ब ही सम्मुख रखते हैं, वे जानकारी, विचार अभिमत, सबके सामने बांटने का विशिष्ट भूमिका निभाते हैं, वे तथ्यों को खोजते हैं, उद्घाटित करते हैं, दर्ज करते हैं समान उठाते हैं, लोगों के विचार करने के लिए इनपुट देते है। मनोरंजन करते हैं और लोगों को प्रेरित करते हैं। वे समाज को जानकारी देते हैं और लोकतंत्र तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

मीडिया ने दुनिया भर में भारी निवेश गलाकाट प्रतिस्पर्धा और महंगी टेक्नोलॉजी के आधार पर विस्तार और मीडिया के अतिरिक्त अन्य धंधों में फैलाव करने के लिए पत्रकारिता के नीति नियमों को ताक पर रख दिया है। अधिकतर बड़े मीडिया संगठन शेयर बाजार में सूचीबद्ध है इसलिए लाभ कमाना एक प्रमुख कर्तव्य बन गया है। अपने जैसा जैसे दूसरे मीडिया से हमेशा आगे रहने की होड़ इस कद्र है कि प्रतिस्पर्धा को नीचे गिराने, बदनाम करने और उसके पाठक, दर्शक या श्रोता किसी भी तरह छीन लेने की जुगत लगाई जाती है।

मीडिया को विकास के भागीदारी बनाने के साथ-साथ शासन प्रक्रिया में माध्यम बनाना है जो जनता के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए इसमें नयापन लाने की आवश्यकता है। इस प्रकार, यह मान्यताओं कि एक संतुलित ढांचा विकसित कर सकता है और उसे व्यवहार में ला सकता है, जिसे सार्वजनिक मान्यता है या मूल्य माना जा सकता है। जन धारणा को सार्वजनिक मान्यता में बदलते समय यदि मीडिया प्रशासन और मध्यस्थता शासन दोनों सार्वजनिक जवाबदेही को फिर से ताजा करते हैं तो सत्य निष्ठा हासिल की जा सकती है।

पार्थ सारथी (2018) ने नियंत्रित, संगठनात्मक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को पहचानने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है जिसके तहत मीडिया अर्थव्यवस्था उभरी है और दृढ़ता और निर्णय लेने के साथ उसका गठन किया गया है। उस पेचीदा क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए जिसमें

मीडिया अर्थव्यवस्था का संचालन किया जा रहा है। हम मानते हैं कि यह प्रयोजन न तो अनिवार्य रूप से स्पष्ट है और ना ही किसी तरह की ताकतों कर्ताओं द्वारा थोपा गया है।[13]

सारांशः-

भारतीय संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुसार जैसे लोकतांत्रिक देशों में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के क्रियाकलापों पर नजर रखने के लिए मीडिया चौथे स्तंभ के रूप में विद्यमान है। मीडिया का भारतीय समाज में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव रहा है। आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता तथा वैश्वीकरण में भी मीडिया का प्रमुख योगदान रहा है। मोबाइल, टेबलेट, लैपटॉप, इंटरनेट ने मीडिया को प्रोत्साहित किया है, और इन सब संचार के माध्यमों से वर्तमान मीडिया पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ढंग से प्रभाव पड़ा है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में स्वतंत्रता सेनानियों ने मीडिया के प्रमुख स्तंभ पत्रकारिता के उच्च नैतिक आदर्शों पर चलते हए उन्होंने देश को जगाया, प्रेरित किया तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लड़ने को तैयार किया।

निष्कर्ष :

मीडिया को विकास में भागीदारी बनने के साथ-साथ शासन प्रक्रिया में माध्यम बनाना है, जिससे न्यायपालिका, कार्यपालिका एवं विधायिका में अपना योगदान चौथे स्तंभ के रूप में दे सके। समाज में प्रभावी शासन को फिर से सुनिश्चित करने के लिए जनता और मीडिया संस्थाओं द्वारा सार्वजनिक मान्यताओं का उपयोग करने की आवश्यक प्रभावी होगी। ■

सन्दर्भः

1- https://hindi.webdunia.com.

2- https://www.drishtiias.com

3- https://www.deepawali.co.in.

4- Modernity Post-modernity and Neo Sociological Theories S.L.DOSI Page-313 ISBN-81-7033-743-7-2015

5- constitutional of India – Dr.Jay Jay Ram Uppadhyay - Central Law Agency-2019 Page-9

6- Malcolm,waters, globalization, routledge londan, International Socicty Vol.15 , 1 June 2000.

7- Spencer, The Principles of sociology, Vol-1 chap-X

8- Emile Durkheim, The Rules of Sociological Method chap-IV, PP- 66-68

9- karlmarks in his Ariticles "British Rule in India quoted by Bottomore IBID. PP-117-15

10. समाजशास्त्र एक (संपूर्ण पुस्तिका)– प्रोफेसर डॉ जी० के अग्रवाल–2015 पृष्ठ54–55.

11. समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत– डॉ. रविकुमार मिश्र विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र नागरिक पी०जी० कॉलेज, जंघई जौनपुर (सम्बद्ध –पूर्वाचल विश्वविद्यालय जौनपुर ISBN: 978-81-7004-347-2021–पृष्ठ -335

12. योजना सितंबर–2020 विकास को समर्पित पृष्ठ 31–36 ISSN–0971–8397

13. पार्थसारथी, वी. (2018) बिटवीन स्ट्रैटेजिक इंनटेंट एंड केसीडर्ड साइलेंस रेगुलेटरी कूटर्स ऑफ द टीवी बिजनेस ए, एथिक, वी पार्थसारथी और एस० श्रीनिवास के संस्कारों में द इंडियन मीडिया इकोनोमिक, खण्ड–1 औद्योगिक़ गतिशीलता और सांस्कृति अनुकूलन, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

वर्तमान परिदृष्य में समाज तथा व्यक्ति के लिए मूल्य परक शिक्षा की आवश्यकता

डॉ. शिप्रा सिंह*

सार-संक्षेप : मूल्य व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं समाज के निर्माण में बहुत अधिक प्रभावशाली आयाम हैं। एक व्यक्ति के सामाजिक कार्यों की प्रेरक शक्ति के रूप में मूल्यों को समझना अत्यन्त आवश्यक है। मानवीय मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु मूल्यपरक शिक्षा जो सनातन मूल्यों भारतीय संस्कृति प्रतिमान एवं सामाजिक-सांस्कृति नवाचार लाने सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में तथा समाज एवं व्यक्ति को सर्वांगीण विकास की ओर अग्रसर होने में महत्वूपर्ण हैं।

बीज शब्द : मूल्य शिक्षा, आचरण संहिता, अन्तःकरण, कल्याणकारी सामंजस्य, रचनात्मक कल्पनाशक्ति, शिवत्व।

मूल्य ऐसी आचरण संहिता या सद्गुण है, जिससे व्यक्ति अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण करता है, तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। ये मूल्य एक ओर व्यक्ति के अन्तः करण द्वारा नियंत्रित होता है वहीं दूसरी ओर उसके संस्कृति एवं परंपरा द्वारा पोषित होता है।[1]

यह भी कहा जा सकता है कि मूल्य के अन्तर्तम में जगती हुई वह शक्ति है जो व्यक्ति को एक विशिष्ट प्रकार से कर्म करने के लिए प्रेरित करती है और उसके आचरण को शासित करती है। इस मूल्य में समय के साथ अन्तर आ रहा है। वर्तमान में व्यक्ति अत्यधिक स्वार्थी हो गया है, उसके व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में तनाव के कारण मूल्यों का ह्रास हो रहा है।[2] आज हम सामाजिक नियमों का उल्लंघन करते हुए संकोच नहीं करते हैं। हम यह कह सकते हैं। कि वर्तमान में व्यक्ति का स्वर्णिम युग समाप्त होता जा रहा है। हम निरन्तर विनाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं। कल तक हम जिन कार्यों को गिरा हुआ समझ कर नहीं करते थे, आज उन्हीं के पीछे भाग रहे हैं।

समाज में कल्याणकारी सामंजस्य की स्थिति कायम रखने के उददेश्य से ही मूल्यों का उद्भव होता है और इन्हीं मूल्यों का वर्तमान में संरक्षण होता है, जो सम्पूर्ण मानव समाज के आधाार स्तम्भ हैं।

*अध्यक्ष, बी.एड्. विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

मूल्यों को बनाये रखने के लिए सर्वप्रथम शिक्षा में सुधाार अपेक्षित है। वर्तमान समय में गिरते हुए मूल्यों से समाज को बचाना है, तो शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाना आवश्यक है। वर्तमान में छात्र ही भावी समाज के निर्माता हैं। अत: छात्रों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे उनमें मूल्यों का विकास हो तथा शाश्वत् मूल्यों का संरक्षण हो।[3] इसके लिए शिक्षा समाज तथा व्यक्ति तीनों की सम्पूर्ण गतिविधियों का अवलोकन करना होगा।

मूल्यों के विकास हेतु ही शिक्षा में सुधाार हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 सामने आई है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने प्रयास किया है कि शिक्षा की प्रक्रिया का पुन: अभिविन्यास किया जाए, जिससे छात्र में सत्य, सहयोग, कर्त्तव्य परायणता आदि का विकास हो।[4] छात्र तर्कसंगत विचार और कार्य करने में सक्षम हो, जिसमें करूणा और सहानुभूति, वैज्ञानिक चिन्तन और रचनात्मक कल्पना शक्ति, नैतिकमूल्य और आधार हों। इसका उद्देश्य ऐसे उत्पादक लोगों को तैयार करना है जो कि अपने संविधान द्वारा परिकल्पित-समावेशी और बहुलतावादी समाज के निर्माण में बेहतर तरीके से योगदान करें।

समाज ऐसी शैक्षणिक संस्थाओं का निर्माण करे जहाँ प्रत्येक छात्र का स्वागत किया जाता है, और उसकी देखभाल की जाती है, जहाँ एक सुरक्षित और प्रेरणादायक शिक्षण वातावरण मौजूद हो। मूल्यों को बताने के लिए मात्र उपदेश देना नहीं इनमें अनुभूति, चिन्तन तथा क्रियान्वयन की योग्यता हो। प्रत्येक व्यक्ति यह समझे कि वह स्वयं क्या है? उसका कर्तव्य क्या है? उसे जीवन में किसे प्राथमिकता देनी है? इन गुणों के विकास हेतु मूल्यपरक शिक्षा में शिक्षार्थी को अधिक से अधिक अनुभव से जोड़ना चाहिए। एक शिक्षक मूल्यपरक शिक्षण तभी दे सकता है जब उसमें स्वयं अच्छे मूल्य विकसित होंगे। शिक्षक का स्वयं का आचरण भी ऐसा होना चाहिए कि उसका व्यक्तित्व छात्रों के लिए अनुकरणीय बन जाए। क्योंकि प्रत्येक छात्र का आदर्श उसका शिक्षक ही होता है। वर्तमान पाठ्यक्रम में नैतिक मूल्य सम्बन्धी अंशो को बढ़ाना चाहिए।

वर्तमान समाज मे मूल्यों का ह्रास हमारी शिक्षा के लिए एक गम्भीर चुनौती है, जिसे स्वीकार करके शिक्षा में सुधार कर इन मूल्यों के ह्रास को रोका जा सकता है। छात्रों में किसी भी प्रकार के मूल्यों का विकास करने के लिए शिक्षा संस्थाओं का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। कोई समाज शिक्षा की व्यवस्था अपने लक्ष्यों एवं आदर्शों की प्राप्ति के लिए ही तो करता है। परन्तु आश्चर्य तब होता है जब मूल्यहीन जीवन जीने और सिद्धान्तहीन लोग मूल्य निर्माण की बात करते हैं। सम्भवत: इसीलिए शिक्षण संस्थाओं में मूल्य शिक्षा के नाम पर केवल आदर्शों की चर्चा भर होती है, मूल्य आधारित आचरण नहीं होता। परन्तु अब समय आ गया है जब शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े सभी व्यक्ति अपने इस पुनीत कर्त्तव्य को समझें और तद्नुकूल कार्य करें।

शिक्षण संस्थाएँ अपना स्वरूप लोकतंत्रीय रखें। इसमें सबको अपने विचार अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता हो। इनमें सभी को समान दर्जा एवं आदर प्राप्त हो, किसी के साथ जाति, धर्म, लिंग आदि के आधार पर भेद-भाव न बरता जाए। इनमें सभी एक दूसरे के प्रति भ्रातृत्व भाव रखें, सभी एक दूसरे से प्रेम करें और सभी एक दूसरे का सहयोग करें। सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखा जाय। शिक्षण संस्थाओं में सहपाठ्यचारी क्रियाओं के सम्पादन में जब भी अवसर मिले छात्रों में मूल्य निर्माण के लिए प्रयत्न किया जाय। सामूहिक सभाओं में छात्रों को राष्ट्रीय मूल्यों का स्पष्ट संज्ञान कराया जाए, उनका महत्व स्पष्ट किया जाये और छात्रों को उनके पालन महत्व की ओर अग्रसर किया जाय। अवसरों पर राष्ट्रीय महत्व के कार्य भी किए जाए, जन जागरण किया जाए, पेड़ पौधें लगाए जाएं और समाज सेवा का कार्य किया जाए। जिन शिक्षण संस्थाओं की परिपाटी राष्ट्रीय मूल्य प्रधान होती है, उनमें मूल्यों का विकास बड़े स्वाभाविक रूप से होता है।

समाज तथा व्यक्ति में मूल्य के निर्माण की नींव परिवार में रखी जाती है। परिवार के सदस्यों द्वारा छात्र में संज्ञानात्मक, भावात्मक विकास किया जाय। जिससे छात्र समाज एवं राष्ट्र के लिए अपनी भूमिका तय कर सकें।

समाज में क्षेत्र विशेष के सभी छोटे-बड़े सामाजिक समूह एवं सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनैतिक संस्थाए तथा प्रशासनिक संगठन एवं संस्थान आते हैं। सच बात यह है कि छात्रों में मूल्यों का निर्माण अपने सही रूप में समाज की इन विभिन्न संस्थाओं की क्रियाओं में भाग लेने से ही होता है। इस सभी संगठनों एवं संस्थाओं में यदि सभी व्यक्ति राष्ट्रीय मूल्यों के अनुसार आचरण करें तो छात्रों में इन मूल्यों का निर्माण बड़े सहज रूप में होगा। कोई भी छात्र जिस प्रकार की सामाजिक क्रियाओं में भाग लेता है उसमें उसी प्रकार के आदर्श एवं विश्वास का विकास होता है। उदाहरण स्वरूप सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से सामाजिक आदर्श एवं विश्वास, सांस्कृतिक क्रियाओं में भाग लेने से सांस्कृतिक आदर्श एवं विश्वास, धार्मिक क्रियाओं में भाग लेने से धार्मिक आदर्श एवं विश्वास, राजनैतिक क्रियाओं में भाग लेने से राजनैतिक आदर्श एवं विश्वास, आर्थिक क्रियाओं में भाग लेने से आर्थिक आदर्श एवं विश्वास। ये ही उसके मूल्यों का रूप धारण करते हैं। इस सबके निर्माण में मुख्य भूमिका परिवार समाज तथा शिक्षण संस्थाओं की होती है।

मूल्य शिक्षा का स्वाभाविक क्रम है- व्यवहार से व्यवहार की ओर। प्रारम्भ में बच्चे अपने माता-पिता, भाई-बहन आदि का अनुकरण कर व्यवहार की विधियाँ सीखते हैं। कुछ बड़ा होने पर वे इन विधियों के औचित्य के बारे में सोचने लगते हैं, और क्यों के उत्तर में वे मूल्यों पर पहुँच जाते हैं, और फिर ये मूल्य ही उनके व्यवहार का आधार बन जाते हैं। छात्रों में उचित मूल्यों के विकास के लिए मूलभूत आवश्यकता उचित सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण की होती है। इसलिए समाज तथा व्यक्ति के विकास के लिए शिक्षा ही प्रमुख साधन है जिसके द्वारा मानव के

शिवत्व एवं विनाश दोनों की ही स्थितियाँ उपस्थित हो सकती है। मूल्यविहीन शिक्षा व्यक्ति के लिए ही नहीं अपितु समाज के लिए भी हानिकारक होती है। अतः शिक्षा में शिवत्व पर बल देना चाहिए।

आज हम जिस युग में जी रहे हैं, वह विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित है। ऐसे में शिक्षा की गुणवत्ता द्वारा विज्ञान एवं मानवतावाद में सामन्जस्य एवं ज्ञान और बुद्धि में सामन्जस्य रखना होगा। अन्यथा लोग विशेषज्ञ तो होंगे किन्तु मानव नहीं होंगे। ऐसे परिदृश्य में सही दिशा, मूल्यपरक शिक्षा ही दे सकती है। व्यक्ति के लिए मूल्यपरक शिक्षा का सृजन आवश्यक है।

सन्दर्भः

1. रूहेला, एस0पी0, शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रिय आधार, आगरा-2: अग्रवाल पब्लिकेशन्स, 2014/15, पृ. 83
2. पाण्डेय, डॉ0 रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा-2: अग्रवाल पब्लिकेशन्स, 2010, पृ. 63
3. लाल, रमन बिहारी, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, मेरठ : रस्तोगी पब्लिकेशन्स, 2013, पृ. 103
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार, पृ. 311

■

हार्मोन असंतुलन के उपचार में वानस्पतिक पदार्थों एवं योग का महत्व

शारदा रानी

सार-संक्षेप : मानव जीवन व्यस्तताओं से भरा है और आधुनिकता के निकट पहुंचने की दौड़ ने मानव को उसके स्वास्थ्य और शारीरिक देखभाल से काफी दूर कर दिया है। वर्तमान समय में हमारी खाद्य आदतें व जीवन- शैली ऐसी है जिसका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है। सुकरात ने कहा है ''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है।'' अत: हमारा मस्तिष्क ही हमारे शरीर का वह प्रमुख अंग है जिसके द्वारा हमारे शरीर की सारी क्रियाएं संचालित होती है। हार्मोन स्त्रावण भी उन्हीं में से एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

यदि हार्मोन में थोड़ी सी भी गड़बड़ी आ जाए तो उससे हमारे शरीर की कोशिकाएं और मेटाबॉलिज्म प्रभावित होने लगता है। द अपोलो क्लीनिक की गायनोकोलॉजिस्ट डॉ0 गुंजन शर्मा कहती हैं मानव शरीर में कुल 230 हारमोंस हैं। कई हारमोंस दूसरे हारमोंस के निर्माण और स्त्राव को काबू में रखते हैं।[1] उम्र, तनाव की अधिकता, खराब खानपान की आदतें और अस्वस्थ जीवन शैली, स्टीरॉयड का अधिक सेवन, ज्यादा वजन या कुछ खास दवाइयों के कारण हार्मोन्स में गड़बड़ी हो जाती है।[2]

बीज शब्द : हार्मोन, असंतुलन, योगासन, जीवन शैली, मेटाबॉलिज्म, प्रजनन, मासिक धर्म, पी0सी0ओ0डी0, मूड स्विंग, महिलाएं, मेनोपॉज, ग्रन्थि

हार्मोन हमारे शरीर में बनने वाले एक तरह के केमिकल है जो रक्त के माध्यम से शरीर के अंगो और ऊतकों तक पहुँचते है। यह शरीर में एंडोक्राइन ग्रंथियों से स्रावित होते हैं तथा शरीर में होने वाली विभिन्न क्रियाओं को प्रभावित करते हैं, जैसे शरीर का विकास, मेटाबॉलिज्म, यौन गतिविधियाँ, प्रजनन और मूडस्विंग्स आदि क्रियाओं में हार्मोन की मुख्य भूमि का होती है। हार्मोन की सूक्ष्म मात्रा भी अधिक प्रभावशाली होती है, इन्हें शरीर में अधिक समय तक संचित नहीं रखा जा सकता है।[3]

हार्मोनल असंतुलन एक ऐसी स्थिति है जो पुरुषों और महिलाओं दोनों को प्रभावित कर सकती है। इसके लिए विभिन्न कारक जिम्मेदार हैं और यह एक स्वस्थ शरीर और स्वस्थ दिमाग

*सहायक आचार्य, गृह विज्ञान विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर।

की प्राप्ति में कई रोडब्लॉक लगा सकता है। महिलाओं में, हार्मोन के स्तर युवावस्था, रजोनिवृत्ति या प्रीमेनोपॉज के दौरान उतार-चढ़ाव कर सकते हैं। एक पुरुष हार्मोनल असंतुलन का अनुभव भी कर सकता है जब वे 'पुरुष रजोनिवृत्ति' चरण से गुजरते हैं या जब वे एंड्रोपोज नामक आयु से संबंधित हार्मोनल बदलाव का अनुभव करते हैं। सबसे आम हार्मोन जिनके स्तर में उतार चढ़ाव से महिलाएं प्रभावित होती हैं वो है एस्ट्रोजेन और प्रोजेस्टेरोन। यह मुख्य रूप से जन्म नियंत्रण गोलियों के अत्यधिक उपयोग के कारण होता है, बहुत सारे तनाव और सौंदर्य प्रसाधनों का अत्यधिक उपयोग से भी होता है।[4]

हार्मोन असंतुलित होने पर शरीर पर कई तरह से असर डालते हैं, इसके बारे में विस्तृत जानकारी होना भी जरूरी होता है। कुछ प्रमुख हार्मोंस का विवरण निम्नवत है -

ग्रोथ हार्मोन

यह हार्मोन सोमाट्रोपीन हार्मोन के नाम से जाना जाने वाला एक प्रोटीन हार्मोन है, जिसमें करीब 190 अमीनो एसिड होते हैं। यह हार्मोन विकास और मेटाबॉलिज्म की दर निर्धारित करता है। इस हार्मोन का निर्माण पीयुष ग्रंथि द्वारा होता है, जो हमारे मस्तिष्क पर स्थित होती है। यह मांसपेशियों को बढ़ाने, प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने, शरीर में कोशिकाओं के पुनर्निर्माण और शारीरिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है साथ ही सामान्य शारीरिक संरचना और चयापचय को बनाए रखने में इस हार्मोन का सबसे ज्यादा योगदान होता है।

थाइरॉक्सिन

थाइरॉक्सिन हार्मोन का स्त्रावण थॉयरायड ग्रंथियों द्वारा किया जाता है। यह एक अंत:स्रावी ग्रंथि है जो गर्दन में श्वास नली के ऊपर होती है। यह हार्मोन हड्डियों और मस्तिष्क के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इन्सुलिन

इस हार्मोन का स्राव अग्न्याशय द्वारा किया जाता है जो पेट में होता है। यह ग्रंथि कार्बोहाइड्रेट्स को ब्लड शुगर में परिवर्तित करती है और इंसुलिन इस रक्त शर्करा को ऊर्जा में परिवर्तित कर देता है। इससे शरीर में शुगर का स्तर नियंत्रण में रहता है।

कॉर्टिसोल

यह एक स्ट्रेस हार्मोन है जिसका निर्माण एचिनल ग्रन्थि द्वारा किया जाता है। यह ग्रंथि हमारी दोनों किडनी के ऊपर होती है। कॉर्टिसोल हमें स्वस्थ और ऊर्जावान रखने में मदद करता है, इसकी मुख्य भूमिका स्ट्रेस को कंट्रोल करना है। तनावपूर्ण स्थिति से सामना करने के लिए हमारा शरीर कॉर्टिसोल का स्राव करता है।

एस्ट्रोजेन

महिलाओं में प्रजनन, मासिक धर्म, यौन विकास एवं मेनोपोज के लिए महत्वपूर्ण है।

टेस्टोस्टेरॉन

यह एक पुरूष सेक्स हार्मोन है। यह शरीर की मांसपेशियों के निर्माण में मदद करता है और पुरुष प्रजनन टिशु के विकास और यौन शक्ति को बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि पुरूषों में इस हार्मोन का उत्पादन अपर्याप्त मात्रा में होता है तो इसके कारण कमजोरी, मूड स्विंग्स और चिड़चिड़ापन देखने को मिलता है।[5]

सेरोटोनिनः मूड को प्रभावित करने वाला यह हार्मोन याद्दाश्त, अच्छी नींद और बढ़िया पाचन-तंत्र सुनिश्चित करता है। यदि मस्तिष्क पर्याप्त मात्रा में इस हार्मोन का निर्माण नहीं करता है, तो तनाव, माइग्रेन, वजन बढ़ना और नींद न आना जैसी समस्याएं हो सकती हैं।

एड्रेनलिनः एड्रेनल (अधिवृक्क) ग्रंथि में बनने वाला यह हार्मोन मूड और भावनाओं को तेजी से प्रभावित करता है तथा तनाव तुरंत दूर करता है। यह हार्मोन मेटाबॉलिक स्तर को तेज करता है तथा दिमाग तक खुशी के भाव का संकेत पहुंचाता है।

प्रोलेक्टिनः पिट्यूटरी ग्रंथि द्वारा स्रावित होने वाला यह हार्मोन बच्चे के जन्म के बाद मां को उसे स्तनपान कराने में सक्षम बनाने में मदद करता है, साथ ही स्त्री की प्रजनन क्षमता को भी बढ़ाता है।

हार्मोन डालते हैं यह असर

हार्मोन असंतुलन से स्त्री पुरुष एवं बच्चे सभी इसके प्रभाव से होने वाली शारीरिक व मानसिक बीमारियों से पीड़ित हैं-

महिलाओं पर असरः महिलाओं की शारीरिक संरचना जटिल होती है। शोध कहते हैं कि करीब 50 फीसदी महिलाओं में हार्मोन्स के असंतुलन का असर उनके जीवन पर पड़ता है। माहवारी की शुरुआत, गर्भावस्था व मेनोपॉज की स्थिति में हार्मोन के असंतुलन से कई समस्याएं हो सकती हैं।

पुरुषों पर असरः पुरुषों में हार्मोन्स के असंतुलन से तनाव, चिड़चिड़ापन, यौन इच्छा में कमी, नपुंसकता, दाढ़ी या मूंछ के बालों का कम या ज्यादा उगना, सुस्ती आदि समस्याएं देखी जाती हैं।

बच्चों पर असरः अकारण मोटापा, शरीर का असंतुलित विकास होना। हार्मोन्स की कमी से किशोरियों में पॉलिसिस्टिक ओवरी सिंड्रोम (पीसीओडी/पीसीओएस) देखने को मिलता है। किशोरों में टेस्टिकल्स का विकास पूरी तरह नहीं हो पाता।[6]

महिलाओं में हार्मोन अंसतुलन के लक्षण

महिलाओं में अचानक वजन बढ़ना और वजव घटना हार्मोन असंतुलन का कारण हो सकता है। इसके अलावा कई अन्य ऐसे लक्षण हैं, जो निम्नलिखित है-

- थकान महसूस होना
- त्वचा का शुष्क पड़ना
- अचानक वजन घटना
- भोजन न पच पाना (कब्ज और डायरिया)
- हार्ट रेट धीमा हो जाना
- चेहरे पर मुहांसे
- छाती में दर्द और जलन
- प्यास अधिक लगना
- मांसपेशियों का कमजोर हो जाना
- बार-बार पेशाब लगना
- सेक्स करने की इच्छा में कमी होना
- डिप्रेशन की शिकायत होना।
- कमर के आसपास बाल उगना
- पीरियड्स देर से आना
- पीरियड्स में तेज ब्लीडिंग
- महिलाओं में ऑस्टियोपोरोसिस की समस्या
- रात को सोते समय अधिक पसीना आना
- योनि में सूखापन
- ब्रेस्ट काफी सॉफ्ट (मुलायम) होना
- महिलाओं में बांझपन
- बाल बहुत कमजोर होना
- क्लिटोरिस का बड़ा होना
- आवाज भारी होना इत्यादि।

हार्मोन असंतुलन के उपचार में वानस्पतिक पदार्थों का महत्व-

ग्रीन टी का सेवन

ग्रीन टी के सेवन से हारमोंस को आसानी से संतुलित किया जा सकता है। ग्रीन टी का सेवन अगर सुबह खाली पेट किया जाए तो यह ना केवल चयापचय की प्रक्रिया को बेहतर बनाता है बल्कि मूड स्विंग को रोकने, शरीर का विकास आदि में भी मददगार साबित होता है।

नारियल तेल

नारियल के तेल से भी हार्मोन को संतुलित किया जा सकता है। ऐसे में व्यक्ति अपने आहार में नारियल के तेल को शामिल करें। ऐसा करने से न केवल वजन नियंत्रित रहता है बल्कि हारमोंस भी संतुलित रह सकते हैं।[7]

अलसी

अलसी में लिग्नांस और ओमेगा-3 एस पाए जाते हैं। जबकि अलसी के पौधे में फाइटोएस्ट्रोजन पाया जाता है। यह न केवल हार्मोन को संतुलित करता है बल्कि हार्मोन से एस्ट्रोजन होने वाले स्तन कैंसर के खतरे को भी कम करता है।

क्विनोआ

इसमें विटामिन, फाइबर और प्रोटीन पाए जाते हैं जो ब्लड शुगर कंट्रोल करने में सहायक होते हैं। साथ ही इंसुलिन और एण्ड्रोजन के उत्सर्जन में सहयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त क्विनोआ में एंटी ऑक्सीडेंट और एंटी-इंफ्लेमेटरी के गुण पाए जाते हैं जो डायबिटीज और हृदय संबंधी रोगों में फायदेमंद होते हैं।[8]

बादाम

बादाम पोषक तत्व व एंटी-ऑक्सीडेंट्स गुणों से भरपूर होते हैं। इसका सेवन करने से हमारा एंडोक्राइन सिस्टम प्रभावित होता है। ऐसे में कोलेस्ट्रॉल व शुगर लेवल कंट्रोल रहने में मदद मिलती है। इसके साथ ही टाइप 2 डायबिटीज होने का खतरा भी कम रहता है।

एवोकाडो

एवोकाडो में पोषक तत्व व खनिज होते हैं। इसके साथ ही यह फाइबर से भरपूर होता है। इसके सलाद का सेवन करने से शरीर में हार्मोन का स्तर संतुलित रहता है। इसके अलावा इम्यूनिटी तेज होने से मौसमी व अन्य बीमारियों के होने से बचाव रहता है।

हरी बीन्स

रिसर्च की माने तो इस परेशानी में हरी बीन्स का सेवन बहुत ही फायदेमंद है। यह कम कैलोरी वाली सब्जी है। ऐसे में इसका सेवन करने से शरीर में वसा बढ़ने की परेशानी नहीं होती है। ऐसे में हार्मोन संतुलन बनाएं रखने में मदद मिलती है।[9]

दालचीनी

दालचीनी में एंटी डायबटिक गुण होने की वजह से यह रक्त में शुगर के लेवल को कम करता है साथ ही हृदय को भी स्वस्थ रखने में मदद करता है। अत: दालचीनी को काढ़ा या पाउडर के रूप में गर्म पानी में एक चम्मच सुबह शाम पीना बहुत फायदेमंद होता है।

पुदीना

सात से आठ पुदीने की पत्तियों को उबालकर पीने से टेस्टोस्टेरॉन हार्मोन का स्तर कम होता है तथा शरीर में अतिरिक्त बालों का बढ़ना भी कम हो जाता है।

मुलेठी

एक चम्मच मुलेठी के चूर्ण का काढ़ा पीने से मेल हार्मोन टेस्टोस्टेरॉन का स्तर कम हो जाता है तथा शोध के अनुसार यह भी पाया गया है कि मुलेठी के जड़ का चूर्ण ओवलुएशन की प्रक्रिया को बढ़ा देता है।

जैतून का तेल

रिफाइण्ड तेल की जगह अपने भोजन में जैतून के तेल का इस्तेमाल करने से असंतुलित हार्मोन को नियंत्रित करने में मदद मिलती है।[10]

तुलसी

तुलसी में एंटी-एंड्रोजेनिक गुण पाए जाते हैं जो कि मेल हार्मोन एंड्रोजन के स्तर को नियंत्रित करते हैं इसलिए प्रतिदिन 8 से 10 तुलसी के पत्तों का काढ़ा पीना चाहिए।

सेव का सिरका

ओवेरियन सिस्ट (अंडाशय का गांठ) पोटेशियम की कमी से होता है। इसलिए सेब का सिरका पोटेशियम की कमी को पूरा करके सिस्ट को सिकुड़ने और कम करने में मदद करता है।

अदरक

मासिक धर्म के दौरान होने वाले दर्द व सूजन को कम करने के लिए अदरक एक बहुत ही अच्छी औषधि है।

टमाटर

टमाटर का सेवन हम अलग-अलग रूपों में भी कर सकते हैं। आप इसे सूप के रूप में, सलाद या फिर सब्जी बनाने के दौरान खाने में इस्तेमाल कर सकते हैं। इसमें ऐसे कई सारे पोषक तत्व पाए जाते हैं जो बॉडी में हार्मोंस को संतुलित बनाए रखने के लिए बहुत काम आते हैं।[11]

हार्मोनल असंतुलन के लिए योग-

1. भुजंगासन

भुजंगासन को 'कोबरा पोज' भी कहते हैं। यह पीछे की ओर झुकने वाला योगासन है। यह आमतौर पर सूर्य नमस्कार के समय उर्ध्व मुख संवासन के विकल्प के रूप में किया जाता है। इस आसन को करने से मोटापा, तनाव, मासिक धर्म से जुड़ी परेशानियां कम होती हैं। रीढ़ की हड्डी और मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं।

2. मालासन

मलासन जांघों, कमर, कूल्हों, टखनों और बॉडी को स्ट्रेच, पेट की मांसपेशियों को टोन और कोलन के कार्य में सुधार, व पेल्विस में ब्लड सरकुलेशन को बढ़ाने वाला योगासन है। जिससे सेक्सुअल एनर्जी रेगुलेट होती है। हार्मोन संतुलन बना रहता है।

3. उष्ट्रासन

यह योगासन भी शरीर को टोन करता है और हारमोंस का संतुलन बनाने में सहायक है।

4. ससंगासन

इस योगासन को करने से रीड की हड्डी का लचीलापन बढ़ता है। गर्दन और सिर के आसपास होने वाले स्ट्रेस से राहत मिलती है, हारमोंस संतुलित रहते हैं और थायराइड ग्रंथि को एक्टिवेट करता है।

5. सेतु बंधासन

यह योगासन पेट, फेफड़ों और आंतों के स्टिमुलेशन में फायदेमंद है। मेनोपॉज से जुड़ी हुई परेशानी हो या मासिक धर्म से जुड़े हुए परेशानियों को दूर करता है। साथ ही हार्मोन बैलेंस को बनाए रखता है।

6. तितली आसन

नियमित तौर पर तितली आसन करने से सभी प्रजनन अंगों में ब्लड सर्कुलेशन बढ़ा जाता है, जिससे महिलाएं एवम पुरुष दोनों ही ज्यादा फर्टाइल (उर्वरक शीलता) उत्पन्न होती हैं। यही नहीं, इससे पीरियड्स भी नियमित हो जाते हैं।[12]

निष्कर्ष

हार्मोन असंतुलन किसी भी व्यक्ति के लिए एक अभिशाप के समान है। जो व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक रूप से आजीवन प्रताड़ित करता है, यदि समय रहते इसका इलाज ना करवाया जाए। वर्तमान में समस्या से छुटकारा पाने के लिए बहुत सी ऐसे वानस्पतिक भोज्य पदार्थ है जो हार्मोन को प्राकृतिक रूप में बिना किसी दवा के संतुलित करने में रामबाण सिद्ध हो रहे हैं। ठीक इसी प्रकार हार्मोन असंतुलन के शारीरिक प्रभाव जैसे मोटापा, वजन का गिरना, महिलाओं में मासिक धर्म में परिवर्तन तथा पुरुषों में यौन इच्छा की कमी तथा मानसिक प्रभाव जैसे कि तनाव, चिड़चिड़ापन एवं संवेगात्मक परिवर्तनों का उपचार करने में योगासन भी काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हो रहे हैं।

REFERENCES

1. https://www.novbharattimes.indiatimes.com/topics/hormonal-imbalance.
2. https://www.livehidndustan.com/health/story-hormonal-imbalance-symptons-causes and treatment-27/80/7,amp.html
3. https://www.1mg.com/hi/patanjali/home-remedies.
4. https://www.lybrate.com/amp/hi/topic/hormonal.imbalance.
5. https://www.1mg.com/hi/patanjali/home-remedies
6. www.livehindustan.com
7. www.onlymyhealth.com
8. www.jagranjosh.com
9. www.punjabkesari.com
10. https://www.1mg.com/hi/patanjali/home-remedies.
11. www.novbharattimes.indiatimes
12. www.onlymyhealth.com

■

योग साधना में श्री गणेश-चिन्तन

रतन कुमार पाठक*

सार-संक्षेप : योग का प्रधान अर्थ है दो अथवा अधिक पदार्थों का एक में मिलना अथवा मिलाना। इस मिलन या संयोग के अनेक आयाम होते हैं- प्रथम आत्मा का परमात्मा से संयोग, द्वितीय स्वस्थ तन और पुलाकित मन का संयोग। इसके अतिरिक्त योग के बहुत से आयाम हैं जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े हैं। योग वह विद्या है जो व्यक्ति को परमात्मा से मिला देती है। योग तन-मन को स्वस्थ कर उसकी प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत कर देता है जिससे मानव के लिए कुछ अप्राप्य नहीं रह जाता है। योग का साधक योगी कहलाता है। किसी को जब हम योगी कहते या मानते है तब मन में यह भावना उठती है कि इस व्यक्ति ने कड़ी आध्यात्मिक साधना की है और लोक कल्याण ही इसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। योग साधना से योगी अग्नि उत्पन्न कर अपने शरीर का अन्तिम संस्कार कर सकता है। भारत देश में योगियों की लम्बी परम्परा है जिनमें नाथ सम्प्रदाय की विशेष महत्ता है। गोरक्षनाथ को गोरखनाथ कहा जाता है। गोरखपुर का नामकरण भी इन्हीं के नाम पर हुआ है। गोरखनाथ मंदिर गोरखपंथ का पीठ होने के कारण यह मठ और इसके महन्त भारत में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। यहाँ के महन्त सिद्ध-पुरुष होते आये हैं। भारत की योग विद्या को विश्व ने पहचाना और संयुक्त राष्ट्र संघ ने 21 जून को विश्व योग-दिवस घोषित कर दिया।

बीज शब्द : योग, ज्ञान योगी, आध्यात्मिक, विद्या, योगी, श्री गणेश

प्रस्तावनाः-

चित्तवृत्ति निरोधः योगः- चित्तवृत्तियों का रोध, निरोध, अवरोध ही योग है। चित्त की वृत्ति अत्यन्त चंचल होती है। योग के माध्यम से इन्द्रियों पर निग्रह करके अर्थात मन आदि पर नियंत्रण करके अपने चित्त को एकाग्र करके परमात्मा में ध्यान केन्द्रित करना ही योग है।

योग साधना में श्री गणेश के स्वरूप पर चिन्तन ही प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रतिपाद्य है। अस्तु इसी पर ध्यान केन्द्रित करना हमारा लक्ष्य है।

ध्यान देने योग्य है कि अनन्त, अखण्ड, अव्यक्त, परम ज्योतिःस्वरूप तथा सर्वथा चिन्मय परमात्मा की सर्वव्याप्ति का अनुभव अथवा बोध ही 'योग' है। इस आध्यात्मिक रहस्य का परिशीलन भगवत्कृपा तथा सत्संग से ही सहज सम्भव है। श्री गणेश जी को षट्चक्र-साधना योग

*आई0सी0एच0आर0 (जे0आर0एफ0), प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, दी0द0उ0, गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर, उ0प्र0

का आधार स्वीकार किया गया है। वे मूलाधार-चक्र में संस्थित रहते हैं। इसी मूलाधार-चक्र में कुण्डलिनी को जगाने की साधना आरम्भ होती है। मूलाधार से निम्न भाग में गोलाकार वायुमण्डल है। उसमें वायु का बीज 'य' कार स्थित है। उस बीज से वायु प्रवाहित होती है। उससे ऊपर अग्नि का त्रिकोणमण्डल है। उसमें अग्नि के बीज 'र' कार से आग प्रकट होती है। वायु तथा अग्नि के साथ मूलाधार में स्थित कुल-कुण्डलिनी सोयी हुई सर्पिणी के आकार वाली है। वह स्वयम्भूलिङ्ग को आवेष्टित करके सोती है। उसे जगाकर ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाया जाता है तथा वहाँ के अमृत में निमग्न कर आत्मचिन्तन किया जाता है, ऐसा वर्णन नारदपुराण के पूर्व-भाग के 65वें अध्याय में उल्लिखित है। मूलाधारचक्र-आधारपद्म का ध्यान करने पर योगी का पाप-समूह नष्ट हो जाता है।[1]

ज्ञातव्य है कि दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान है। स्वाधिष्ठान-कमल के ध्यान से योगी दिव्य सौन्दर्य से सम्पन्न हो उठता है। तीसरे मणिपूर-चक्र-कमल के ध्यान से योगी की सारी इच्छाएं पूर्ण होती हैं। वह शोक-रोग पर विजय पाता है। अनाहत चक्र-कमल चौथा है, इसके ध्यान से योगी त्रिकालज्ञ होता है। पाँचवें विशुद्ध-चक्र-कमल के ध्यान से वह वेदज्ञ बन जाता है। इस चक्र का ध्यानी जब क्रोधयुक्त नेत्र से विश्व को देखता है, तब त्रिलोकी को प्रकम्पित कर देता है। छठे आज्ञा चक्र-कमल के ध्यान से योगी साक्षात् विश्वनाथ का दर्शन करता है और दुःख शोक से परे हो जाता है।[2]

योगी उपर्युक्त चक्र-कमलों का ध्यान करते हुए ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रार-पद्म से प्रवाहित अमृत का पान करता है। यह दिव्य सहस्रार-पद्म मुक्ति प्रदान करता है। इसका नाम 'कैलास' है। कुण्डलिनी-जीव शक्ति को जागृत् करते हुए आत्मा-चौतन्य जीव इस कैलास में शिव का साक्षात्कार कर अमरपद में प्रतिष्ठित हो जाता है।[3]

मूलाधार चक्र में चार दल का कमल है, जो बन्धूक पुष्प के समान लाल है। उसके चारों दलों में (व, श, ष, स) अक्षर अङ्कित हैं। उसमें अपनी शक्ति के साथ मूषक वाहन गणेश जी विद्यमान हैं। वे चारों हाथों में क्रमशः पाश, अकुश, सुधापात्र और मोदक, लेकर उल्लसित है।[4]

निष्कर्ष यह है कि मूलाधार चक्र में स्थित गणेश के पाद-पद्म में यौगिक साधना का समारम्भ कर योगी षट्चक्रों या शट्चक्रो का भेदन कर सहसार-कैलास के शिव का साक्षात्कार कर परम पद में स्थित हो जाता है। योग साधना के आधार मूलाधारल्या श्रीगणेश है-

श्री गणेश जी पूर्णानन्द, परानन्द, पुराण-पुरुषोत्तम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं।[5] उनमें योगस्थ होने पर जीवात्मा की समस्त मायिक भ्रान्तियों और प्रपंचों का अन्त हो जाता है। वे अव्यक्त हैं, परम ज्योति स्वरूप हैं एवं माया से अतीत हैं। उनके योग ध्येय रूप का तात्त्विक विश्लेषण गणेश पुराण के उत्तरखण्ड (३१ १४-१५) में वर्णित है।

श्रीगणेशजी चिदानन्दस्वरूप और वेदों के भी अगोचर हैं। वे निर्गुण और परब्रह्मस्वरूप योग प्रतिपाद्य परम तत्त्व हैं। उनकी संस्तुति है।[6]

योग की साधना भूमि पर श्री गणेश जी सत, असत, व्यक्त, अव्यक्त सब कुछ हैं। ब्रह्मा का कथन है।[7]

श्री गणेश जी इच्छा, ज्ञान, क्रिया-तीनों शक्तियों में व्याप्त हैं, वे मूलाधार चक्र में स्थित हैं।[8]

सृष्टि के आदि में आविर्भूत प्रकृति और पुरुष से परे जो गणेश जी का नित्य ध्यान करता है, वह योगी सभी योगियो में श्रेष्ठ है।[9]

मूलाधार चक्र में योगियों द्वारा गणेश का ध्यान किया जाता है। यह चक्र चार दलों से युक्त कमल है। इसका स्वर्ण-वर्ण है।[10]

मूलाधार चक्र की स्थिति और उसमें संस्थित इष्ट देवता श्री गणेश का वर्णन प्रसिद्ध अघोरी संत बाबा कीनाराम ने भी किया है-'गणेश जी का वर्ण अरुण है, उनका ध्यान और दर्शन करने वाला पण्डित-ज्ञानी हो जाता है।

संत गरीब दास जी का मत है-

'मूलचक्र गनेस बासा रक्त बरन जहें जानिये।''

श्री गणेश जी योगियों के मूलकमल में सदा अधिष्ठित रहते हैं। आचार्य शंकर की उक्ति है कि षजिनकी दन्तकान्ति अत्यन्त रमणीय है, जिनका रूप अचिन्त्य है, जिनका अन्त नहीं है,

जो योगियों के मूलकमल में सदा अधिष्ठित हैं, मैं उन प्रणवस्वरूप, मृत्युजयनन्दन, विघ्नविनाशक एकदन्त श्री गणेश जी का चिन्तन करता हूँ।[11]

योगिराज निवृत्ति नाथ के शिष्य बालयोगीश्वर महात्मा ज्ञानेश्वर ने ज्ञानेश्वरी के पहले अध्याय में अखिल विश्व के मूल बीज ओंकार स्वरूप गणेश जी की यों वन्दना की है-गणेश जी के दोनों चरण 'अकार' हैं, विशाल उदर 'उकार' है और मस्तक का महामण्डल 'मकार' है। अकार, उकार और मकार-इन तीनों के योग से ओंकार होता है, जिसमें सारा शब्द ब्रह्म समाविष्ट है। मैं सद्गुरु की कृपा से अखिल विश्व के मूल बीज-गणेश जी को नमस्कार करता हूँ।[12]

यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि श्री गणेश जी अनादि काल से ही बड़े-बड़े योगीश्वरों द्वारा पूज्य होते चले आ रहे हैं। गणेश पुराण के उपासना-खण्ड में योगेश्वर विष्णु द्वारा श्री गणेश जी के प्राणायाम-पूर्वक ध्यान, मन्त्र जप तथा आराधन का विवरण उपलब्ध होता है। पृथ्वी पर सिद्धि प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु ने सिद्धि क्षेत्र में घोर तप एवं साधना किया। उन्होंने षडक्षर-मन्त्र का जप कर विधिपूर्वक श्री गणेश जी का ध्यान किया। यत्नपूर्वक इन्द्रियों को अपने वश में कर

गणेश जी की आराधना की। चित्त को प्रसन्न करने वाली आवाहन आदि मुद्राओं से पूजा कर योगेश्वर विष्णु ने परम मन्त्र का जप किया।[13]

योगियों के परमाराध्य भगवान् योगेश्वर शिव की दृष्टि में लीला विग्रहधारी, स्वयं-प्रकाश श्रीगणेशजी त्रिगुणातीत परात्पर परमात्मा हैं। वे शुद्ध सत्त्वमय, समस्त जीवों के ईश्वर भुवनेश्वर वे ही पार्वती के पुत्र रूप में प्रकट हुए हैं। भगवान् शिव की पार्वती के प्रति कथन है।[14]

अनादि, अनन्त, विश्वव्यापी एवं सर्वविघ्नविनाशन ये श्री गजानन देव ही सबके लिये सदा पूज्य हैं।[16]

गणेश जी योग विद्या के परमतत्त्वज्ञ स्वीकार किये जाते हैं। उनकी ही वाणी में संयोजित 'श्री गणेश गीता' योग मार्ग प्रकाशिनी कही गयी है। इसमें कर्म, भक्ति और ज्ञान के तत्त्व का अत्यन्त समीचीन विश्लेषण किया गया है।

यह योग मार्ग प्रकाशिका गीता श्री गणेश के वचनामृत का सागर है। इसके भाष्यकार महामति नील कण्ठ की स्वीकृति है, आरम्भ में ही निवेदन है-

क गणनाथवचोऽमृतसागरो जडतरा मम बुद्धिरियं कं वा।
तदपि तं तरणिसंश्रयणेन तितीर्षति।।

'कहाँ तो गणेश वचनामृत का सागर और कहाँ मेरी यह अत्यन्त जड बुद्धि, तथापि गुरू पादुका रूप नौका का सहारा लेकर यह उसके पार जाना चाहती है।[16]

श्री व्यास जी की सूत के प्रति है कि 'मै योग मार्ग प्रकाशिका 'गणेशगीता' का वर्णन करता हूँ, जिसका राजा वरेण्य के पूछने पर श्री गणेश जी ने कथन किया था।[17]

श्री गणेश ने राजा वरेण्य से कहा कि मै योगामृतमयी गीता का प्रवचन करता हूँ मेरे अनुग्रह से आपकी बुद्धि अच्छी तरह संयत है इसे सुनिये।[18]

योगामृतमयी का आशय उस गीता से है, जो ब्रह्म और आत्मा की एकता-अभिन्नता का प्रतिपादन करती है। उपयुक्त श्लोक के भाष्य में महामति नीलकण्ठ का स्पष्टीकरण है।

कीदृशीं योगामृतमयीम् ब्रह्मात्मैक्यप्रतिपादकं शास्त्रं तत्प्रधानम्।, गणेशगीता में योग वहीं है, जिसके द्वारा ज्ञानी संसार से विरक्त होते हैं। जीवन्मुक्त होकर ब्रह्मानन्द पद में लीन हो ज्ञान योगी हृदय में स्थित परब्रह्म का दर्शन करते हैं। वे योग से वशीभूत चित्त में परब्रह्म का ध्यान करते हैं और सम्पूर्ण प्राणियों को आत्मवत् समझते हैं।[19]

गणेश जी योग साधना की पद्धति यों प्रकट करते हैं कि योगी के लिए उचित है कि वह मन से समस्त कर्मो का त्याग कर सुख से जीवन-यापन करे।[20]

''मनसा सकलं कर्म त्यक्त्वा योगी सुखं वसेत्''

उपर्युक्त श्लोक के भाष्य में नीलकण्ठ का कथन है-

योगी-यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान
समाधिरूपै-रष्टभिङ्गैर्युक्तो योगोऽस्यास्तीति योगी। अतएव
मनसा सह सकलं कर्माहं ब्रह्मेतिवाक्यार्थानुसंधानमपि त्यक्त्वा
निर्बीजसमाधिस्थः सम्मुखमखण्डानन्दमनुभवन् वसेत्।'

गणेश जी ने सुख की व्याख्या में कहा कि जो अपनी आत्मा में रमण करते हैं और कहीं भी आसक्त नहीं हैं, वे ही आनन्द का भोग करते हैं। यही अविनाशी सुख है, विषयों में सुख नहीं। जो योगी मुझ परमात्मा ही रमण-सुख-आनन्द का अनुभव करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। देह रहते भी वे अदेह अथवा विदेह हैं। ऐसे योगी तीनों लोकों में ब्रह्मादिकों तथा देवताओं के वन्दनीय हैं-[21]

यह योग प्रतिपाद्य श्री गणेश परम शक्ति-चिन्मय आकाश और वायुरूप हैं, विकारों के आदिकारण, काल के उत्पत्ति-स्थान हैं, अनेक क्रिया और रूप हैं-

निस्संदेह-गणेश जी योगियों के परम ध्येय हैं। वे योग शास्त्र के तत्त्वज्ञ और योग प्राप्य ब्रह्म हैं।

अस्तु स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीन काल से गणपति उपासना प्रत्येक हिन्दू परिवार में मान्य रही है। कला में गणेश की अनेक मूर्तियाँ बननी प्रारम्भ हुई। यौगिक क्रिया के माध्यम से हम गणेश के स्वरूप चिन्तन का ध्यान करते हुए अभीष्ट की प्राप्ति कर सकते हैं।

सन्दर्भः

1. मूलपद्मं यदा ध्यायेद् योगी स्वयम्भूङ्गिकम। तदा तत्क्षणमात्रेण पापौघं नाशयेद् ध्रुवम् **शिवसंहिता ५। ९६**
2. पुमान परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वा नावसीदतिम॥" **शिवसंहिता ५। १३०**
3. अत ऊधर्व दिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदमम॥ कैलासो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति। **शिवसंहिता ५। १९६-१९७**
4. मूलाधारे वादिसान्तबीजयुक्ते चतुर्दले। बन्धूकाभे स्वशक्त्या तु सहितायायुगाय च।। पाशाङ्कुशसु-धापात्रमोदकोल्लासपाणये। नारदपुराण, **पूर्व०. तृ० ६५। ८१-८२**
5. पूर्णानन्दः परानन्दः पुराणपुरुषोत्तमः।। **गणेशपुराण ६५। २।१५। १०३**
6. परब्रह्मस्वरूपाय निर्गुणाय नमो नमः। चिदानन्दस्वरूपाय वेदानामप्यगोचरः।। **गणेशपुराण २। ३७। ४)**
7. सदसद् व्यद्रमव्यक्तं सर्व हि गणनायकः। **गणेशपुराण ११ १२ । ९)**
8. ''त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां नो ध्यायन्ति नित्यम। **गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद् ६**

9. आविर्भूतं च सृष्टयादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम। एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।।
गणपत्युपनिषद्

10. किं च हेमनिभे चक्रे मूलाधारे चतुर्दले। गणेशोऽस्ति.....।।
शंकरदिग्विजय थनपतिसूरिकृत टीका १५। ३५०)

11. नितान्तकान्तदन्तकान्तिमन्तकान्तकात्मज अचिन्त्यरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्त नम् हृदन्तरे निरन्तरं वसन्तमेव योगिनां तमेकदन्तमेव तं विचिन्तयामि संततम। **श्रीगणेशञ्चरत्न ५**

12. अकार चरणयुगुल । उकार उदर विशाल॥ मकार महामंडल । मस्तकाकारे हे तिन्हीं एकवटले । तेथें शब्दब्रह्म कवळलें। तें मियां गुरुकृपा नमिलें । आदिबीज **(ज्ञानेश्वरी १ । १९-२०)**

13 प्राणानायम्य मूलेन ध्यात्वा देवं गजाननम। आवाहनादिमुद्राभिः पूजयित्वा मनोमयैः ।। द्रव्यैर्नानाविधैश्चौव षोडशैशोपचारकैः। जजाप परमं मन्त्रं विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः॥ **गणेशपुराण ॥ १८॥ ६-७)**

14. लीलाविग्रहवानेषः स्वप्रकाशो गुणातिगः । शुद्धसत्त्वमयरू सर्वजीवेशो भुवनेश्वरः॥ परमात्मा गुणातीतः पुत्रतां ते समागतः॥ **गणेशपुराण २ द्य २८। ५.८**

15. अनादिनिधानो देवो जगद्व्यापी गजाननः । अयमेव सदा पूज्यः सर्वविघ्नविनाशनः ।
गणेशपुराण २। १२५ । ३०-३१

16. अथ गीतां प्रवक्ष्यामि योगमार्गप्रकाशिनीम नियुक्ता पृच्छते सूत राज्ञे गजमुखेन या॥
श्रीगणेशगीता १। १४४

17. सम्यग्व्यवसिता राजन् मतिस्तेऽनुग्रहान्मम। शृणु गीतां प्रवक्ष्यामि योगामृतमयीं नृप। **श्रीगणेशगीता ११५**

18. ध्यायन्तः परमं ब्रह्म चित्ते योगवशीकृते। भूतानि स्वात्मना तुल्यं सर्वाणि गणयन्ति ते॥ **श्रीगणेशगीता १। १६**

19. मनसा सकलं कर्म त्यक्त्वा योगी सुखं वसेत **श्रीगणेशगीता ४। १२**

20 आनन्दमष्ठनुतेऽसक्तः स्वात्मारामो निजात्मनि। अविनाशि सुखं तद्धि न सुखं विषयादिषु ॥ कः स योगीन्द्रः केवलं मयि संगतः। च देवानां स वन्यः स्याजगत्त्रये॥ **श्रीगणेशगीता ४ । २१.५ । १८**

21. प्रकाशस्वरूपं नभोवायुरूपं विकारादिहेतुं कलाकालभूतम अनेकक्रियानेकशक्तिस्वरुपं सदा शक्तिरूपं गणेशं नमामः॥ **गणेशपुराण, उपा० १३ । ११** ■

हर्षोत्तर कालीन थानेश्वर (647-1030 ई0 तक)

डॉ. इक्ष्वाकु प्रताप सिंह*

सार-संक्षेप : सम्राट हर्ष की मृत्यु 647 ई. के पश्चात् पुष्यभूति वंश का प्रशासन कमजोर हो गया, जिसके फलस्वरूप उसके साम्राज्य का पतन हो गया। ऊपरी गंगाघाटी क्षेत्र जिस पर उसने शासन किया था, वह अराजकता और युद्ध के वातावरण के कारण खतरे में था। भारत के पश्चिमी तथा उत्तर-पश्चिम भागों में हर्षवर्द्धन के समेकित साम्राज्य के विघटन के कारण कई स्वतंत्र राज्य विकसित हो गये थे। समान्यत: यह काल परास्परिक संघर्ष एवं प्रतिद्वन्द्विता का काल था। हर्ष के पश्चात उत्तर भारत की राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु कन्नौज बन गया। जिसपर अधिकार करने के लिए संघर्ष प्रारम्भ हुआ। तत्कालीन परिस्थितियों में थानेश्वर में 6वीं शताब्दी से लेकर 10वीं शताब्दी तक येनकेन कारणों से प्रतिहारों ने शासन किया। 10वीं. शताब्दी में प्रतिहार साम्राज्य के पतनोपरान्त उत्तर भारत में एक बार पुन: राजनीतिक विघटन का चरण शुरू हो गया। इस अवधि में राज्यवंशों के बीच आन्तरिक संघर्षो के मध्य मुस्लिम आक्रांताओं का आक्रमण प्रारम्भ हुआ।

बीज शब्द : थानेश्वर, ह्वेनसांग, मा-ट्वान-लिन्, तिब्बत, नेपाल, यशोवर्मन, ललितादित्य, मुक्तापीड़, नागभट्ट प्रथम, मिहिरभोज, सुबुक्तगीन और महमूद गजनवी।

सम्राट हर्षवर्द्धन की मृत्यु (647-648 ई.) के पश्चात् वर्द्धन-साम्राज्य पतन की तरफ अग्रसर होने लगा था। चीनी यात्री ह्वेनसांग (श्वान्-च्वांग) के माध्यम से हर्ष ने चीन के शासक से अच्छा सम्बन्ध स्थापित कर लिया था और दोनों शासकों के मध्य दूत मंडलों का आदान-प्रदान होने लगा था। इसका विवरण 13वीं सदी के मा-ट्वान-लिन नामक चीनी लेखक से प्राप्त होता है। उसके अनुसार ह्वेनसांग के भारत से वापस जाने के पश्चात् चीनी सम्राट ने 646 ई. सन् में बैंड्ग-ह्वान्-शे के नेतृत्व में एक नवीन दूतमंडल भारत भेजा था। परन्तु दूतमंडल जब भारत पहुँचा तब तक हर्ष की मृत्यु हो चुकी थी और हर्ष के मंत्री अर्जुन अरूणाश्व (अ-ल-न-शुन) ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया था। मा-ट्वान्-लिन् ने अर्जुन को तीरभुक्ति (तिनो-फो-ति) का राजा बताया है। अर्जुन ने चीनी दूतमंडल को देश में प्रवेश करने से रोका, लूटा और कैद कर लिया, लेकिन

*सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

बैंङ्ग-ह्वान्-शे अर्जुन की कैद से बच निकलने में सफल रहा। ऐसी जानकारी प्राप्त होती है कि उसने अर्जुन को हराने के लिए तिब्बत और नेपाल के शासकों से सहायता मांगी थी।[1] उस समय तिब्बत के शासक श्राङ्ग्ब्तुशान-स्गैम्पो 1200 चुने सिपाही तथा नेपाल के तत्कालीन शासक अंशुवर्मा ने 7000 घुड़सवारों की सहायता प्राप्त करने के पश्चात उसने च-पु-होलो (छपरा)[2] नामक नगर पर आक्रमण कर दिया था। इस आक्रमण में अर्जुन किसी तरह से बच निकला तथा बैंङ्ग-ह्वान्-शे विजय प्राप्त करता हुआ तिन्-टो-वेई (गंडकी) नदी पार कर गया। उस समय उसके भय के कारण तत्कालीन भारत के 560 नगरों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर लिया था। ऐसा वर्णन प्राप्त होता है कि उसने अर्जुन को बन्दी बनाया तत्पश्चात उसे चीन ले गया जहॉ कारागार में ही अर्जुन की मृत्यु हो गयी।[3] यदि मा-ट्वान-लिन् नामक चीनी लेखक का यह कथन सत्य है तो बैंङ्ग-ह्वान्-शे का अभियान भारत पर होने वाला चीन का सबसे बड़ा आक्रमण कहा जा सकता है। यद्यपि भारतीय साहित्य में कहीं भी इस आक्रमण का कोई उल्लेख नहीं है। इस सन्दर्भ में डॉ. आर. सी. मजूमदार[4] का मत है कि हर्ष के बाद साम्राज्य के बँटवारे के लिए हुए संघर्ष करना पड़ा। किन्तु यह युद्ध अपनी भयंकरता और परिणामों में इतना भी बड़ा नहीं था, जितना की मा-ट्वान-लिन के विवरण से लगता है। नेपाल और तिब्बत के इतिहास में भी इस अभियान की कहीं कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।[5]

हर्ष की मृत्यु (647-648ई.) के पश्चात हर्ष के पैतृक राज्य थानेश्वर में अराजकता एवं अव्यवस्था का वातारण छा गया था। राधेशरण[6] के अनुसार हर्षचरित में भण्डी का वर्णन प्राप्त होता है जिसका सम्बन्ध हर्ष से था। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् उसके साम्राज्य में फैली अराजकता का लाभ उठाकर भण्डी ने थानेश्वर को अपने अधिकार में ले लिया तथा उसके वंश ने प्रतिहार शासक वत्सराज के उदय तक शासन किया। बुद्ध प्रकाश[7] के अनुसार इस समय उत्तर की ओर से हूणों एवं तुर्कों ने पंजाब पर अधिकार करने के लिए कई बार आक्रमण किए जिससे श्रीकंठ जनपद भी उनके आक्रमणों का निशाना बना। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो ने स्थानीय एवं वाह्य आक्रमणकारियों के थानेश्वर सहित सम्पूर्ण उत्तर भारत पर अधिकार करने हेतु उचित वातावरण प्रदान किया था जिसके क्रम में भारत के पश्चिमोत्तर भाग पर अधिकार हेतु अरबो का आक्रमण हुआ। यद्यपि कि अरबों का यह आक्रमण असफल सिद्ध हुआ। ऐतिहासिक स्त्रोतों के रूप में ग्वालियर लेख ज्ञात होता है कि प्रतिहार शासक नागभट्ट प्रथम ने मलेच्छों (अरबों) को पराजित किया था। उत्तर पश्चिम में कश्मीर एवं कांगड़ा की ओर से ललितादित्य मुक्तापीड़ तथा यशोवर्मन ने अरबों को रोका। कल्हण अपने ग्रन्थ राजतरंगिणी[8] में कहता है कि यशोवर्मन एवं ललितादित्य पहले अच्छे मित्र थे, लेकिन बाद में महत्वाकांक्षाओं के कारण उनमें तनाव बढ़ गया तथा दोनों में युद्ध हुआ। इस युद्ध में ललितादित्य विजय रहा तथा उसका कालका (हरियाणा)तक अधिकार हो गया। ललितादित्य की मृत्यु 760 ईसवी में हुई। उसके बाद वर्तमान का यह क्षेत्र एकबार पुनः

हरियाणा अस्थिर हो गया। भागलपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि कन्नौज पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने के बाद धर्मपाल उत्तरी भारत की सर्वोच्च शक्ति बन गया तथा थानेश्वर (हरियाणा) भी उसके अधिकार क्षेत्र में आ गया। आर. सी. मजूमदार के अनुसार नागभट्ट द्वितीय (800-833ई) के समय थानेश्वर पर पूर्ण रूप से प्रतिहारों का अधिकार रहा। नागभट्ट द्वितीय के बाद उसके पुत्र रामभद्र ने शासन किया। रामभद्र के तत्पश्चात उसका पुत्र मिहिरभोज प्रथम (836-885ई.) सिंहासन पर बैठा। ग्वालियर अभिलेख में उसकी उपाधि आदि वराह मिलती है तथा इसका राज्य उतरी भारत में वर्तमान हरियाणा, पंजाब, पश्चिमी भारत, कश्मीर, सौराष्ट्र एवं गुजरात तक विस्तृत था। हरियाणा में पेहवा (कुरुक्षेत्र) में 822 ई. सन् की भोज की एक प्रशस्ति मिलती है जिससे यह प्रमाणित होता है कि उत्तर-पश्चिम में हरियाणा के प्रदेश इसके साम्राज्य में शामिल थे। मिहिरभोज के पश्चात उसका पुत्र महेन्द्रपाल प्रथम (885-910 ई.) शासक बना। महेन्द्रपाल प्रथम ने न केवल अपने पिता से उत्तराधिकार में प्राप्त साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखा, अपितु उसका विस्तार भी किया था। प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल के बाद उसका पुत्र महिपाल प्रथम 914 ईसवी में सिंहासन पर बैठा। महिपाल प्रथम का राज कवि राजशेखर उसे 'आर्यावर्त का महाराजाधिराज' कहता है। राजशेखर महिपाल की विजयों का वर्णन करता हुआ कहता है कि उसने मुरलों, मेकलों, कलिंगो, केरलों, कुलूटों, एवं रमठों को पराजित किया था। इनमें रमठ पंजाब की एक जाती थी। राजशेखर की काव्य मीमांसा[9] के अनुसार यह जाति हरियाणा के प्रयुद्क (पेहवा) के उत्तर में रहती थी। हरियाणा में प्रतिहारों के सामंत तोमर थे। इनका केंद्र पेहवा (कुरूक्षेत्र)था। 10वीं सदी के अंत में प्रतिहारों की स्थिति का लाभ उठाकर तोमर स्वतंत्र हो गए। उनके एक शासक आँगपाल ने ढिल्लिका नामक नगर बताया तथा उसको हरियाणा की राजधानी बनाया।[10]

मुस्लिम आक्रमणकारी-सुबुक्तुगीन ने 986-87ई. में हिंदूशाही वंश के शासक जयपाल से युद्ध शुरू किया तथा उसे पराजित कर पंजाब की कुछ सैनिक चौकियों पर अधिकार कर लिया। इसके परिणाम स्वरूप जयपाल संधि करने के लिए बाध्य हुआ। यद्यपि कि कुछ समय पश्चात् जयपाल ने संधि तोड़ दी तथा कन्नौज, हरियाणा के तोमर शासकों, चंदेल, चाहमान एवं अन्य शासकों का एक संघ तैयार किया।[11] विदेशी आक्रमण के विरुद्ध हिंदू राजाओं का यह संघ भारतीय इतिहास में प्रथम घटना है। लमगानके पास हिंदू संघ एवं सुबुक्तुगीन के बीच कई दिनों तक युद्ध चलता रहा। किंतु अंत में यह संघ पराजित हुआ इसके परिणाम स्वरूप लमगान से पेशावर तक का क्षेत्र सुबुक्तुगीन के अधीन आ गया हिंदूशाही वंश के पतन से दिल्ली के तोमरों जो पहले प्रतिहारों के सामंत थे तथा पड़ोस के क्षेत्र पेहवा, सिरसा, हांसी आदि पर शासन कर रहे थे। अब इनका तुर्कों के साथ संघर्ष आवश्यक हो गया। इन तोमरों के बारे में प्रतिहार शासक महेंद्रपाल के पेहवा अभिलेख में पहली बार ऐतिहासिक रूप से जानकारी मिलती है। इस अभिलेख में उन तोमर राजाओं की वंशावली दी गई है। जिन्होंने कुरुक्षेत्र एवं हरियाणा के अन्य क्षेत्रों पर शासन किया था। एच.

एच. त्रिवेदी के अनुसार तोमरों में सबसे पहला शासक जाऊल या जाजू था जो कुछ समय बाद प्रतिहारों से स्वतंत्र हो गया था। जाजू ने अनंगपुर को अपनी राजधानी बनाया जो यमुना नदी पर स्थित है। दिल्ली के संस्थापक अनंगपाल तोमर की मृत्यु के बाद सभी तोमर शासक सामन्त ही बने रहे तथा त्रिपक्षीय संघर्ष का जो भी विजेता बनता था, उसी के साथ बने रहे। त्रिपक्षीय संघर्ष के अंत के बाद अंततः हरियाणा के तोमर स्वतंत्र हो गए। परंतु कुछ समय पश्चात उन्हें उत्तर पश्चिम की तरफ से तुर्क आक्रमण तथा बाद में चौहानों के आक्रमण का सामना करना पड़ा।

महमूद गजनवी ने भारत पर 1000 ईसवी से लेकर 1027 ईसवी तक 17 बार आक्रमण किया। इन्हीं आक्रमणों के दौरान महमूद ने हरियाणा पर आक्रमण किए। इस आक्रमण में अनेक कारण रहे थे। एक हरियाणा के स्थानेश्वर शासक के पास भी श्रीलंकाई नस्ल के उपयोगी हाथी थे ,जो युद्धों के लिए प्रसिद्ध थे। यहां का प्राचीन चक्र स्वामी का मंदिर भी बहुत ज्यादा संपन्न था। यह नगर भौगोलिक रूप से भी बहुत महत्वपूर्ण था तथा व्यापारिक रूप से भी विकसित था।[12] इन सब कारणों से महमूद का भारत पर आक्रमण हरियाणा पर भी हुआ। हरियाणा के तोमर शासक जयपाल ने हांसी में महमूद गजनवी का सामना करने का निश्चय किया लेकिन महमूद ने तो तोमरों की शक्ति को देखते हुए अपनी सेना को नारायणगढ़ (अंबाला) के पास से ही मोड़ लिया।

स्थानेश्वर पर महमूद का दूसरा आक्रमण- 1014 ईस्वी में पुनः एक शक्तिशाली सेना सहित महमूद हरियाणा की तरु निकल पड़ा। महमूद जब थानेश्वर पर आक्रमण के लिए आगे बढ़ा तो मार्ग में उसे सतलुज नदी के पूर्वी किनारे पर राजाराम नामक हिंदू राजा से युद्ध करना पड़ा।[13] इसके बाद वह स्थान स्थानेश्वर तरफ बढ़ा। यहां के शासक तोमर जयपाल ने उत्तरी भारत के हिंदू शासकों से सहायता की अपील की। परंतु किसी ने सहायता नहीं दी लेकिन फिर भी स्थानेश्वर के लोग बड़ी वीरता से लड़े। महमूद ने अनेक लोगों को दास बना लिया तथा स्थानेश्वर को जी भर कर लूटा। महमूद ने अनेक मंदिरों को लूटा तथा चक्रास्वामी की मूर्ति को तोड़कर उसे गजनी ले गया। अलबेरूनी ने लिखा है कि उसने चक्रास्वामी की मूर्ति को गजनी के घुड़दौड़ के मैदान में पड़ी हुई देखी थी। फरिश्ता ने स्थानेश्वर को जगसोम चक्र स्वामी कहा है तथा स्थानेश्वर पर आक्रमण के परिणामों पर दृष्टि डाली है।

सन्दर्भः

1. पाठक, विशुद्धानंद; उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 2002, पृष्ठ-75

2. बुध प्रकाश; ऐस्पेक्ट ऑफ इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, नवज्योति प्रकाशन, वाराणसी, 1964,पृष्ठ-101

3. स्मिथ, वी.ए.; अर्ली हिस्ट्री, ऑफ इण्डिया, ओरिएण्टल प्रेस, लंदन, 1906 ई., पृष्ठ-367

4. मजूमदार, आर.सी.; क्लासीक्ल ऐज, ओरिएंटल प्रेस मद्रास, 1958 ई., पृष्ठ-125

5. पाठक, विशुद्धानंद; उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, उ.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 2002 ई., पृष्ठ-75

6. राधेशरण; प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, लक्ष्मण दास मनोहर दास प्रकाशन, कानपुर, 2002 ई., पृष्ठ-309

7. बुध प्रकाश; ऐतिहासिक अवलोकन हरियाणा, सिटि पब्लिकेशन हाऊस, 1964 ई., पृष्ठ-126

8. कल्हणकृत-राजतरंगिणी, संपादक पाण्डेय, आर. एस; प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक शासक, पृष्ठ-211

9. राजशेखरकृत-काव्य मीमांसा; सम्पादक कुशल सिंह, संस्कृति सीरीज बडौदा, 2001 ई. पृष्ठ-93

10 बुध प्रकाश; ऐतिहासिक अवलोकन हरियाणा, सिटि पब्लिकेशन हाऊस, 1964 ई., पृष्ठ-434

11 मिश्रा, जयशंकर; 11वीं सदी का भारत, भारत प्रेस पब्लिकेशन हाऊस, पटना, 2000 ई., पृष्ठ-68-69

12. शुक्ल, एस.पी; युग युगीन कुरुक्षेत्र, अम्बा प्रकाशन समिति, हिसार, 1990 ई., पृष्ठ-361

13. भार्गव, वी. एस.; मध्यकालीन भारतीय इतिहास, कलिंग बुक डिपो, 1996 ई., पृष्ठ-16

■

मौर्ययुगीन विवाह एवं स्त्रियों की अवस्था

डॉ. मनीषा शरण*

सार-संक्षेप : मौर्य युग में बहुविवाह की प्रथा विद्यमान थी। मेगस्थनीज के अनुसार भारतीय लोग बहुत-सी स्त्रियों से विवाह करते थे। कुछ को वे दत्तचित्त सहधर्मिणी बनाने के लिए विवाह करके लाते थे और कुछ को केवल आनन्द के प्रयोजन से और घर को सन्तान से भर देने के लिए। कौटिलीय अर्थशास्त्र से भी मेगास्थनीज के इस कथन की पुष्टि होती है। वहाँ लिखा है कि समुचित वृत्ति प्रदान करके पुरुष बहुत-सी स्त्रियों से भी विवाह कर सकता है। स्त्रियाँ पुत्रों के लिए ही होती हैं। पुनर्विवाह की प्रथा तो मौर्य युग में थी ही, पर पुरुष एक समय में एक से अधिक स्त्रियों से भी विवाह कर सकता था।

बीज-शब्द : मेगास्थनीज, पुनर्विवाह, सहधर्मिणी, ब्रह्म विवाह, ऋत्विज, प्रजापत्य।

मौर्य युग में बहुविवाह की प्रथा विद्यमान थी। मेगस्थनीज के अनुसार भारतीय लोग बहुत-सी स्त्रियों से विवाह करते थे। कुछ को वे दत्तचित्त सहधर्मिणी बनाने के लिए विवाह करके लाते थे और कुछ को केवल आनन्द के प्रयोजन से और घर को सन्तान से भर देने के लिए।[1] कौटिलीय अर्थशास्त्र से भी मेगस्थनीज के इस कथन की पुष्टि होती है। वहाँ लिखा है कि समुचित वृत्ति प्रदान करके पुरुष बहुत-सी स्त्रियों से भी विवाह कर सकता है। स्त्रियाँ पुत्रों के लिए ही होती हैं।[2] पुनर्विवाह की प्रथा तो मौर्य युग में था ही, पर पुरुष एक समय में एक से अधिक स्त्रियों से भी विवाह कर सकता था।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया गया है-

(1) ब्रह्म विवाह - कन्या को अलंकृत (आभूषण आदि से सजाकर) कर जब कन्यादान द्वारा विवाह हो, तो ऐसे विवाह को 'ब्रह्म' कहते थे।

(2) प्रजापत्य विवाह - जब पुरुष और स्त्री परस्पर मिलकर धर्मचर्या का पालन करके विवाह सम्बन्ध को स्वीकार करें, तो ऐसा विवाह 'प्रजापत्य' कहलाता था।

(3) आर्ष विवाह - कन्यापक्ष द्वारा गौओं का एक जोड़ा वरपक्ष को प्रदान कर जो विवाह किया जाता था, उसकी 'आर्ष' संज्ञा थी।

(4) दैव विवाह - यज्ञवेदी के समक्ष ऋत्विज की स्वीकृति से जो कन्यादान किया जाता था, उसे

*श्री बैद्यनाथ अपार्टमेण्ट, सी-103, शुक्ला कॉलोनी, हिनू चर्च रोड, हिनू, राँची (झारखण्ड), मोबाइल-9934835442

'दैव' कहते थे।

(5) गान्धर्व विवाह – कन्या और वर परस्पर प्रेम के कारण स्वयं जो विवाह करते थे, वह गान्धर्व'–एक साथ विवाह कहलाता था।

(6) असुर विवाह – शुल्क (दहेज) देकर जो विवाह किया जाता था, उसे 'असुर' कहते थे।

(7) राक्षस विवाह – कन्या को बलपूर्वक ले जाकर विवाह करने पर 'राक्षस' विवाह माना जाता था।[2]

(8) पैशाच विवाह – सोयी हुई या बेसुध स्त्री को ले जाकर उससे जो विवाह किया जाता था, उसे 'पैशाच' विवाह कहा जाता था।[3]

मौर्य युग में ये आठों प्रकार के विवाह प्रचलित थे। दहेज (शुल्क) देकर विवाह की प्रथा उस काल में बहुत लोकप्रिय नहीं थी। कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित आठ प्रकार के विवाहों में केवल 'असुर' ही ऐसा विवाह है, जिसमें शुल्क प्रदान किया जाता था। इस सम्बन्ध में नियार्कस का यह कथन उल्लेखनीय है– भारतीय लोग दहेज लिये या दिये बिना ही विवाह करते हैं। जब कोई स्त्री विवाह–योग्य आयु की हो जाती है, तो उसके पिता उसे समाज के सम्मुख ले जाते हैं, ताकि ऐसे पुरुष उसे अपनी सहधर्मिणी के रूप में वर सकें, जो कि मल्लयुद्ध, मुष्टियुद्ध, दौड़ आदि में विजयी हुए हों, या जिन्होंने किसी अन्य पौरुषयुक्त साम्मुख्य में अपनी उत्कृष्टता प्रदर्शित की हो।[4] नियार्कस का यह कथन एक प्रकार के स्वयंवर को सूचित करता है, जो प्राचीन भारत में बहुत लोकप्रिय था।

कौटिल्य के अनुसार, पहले चार प्रकार के विवाह (ब्रह्म, प्रजापत्य, आर्ष और दैव) 'धर्म्य' (धर्म के अनुकूल) होते हैं, और साथ ही 'पितृप्रमाण' भी। पितृप्रमाण का अभिप्राय यह है कि उनके लिए पिता की स्वीकृति या अनुमति ही पर्याप्त होती है। पिछले चार प्रकार के विवाहों के लिए पिता और माता दोनों की अनुमति आवश्यक मानी गयी है।[5] विवाह के सम्बन्ध में कौटिल्य का यह मत था कि वे सब प्रकार के विवाह नियमानुकूल तथा स्वीकार्य हैं, जिनसे सब सम्बद्ध व्यक्ति सन्तोष अनुभव करें। विवाह का आधार पारस्परिक प्रीति ही थी, और इस आधार पर निर्धारित हुए विवाह कानून द्वारा रोके नहीं जाते थे।[6]

यद्यपि 'असुर' ही एकमात्र इस प्रकार का विवाह था, जिसमें शुल्क की मात्रा पहले से ही निर्धारित कर ली जाती थी, पर अन्य प्रकार के विवाहों में भी कुछ शुल्क प्रदान करने की प्रथा विद्यमान थी। इस धन पर स्त्री का अधिकार माना जाता था, और अर्थशास्त्र में इसी को 'स्त्रीधन' की संज्ञा दी गयी है और उसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की व्यवस्थाओं का उल्लेख किया गया है। स्त्रीधन प्रधानतया दो प्रकार का होता था, वृत्ति और आबध्य। कौटिल्य के अनुसार स्त्री के लिए निर्धारित वृत्ति की मात्रा दो सहस्र (पण) से अधिक होनी चाहिए। आबध्य (आभूषण आदि) की

मात्रा कितनी हो, इस विषय में कोई नियम नहीं था।[7] सामान्य दशा में इस स्त्रीधन को खर्च नहीं किया जा सकता था। पर यदि पति कहीं विदेश गया हुआ हो और उसने अपने परिवार के भरण-पोषण का कोई प्रबन्ध न किया हो, तो पत्नी इस धन से अपने पुत्र, पुत्रवधू और अपना निर्वाह कर सकती थी। बीमारी, दुर्भिक्ष आदि प्राकृतिक विपत्तियों के समय पति भी इसमें स्त्रीधन को व्यय कर सकता था।[8] पहले चार प्रकार के 'धर्म' विवाहों में पति और पत्नी पारस्परिक सहमति द्वारा साधारण दशा में भी स्त्रीधन को खर्च कर सकने का अधिकार रखते थे। पर गान्धर्व और असुर विवाहों में यदि स्त्रीधन को खर्च कर लिया जाए, तो उसे प्रयुक्त करने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक था कि वह उसे सूद के साथ वापस कर दे। राक्षस और पैशाच विवाहों में स्त्री-धन का व्यय किया जाना निषिद्ध था।[9] इन पद्धतियों के अनुसार विवाहित पति-पत्नी या उनके कोई कुटुम्बीजन यदि स्त्रीधन को खर्च करें तो उसे 'स्तेय' (चोरी) माना जाता था।

पति की मृत्यु हो जाने पर यदि स्त्री धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहे, तो यह आवश्यक था कि स्त्रीधन उसको सुपुर्द कर दिया जाए। इसी प्रकार यदि स्त्री पुनर्विवाह करना चाहे, तो भी उसका स्त्रीधन उसे प्रदान कर दिया जाता था।[10]

पुनर्विवाह की प्रथा भी मौर्यकाल में प्रचलित थी। पुरुष और स्त्री - दोनों को ही पुनर्विवाह का अधिकार था। पुरुषों के पुनर्विवाह के विषय में कौटिल्य ने निम्नलिखित नियम प्रतिपादित किये हैं- यदि किसी स्त्री के आठ साल तक सन्तान उत्पन्न न हो या यदि स्त्री वन्ध्या हो, तो उसका पति आठ साल तक प्रतीक्षा करे। यदि स्त्री के सन्तान उत्पन्न तो होती है, पर वह मरी हुई पैदा हो, तो दस साल तक प्रतीक्षा की जाए। यदि स्त्री के केवल कन्याएँ ही उत्पन्न होती हों, तो बारह साल तक प्रतीक्षा की जाए। इस अवधि के अनन्तर पुत्र की इच्छा से पति दूसरा विवाह कर सकता है। यदि इस नियम का अतिक्रमण कर कोई पुरुष पुनर्विवाह करे, तो उसके लिए यह आवश्यक होगा कि विवाह के समय प्राप्त शुल्क और स्त्रीधन के साथ-साथ समुचित 'आधिवेदनिक' (क्षतिपूर्ति का धन) भी अपनी पत्नी को प्रदान करे और साथ ही कम-से-कम चौबीस पण दण्ड भी।[11]

पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी पुनर्विवाह कर सकती थीं। पति की मृत्यु हो जाने पर तो स्त्रियाँ पुनर्विवाह कर ही सकती थीं पर अनेक दशाओं में वे पति के जीवित होते हुए भी दूसरा विवाह करने का अधिकार रखती थीं। यदि स्त्री के कोई सन्तान न हो, और उसका पति विदेश गया हुआ हो, तो उसके लिए कम-से-कम एक वर्ष प्रतीक्षा करना आवश्यक था। पर यदि स्त्री के सन्तान हो, तो उसे अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी होती थी। यदि स्त्री के निर्वाह की व्यवस्था कर दी गयी हो, तो उसके लिए दुगुने समय तक प्रतीक्षा करना आवश्यक था। यदि परदेश गये हुए पति ने अपनी पत्नी के भरण-पोषण की कोई व्यवस्था न की हो, तो उसके निकट सम्बन्धियों से यह आशा की जाती थी कि वे स्त्री का चार से आठ साल तक भरण-पोषण करेंगे। यह अवधि बीत

जाने पर स्त्री को पुनर्विवाह की स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती थी। पर इन नियमों के कतिपय अपवाद भी थे। यदि कोई ब्राह्मण विद्या के अध्ययन के लिए कहीं अन्यत्र गया हुआ हो, तो उसकी पत्नी के लिए यह नियम था कि सन्तानविहीन होने की दशा में वह दस साल तक प्रतीक्षा करे और सन्तान होने पर बारह साल। इस अवधि के बीत जाने पर भी यदि पति वापस न लौट आए, तो स्त्री पुनर्विवाह कर सकती थी। यदि राजपुरुष कहीं बाहर गया हुआ हो, तो उसकी पत्नी के लिए यह आवश्यक माना जाता था कि वह उसकी मृत्यु तक पुनर्विवाह न कर सके। पर पति के चिरकाल तक प्रवसित रहने की दशा में पत्नी को इस बात की अनुमति थी कि वह अपने पति के सवर्ण किसी अन्य व्यक्ति से सन्तान प्राप्त कर सके। ऐसा करना मौर्य युग में बदनामी (अपवाद) की बात नहीं समझी जाती थी।[12] इसी प्रकार के अन्य भी अनेक नियम कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रतिपादित हैं। कम आयु की विवाहित स्त्रियों के लिए पुनर्विवाह कर सकना बहुत सुगम था, उस दशा में जब कि पति विदेश चला गया हुआ हो और उसका भी समाचार प्राप्त न हो रहा हो तो पत्नी के लिए केवल पाँच मास तक प्रतीक्षा करना पर्याप्त था। इस अवधि तक पति के वापस लौटने या उसका समाचार प्राप्त करने की प्रतीक्षा करके स्त्री धर्मस्थ की अनुमति से पुनर्विवाह कर सकती थी।[13] यदि पति चिरकाल के लिए विदेश चला गया हो, या उसने प्रव्रत्या ग्रहण कर ली हो, और या उसकी मृत्यु हो गयी हो, तो स्त्री को अधिकार प्राप्त हो जाता था। पुनर्विवाह के लिए यह अच्छा माना जाता था कि स्त्री अपने पति के भाई या निकट सम्बन्धी या सगोत्र पुरुष को अपने पति के रूप में वरण कर ले। अन्य पुरुष से विवाह कौटिल्य को अभिमत नहीं था।[14]

मौर्य युग में तलाक की प्रथा भी विद्यमान थी। स्त्री और पुरुष दोनों को ही तलाक का अधिकार प्राप्त था। इस विषय में कौटिल्य की निम्नलिखित व्यवस्थाएँ उल्लेखनीय हैं–[15]

- यदि पति का चरित्र अच्छा न हो, यदि वह परदेश चला गया हो, यदि वह राजद्वेषी हो, यदि स्त्री को उससे प्राणों का भय हो, यदि वह पतित हो गया हो और या यदि वह नपुंसक हो, तो पत्नी उसका परित्याग कर सकती है।
- यदि स्त्री पति के प्रति विद्वेष (घृणा) रखती हो, तो वह उस (पति) की इच्छा के विरुद्ध तलाक नहीं कर सकती। इसी प्रकार स्त्री से द्वेष (घृणा) करता हुआ पति उस (स्त्री) की इच्छा के विरुद्ध तलाक नहीं कर सकता। पर पारस्परिक द्वेष (घृणा) से मोक्ष (तलाक) हो सकता है।[16]
- यदि स्त्री से तंग आकर पुरुष उससे छुटकारा पाना चाहे, तो जो धन स्त्री पक्ष से उसे प्राप्त हुआ हो, वह उसे वापस लौटा देना होगा। परन्तु यदि स्त्री पति से तंग आकर उससे छुटकारा पाना चाहे, तो उसका धन उसे नहीं लौटाया जाएगा।[17]

पर इस प्रसंग में यह ध्यान में रखना चाहिए कि तलाक की अनुमति पिछले चार प्रकार के विवाहों (गान्धर्व, असुर, राक्षस और पैशाच) में ही दी जा सकती थी। पहले चार प्रकार के 'ध र्म' विवाहों में तलाक की अनुमति नहीं थी यद्यपि उनमें भी विशेष अवस्थाओं (यथा पति के चिरकाल तक प्रवासित रहने या उसके नपुंसक होने आदि) में स्त्री को पुनर्विवाह कर लेने या नियोग द्वारा सन्तान प्राप्त कर सकने का अवसर था।[18]

यद्यपि कौटिलीय अर्थशास्त्र में स्त्रियों को पुनर्विवाह की अनुमति प्रदान की गयी है, और पति की मृत्यु हो जाने पर पत्नी का पुनर्विवाह कर लेना सर्वथा समुचित माना गया है, पर फिर भी मौर्य युग में ऐसी विधवाओं की सत्ता थी, जो पुनर्विवाह न करके स्वतन्त्र रूप से जीवन बिताया करती थीं। कौटिल्य ने ऐसी स्त्रियों को 'स्वच्छन्दवासिनी (स्वतन्त्र रूप से रहनेवाली) विधवा' कहा है।[19] सम्भवत: ऐसी स्त्रियाँ पुनर्विवाह न कर स्वतन्त्र जीवन बिताना पसन्द करती थीं जो कि सम्पन्न हों। कौटिल्य ने इनके लिए 'आढयविधवा' संज्ञा का प्रयोग किया है।[20] विशेष परिस्थितियों में राज्य को जब धन की असाधारण रूप से आवश्यकता होती थी तो अनेकविध उपायों से इन आढय विधवाओं से भी धन की प्राप्ति की जाती थी। गुप्तचर इनसे धन प्राप्ति के ऐसे उपायों का भी प्रयोग करते थे, जिन्हें सामान्य दशा में समुचित नहीं समझा जा सकता।[21]

स्त्रियों का जीवन केवल विवाह करके सन्तानोत्पत्ति ही नहीं था। कौटिलीय अर्थशास्त्र में परिव्राजिकाओं का भी उल्लेख किया गया है, जिन्हें समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त था। कौटिल्य ने इनके साथ 'कृतसत्कारा' विशेषण का प्रयोग किया है।[22] परिव्राजिकाओं का उपयोग गुप्तचर विभाग में भी किया जाता था, और कौटिल्य ने इसी प्रसंग में उन्हें निर्दिष्ट किया है।

वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में जो चित्र अर्थशास्त्र के अनुशीलन से हमारे सम्मुख उपस्थित होता है, वह स्मृतिग्रन्थों और धर्मशास्त्रों में निरूपित जीवन से बहुत भिन्न है। तलाक, नियोग और पुनर्विवाह के सम्बन्ध में जो विस्तृत परिचय अर्थशास्त्र से मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इससे ज्ञात होता है कि मौर्य युग में पुनर्विवाह बहुत प्रचलित था और विवाह-सम्बन्ध का उच्छेद कर सकना भी कठिन नहीं था। परिवार में स्त्री की स्थिति पर्याप्त रूप से सुरक्षित थी, क्योंकि स्त्रीधन पर उसका पूर्णरूप से स्वत्व माना जाता था और उसका उपयोग स्त्री अपने और अपनी सन्तान के भरण-पोषण के लिए कर सकती थी। पतिकुल के अन्य व्यक्तियों का उस पर अधिकार नहीं माना जाता था।

मौर्य युग में स्त्रियों को उन्नत नहीं कहा जा सकता। विवाहित स्त्रियों को घर से बाहर जाने-आने की स्वतन्त्रता उस काल में प्राप्त नहीं थी। उन्हें प्राय: घर में ही रहना होता था, और पति की इच्छा के विरुद्ध वे कार्य नहीं कर सकती थीं। कौटिल्य ने लिखा है- यदि कोई स्त्री अपने पति के कुल (घर) से बाहर जाए, तो उसे छ: पण दण्ड दिया जाय। पर यदि पतिकुल से बाहर जाने का कारण विप्रकार (पति से विद्वेष या विरोध) हो, तो स्त्री इस दण्ड की भागी नहीं होगी।

यदि पति ने स्त्री को कहीं बाहर जाने से रोका हुआ हो, और वह फिर भी (पति के आदेश के विरोध में) घर से बाहर जाए, तो उस पर बारह पण जुर्माना किया जाए। यदि स्त्री पड़ोसी घर से परे चली जाए, तो उसे छः पण का दण्ड दिया जाए। इस व्यवस्था से सूचित होता है कि स्त्रियाँ घर में बन्द होकर ही रहा करती थीं, और पति या अन्य स्वजनों की अनुमति के बिना वे पड़ोसी घर से परे तक भी नहीं आ-जा सकती थीं। इतना ही नहीं, स्त्रियों को यह भी अनुमति नहीं थी, कि वे अपने पड़ोसी, भिक्षुक या सौदागर को भी अपने घर के भीतर आने दें। कौटिल्य ने लिखा है कि यदि कोई स्त्री पड़ोसी को अपने घर में आने दे, या किसी भिक्षुक को घर बुलाकर भिक्षा प्रदान करे, या किसी सौदागर से घर के भीतर सौदा ग्रहण करे तो उस पर बारह पण जुर्माना किया जाए। यदि पति ने स्त्री को ऐसा करने से रोका हुआ हो, और वह फिर भी ऐसा करे, तो उसे पूर्वसाहस दण्ड दिया जाय। केवल स्त्री का अपने घर से बाहर जाना ही निषिद्ध नहीं था, अपितु वह किसी स्त्री को (विपत्ति की दशा के अतिरिक्त) अपने घर में आने नहीं दे सकती थी। दूसरे की पत्नी का अपने घर में आने देने पर उसके लिए 100 पण दण्ड का विधान था।

स्त्रियों को किस अंश तक स्वतन्त्रता प्राप्त रहे, इस प्रश्न पर अर्थशास्त्र में विवेचन किया गया है। इस सम्बन्ध में कौटिल्य ने पुराने आचार्यों का यह मत उद्धृत किया है- यदि कोई स्त्री अपने पति के निकट सम्बन्धी, सुखावस्थ (सुख-समृद्धि से युक्त व्यक्ति), गामिक (ग्राम के मुखिया), अन्वाधि (संरक्षक), भिक्षुकी कुल (भिक्षुणी स्त्री के परिवार से सम्बन्ध रखने वाला पुरुष) या जाति (अपने साथ सम्बन्ध रखने वाले परिवार का पुरुष) के पास जाए तो इसमें कोई दोष नहीं है। पर कौटिल्य पुराने आचार्यों के इस मत से सहमत नहीं थे। उनका कथन था, कि यह जान सकना सुगम नहीं है, कि अपने ज्ञातियों तक के परिवार में कौन-से पुरुष सन्देह से ऊपर हैं या विश्वास के योग्य हैं। कौटिल्य को केवल यह स्वीकार्य था कि स्त्रियाँ अपने ज्ञातियों के कुल में भी केवल उस दशा में जा सकती है, जबकि वहाँ कोई मृत्यु हो गयी हो, या कोई रोगी हो, या उस पर कोई विपत्ति आ गयी हो, या वहाँ कोई बच्चा होने वाला हो। ऐसे अवसरों पर स्त्री को अपने ज्ञातिकुल में जाने से नहीं रोका जाता था। यदि कोई रोके, तो उसे बारह पण जुर्माने का दण्ड दिया जाता था। तीर्थयात्रा आदि के प्रयोजन से स्त्रियों को घर से बाहर जाने की अनुमति प्राप्त थी।

अर्थशास्त्र में प्रतिपादित ये तथा इसी प्रकार के अन्य नियम यह प्रकट करने के लिए पर्याप्त है कि मौर्य युग में विवाहित स्त्रियों को अनेकविध बन्धनों में रहना पड़ता था। परदे की प्रथा इस काल में थी या नहीं, यह निश्चित कर सकना कठिन है। अर्थशास्त्र में एक स्थान पर स्त्रियों के लिए 'अनिष्कासिनीना' (न निकलने वाली) विशेषण का प्रयोग किया गया है। इससे यह सूचित होता है कि मौर्य युग में स्त्रियाँ प्रायः घर के अन्दर ही रहा करती थीं। पर-पुरुषों से मिलना-जुलना भी उनके लिए निषिद्ध था। पर वे परदे में भी रहती थीं, इस विषय में कोई निर्देश कौटिलीय अर्थशास्त्र में नहीं मिलता।

मौर्य युग में विवाह के लिए कौन-सी आयु उपयुक्त समझी जाती थी, इस सम्बन्ध में भी कुछ सूचनाएँ अर्थशास्त्र में विद्यमान हैं। कौटिल्य ने लिखा है कि स्त्री बारह साल की आयु में 'प्राप्तव्यवहार' (वयस्क या बालिग) हो जाती हैं, और पुरुष सोलह साल की आयु में। सम्भवत: इस आयु से पूर्व स्त्री या पुरुष को विवाह करने की अनुमति नहीं दी जाती थी।

कौटिल्य की सम्मति में स्त्रियों का मुख्य प्रयोजन सन्तान की उत्पत्ति ही था, यह ऊपर लिखा जा चुका है। अत: यह कल्पना कर सकना असंगत नहीं कि मौर्य युग में स्त्रियाँ प्राय: विवाह करके परिवार में ही जीवन व्यतीत किया करती थीं। पर इस काल में ऐसी स्त्रियों की भी सत्ता थी, जो गणिका, रूपाजीवा, दासी आदि के रूप में जीवन निर्वाह किया करती थीं, और जिनसे राज्य का गुप्तचर विभाग अनेकविध कार्य लिया करता था। राज्य गुप्तचर में इन स्त्रियों का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता था।

सती की प्रथा भारत में चिरकाल से रही है। मौर्य युग में यह प्रथा थी या नहीं, इस विषय में कोई निर्देश अर्थशास्त्र में उपलब्ध नहीं होता। पर ग्रीक विवरणों द्वारा इस काल में इस प्रथा की सत्ता सूचित होती है। डायोडोरस के अनुसार 316 ई.पू. में जब ईरान के एक युद्ध में एक भारतीय सेनापति की मृत्यु हो गयी तो उसकी दोनों पत्नियों ने सती होने की इच्छा प्रकट की। बड़ी पत्नी के सन्तान थी, अत: ग्रीक सेनापतियों ने उसे अपने पति के शव के साथ सती नहीं होने दिया। पर उन्होंने दूसरी पत्नी को सती हो जाने की अनुमति प्रदान कर दी। इस स्त्री को उस ढंग के वस्त्रों से अलंकृत किया गया, जैसे कि विवाह के समय किया जाता है। जब वह पति की चिता के समीप पहुँची, तो उसने अपने सब आभूषण उतार दिये, और उन्हें अपने परिजनों में बाँट दिया। इसके पश्चात् उसने अपने सब सम्बन्धियों और परिजनों से विदा ली, और वह चिता पर चढ़कर अपने पति की बगल में लेट गयी। सारी सेना ने तीन बार चिता की परिक्रमा की, और उसके बाद चिता को आग लगा दी गयी। जब अग्नि उस स्त्री के पास पहुँची, तो उसने जरा भी निर्बलता या कष्ट प्रदर्शित नहीं किया, और वह प्रसन्नतापूर्वक अपने पति के साथ भस्म हो गयी।[23] ■

सन्दर्भ:

1. मिक्रिण्डल, जे. डब्ल्यू. - मेगास्थनीज, पृ.34
2. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-2, पृ. 212
3. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-2, पृ. 212
4. मजूमदार. आर.सी. - दि एज ऑफ इम्पीरियल युनिटी, पृ. 564
5. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-2, पृ. 213

6. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-2, पृ. 214
7. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-2, पृ. 217
8. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-2, पृ. 217
9. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-2, पृ. 218
10. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-2, पृ. 220
11. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-2, पृ. 220
12. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-4, पृ. 270
13. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-4, पृ. 271
14. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-4, पृ. 271
15. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-4, पृ. 272
16. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-4, पृ. 272
17. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-3, पृ. 256
18. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-3, पृ. 257
19. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-3, पृ. 257
20. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 3, प्रकरण-20, पृ. 410
21. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 1, प्रकरण-18, पृ. 62
22. अर्थशास्त्र, सम्पादक पण्डित शाम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई., अधिकरण- 13, प्रकरण-2, पृ. 705
23. मजूमदार, रमेश चन्द; द ऐज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, ओरिएंटल प्रेस मद्रास, 1957 ई., पृ. 567

प्राचीन भारतीय दौत्य प्रणाली

डॉ. रामजी पासवान*

राजदूत-व्यवस्था प्राचीन भारतीय राजनीति की एक विशेष कड़ी रही है। राजदूत को महान गौरव और महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वेद, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, अग्निपुराण और कामन्दक नीतिसार जैसे गृन्थों में दूत का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के पहले अधिकरण के पन्द्रहवें अध्याय में दूत-व्वयवस्था पर सविस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है। कौटिल्य ने राजदूत को राजा का मुख माना है, क्योंकि राज्य में जो राजा को कार्य-व्यवस्था और नीति-नियम निर्धारित करना होता है, विदेश में राज्य का वही कार्य राजदूत करता है। राजदूत वैदेशिक सम्बन्ध में राजा का प्रतिनिधित्व करता है। वह प्रतिष्ठित व्यक्ति होता है और प्राचीनकाल में वह मन्त्रिपरिषद् का सदस्य होता था।

राजदूत की नियुक्ति और योग्यताएँ

कौटिल्य की दृष्टि में दूत का पद बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, इसलिए अधिकाधिक गुणो से सम्पन्न व्यक्तियों को ही इस पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए। मनु के अनुसार राजदूत को सत्कुलीन, चरित्रवान, राजभक्त, दक्ष स्मृतिमान, हृदयस्थ भावों को पकड़ने वाला, दर्शनीय, वाग्मी, देश-काल तथा समस्त शास्त्रों का ज्ञाता होना चाहिए।

कौटिल्य के अनुसार राजदूत में निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिए-

(क) राजदूत प्राणों की बाजी लगाकर यथार्थ और सत्य कहने की क्षमता रखता हो।

(ख) शत्रु राजा द्वारा प्राप्त सम्मान पर वह गर्व न करे।

(ग) शत्रुओं के बीच रहता हुआ अपने को वह बलवान न समझे।

(घ) किसी के कुवाक्य को भी वह पी ले।

(ङ) स्त्री-प्रसंग और मद्यपान का वह सर्वथा त्याग करनें वाला हो।

(च) अपने स्थान में वह एकाकी शयन करे क्योंकि मद्य पीने और दूसरों के साथ शयन करने से स्वप्नावस्था में मन के गुप्त रहस्यों के प्रकट हो जाने का भय बना रहता है।

इस प्रकार, कौटिल्य ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ राजदूत की योग्यता पर विचार किया है।

*अतिथि व्याख्याता, प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, तिलका मांझी विश्वविद्यालय, भागलपुर(बिहार)मोबाइल-9801200901

वस्तुतः राजदूत को चतुर कूटनीतिज्ञ, कुशल वक्ता, साहसी और निर्भीक होना चाहिए।

राजदूत का वर्गीकरण

कौटिल्य के अनुसार राजदूत तीन प्रकार के होते हैं[1]–

1. निसृष्टार्थ 2. परिमितार्थ और 3. शासनहर।

निसृष्टार्थ राजदूत – ऐसे राजदूत पूर्ण अधिकार सम्पन्न होते हैं। ये राजा की ओर से किसी भी निश्चय निर्णय को कर सकते हैं। राजा अपना पूर्ण उत्तरदायित्व उन पर छोड़ देता है।

परिमितार्थ राजदूत – ये राजा की स्वीकृति के बिना कोई अन्तिम निर्णय नहीं ले सकते हैं। ये परिमित अर्थात् सीमित उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हैं।

शासनहर राजदूत – ये राजदूत राजा का सन्देश दूसरे राजा तक केवल पहुँचा देते हैं। इन्हें स्वयं अपनी ओर से कोई बात कहने या निर्णय लेने का अधिकार नहीं होता है।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के राजदूतों के लिए विभिन्न स्तर के अधिकारियों की नियुक्ति होती थी। मन्त्री या सेनापति या युवराज के स्तर के अधिकारी निसृष्टार्थ राजदूत के लिए, इससे निम्न श्रेणी के अधिकारी परिमितार्थ राजदूत के लिए तथा इससे भी निम्न श्रेणी के अधिकारी शासनहर राजदूत के लिए नियुक्त हो सकते हैं।

राजदूत के कार्य

कौटिल्य ने राजदूत के कार्यों पर सूक्ष्म रूप से विचार किया है। कौटिल्य का मत है कि पालकी आदि सवारी, घोड़े आदि वाहन, नौकर-चाकर और सोने-बिछाने आदि सामग्री की भली-भाँति व्यवस्था करके राजदूत को शत्रु देश की ओर प्रस्थान करना चाहिए।

राजदूत को पहले ही यह सोच-विचार कर लेना चाहिए कि वह अपने स्वामी का सन्देश इस ढंग से कहेगा, उसका यह उत्तर होगा तो उसके प्रत्युत्तर की विधि इस प्रकार होगी या किन-किन विधियों से उसे शत्रु राजा को वश में करना होगा। आदि-आदि।

राजदूत को चाहिए कि वह शत्रु देश के वनरक्षक, सीमारक्षक, नगरवासियों और जनपदवासियों से मित्रता करे। साथ ही, वह उभय पक्ष की सेनाओं के ठहरने योग्य युद्धभूमि और संयोग आने पर अपनी सेना के भाग सकने योग्य उपयुक्त स्थानों तथा मार्गों का भी निरीक्षण करे। साथ ही, शत्रुपक्षी राजा के दुर्ग, उसके राज्य की सीमाएँ, आमदनी, उपज, आजीविका के साधन, राष्ट्ररक्षा के तरीके, वहाँ के गुप्त भेद एवं वहाँ की बुराइयों का पता लगाना राजदूत का ही कर्तव्य है।

इसके साथ ही तीर्थस्थानों, देवालयों, गृहमित्रों और लिपि संकेतों द्वारा भी राजदूत वहाँ के वृतान्त जाने। ठीक-ठीक समाचार अवगत हो जाने पर वह तदनुसार भेदरूप उपायों का प्रयोग करे। राजदूत को चाहिए कि शत्रु के पूछे जाने पर भी वह अपनी मन्त्रिपरिषद् का ठीक-ठीक परिचय न दे।

कौटिल्य के अनुसार राजदूत निम्नलिखित कार्यों का सम्पादन करता है[2]–

1. शत्रु प्रदेश में अपने स्वामी का सन्देश लेकर जाना।
2. शत्रु राजा का सन्देश लाने के लिए जाना।

3. सन्धि-भाव को बनाये रखना।
4. समय आने पर अपने पराक्रम को दिखाना।
5. अधिक से अधिक मित्र बनाना।
6. शत्रु के कृत्यपक्ष के पुरुषों को फोड़ देना।
7. शत्रु के मित्रों को उससे विमुख कर देना।
8. तीक्ष्ण, रसद आदि गुप्तचरों और अपनी सेना को भगा देना।
9. शत्रु के बान्धवों और रत्नों का अपहरण कर लेना।
10. शत्रु के देश में रहकर गुप्तचरों के कार्यों का निरीक्षण करना।
11. सन्धि की चिरस्थिति के निमित्त जमानत रूप में रखे हुए राजकुमारों को मुक्त कराना।
12. मारण, मोहन, उच्चाटन आदि का प्रयोग करना।[3]

इस प्रकार, कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के माध्यम से चेतावनी देते हुए कहता है कि राजा को चाहिए कि वह उपर्युक्त सभी कार्य दूतों के द्वारा करवाये और शत्रुओं के पीछे अपने दूतों या गुप्तचरों को लगाये रखे। अपने देश में तो राजा शत्रु दूतों के कार्यों का पता प्रकट रूप से लगाये, किन्तु शत्रु देश में उनकी सूचनाएँ गुप्त रूप से संग्रह करवाये।

वस्तुतः कौटिल्य का मत है कि दूसरे की कही हुई बात को दुहरा देना मात्र दूत का कार्य नहीं होता है।

राजदूत की सफलता के लक्षण

कौटिल्य के अनुसार, निम्नलिखित लक्षणों के आधार पर राजदूत के कार्य एवं उद्देश्य की सफलता आँकी जा सकती है[4]-

(क) यदि शत्रु राजा की वाणी में, मुखमुद्रा में और दृष्टि में प्रसन्नता झलकती हो,
(ख) वह दूत की बातों को आदरपूर्वक सुन रहा हो,
(ग) राजदूत की स्वेच्छया प्रश्न करने या अभीष्ट को प्रकट करने की स्वतन्त्रता हो,
(घ) दूत के स्वामी राजा का कुशल-क्षेम तथा उसके गुणों के प्रति शत्रु राजा की उत्सुकता हो,
(ङ) दूत को वह आदरपूर्वक समीप ही बैठाये,
(च) राजकीय उत्सवों पर दूत को भी स्मरण करे
(छ) दूत के प्रत्येक कार्य पर शत्रु राजा का विश्वास हो, तो दूत को समझना चाहिए कि वह उस पर प्रसन्न है।

यदि इसके विपरीत आचरण दिखे, तो समझ लें कि शत्रु राजा उस पर रुष्ट है।[5]

राजदूत अवध्य

कौटिल्य ने राजदूत को अवध्य बतलाया है। रामायण और महाभारत में भी राजदूतों की हत्या की भर्त्सना की गयी है। राजदूतों को सजा दी जा सकती है लेकिन उनकी हत्या कदापि नहीं की जा सकती है। कौटिल्य के शब्दों में "कोई चाण्डाल भी इस कार्य पर नियुक्त किया गया हो तो

राजधर्म के अनुसार वह भी अवध्य है। उसी स्थान पर यदि ब्राह्मण हो तो उसके वध के सम्बन्ध में तो सोचा भी नहीं जा सकता है।"[6]

कौटिल्य का मत है कि जब तक शत्रु राजा उसे अपने राज्य से जाने की आज्ञा न दे तब तक वह वहीं रहे। लेकिन अपने स्वामी का ऐसा सन्देश, जिसको सुनकर शत्रु राजा क्रोधित हो उठे, सुनाने पर, दूत को बिना अनुमति लिए ही वहाँ से कूच कर देना चाहिए अन्यथा उसका पकड़ा जाना निश्चित है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि राजदूत सम्बन्धी कौटिल्य के विचार वास्तव में उस महान राजनीतिज्ञ की पैनी दृष्टि के प्रमाण हैं, जिसका विस्तारपूर्वक ज्ञान हमे अर्थशास्त्र के माध्यम से होता है यथार्थवाद से ओत-प्रोत उसके विचारों का महत्त्व आज के राजदूत सम्बन्धी विचारकों के विचारों से परिलक्षित होता है।

सन्दर्भः

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण-1, प्रकरण-15, अध्याय-3, श्लोक-7, अनुवादक-वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी संस्करण-2011, पृ. 57
2. उपरोक्त, पृ. 66
3. उपरोक्त, पृ. 89
4. उपरोक्त, पृ. 91
5. उपरोक्त, पृ. 97
6. उपरोक्त, पृ. 107

फूनान : कम्बुजदेश का प्रथम साम्राज्य

डॉ. सुबोध कुमार मिश्र*

सार-संक्षेप : प्राचीन फ्रांसीसी इण्डोचाइना (हिन्द चीन) में भारतीय राज्य कम्बुज था, जिसे आजकल कम्बोडिया के नाम से जाना जाता है। कम्बोडिया का प्रथम और ऐतिहासिक राजवंश फूनान के नाम से प्रसिद्ध है। फूनान में पहले जंगली जातियाँ रहती थीं, जो असभ्य, बर्बर और नंगे रहा करती थी। हुयेन तियेन या कौण्डिन्य नामक एक भारतीय ब्राह्मण ने वहाँ जाकर नागकन्या लिउयेह-(सोमा) से विवाह कर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रसार किया। साथ ही 100 वर्षो तक उसके वंशजों ने फूनान में शासन किया। चौथी शताब्दी के अन्त तथा पाँचवी शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय बड़ी संख्या में वहाँ गए। इस समय तक कम्बोडिया में कौडिन्य प्रथम द्वारा स्थापित राजवंश में शैवधर्म का बोलबाला था। छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कम्बोडिया के उत्तर-पूरब के कम्बुज राजाओं ने फूनान का अन्त कर अपनी प्रभुता स्थापित कर ली।

बीज शब्द : हुनतियन, लिउयेह,फूनान, कौण्डिन्य, हिन्दू, नागकन्या।

हम यह जानते हैं प्राचीन काल में भारतीयों ने दक्षिण-पूर्व एशिया में अनेक उपनिवेश स्थापित किये थे, जिनमें एक हजार से भी अधिक वर्षो तक भारतीय सभ्यता और संस्कृति फलती-फूलती रही। इन उपनिवेशों में एक ऐसा भी उपनिवेश था जिसे बीसवीं सदी के द्वितीय महायुद्ध तक [1]हिन्दचीन (इण्डोचाइना) कहा जाता था, जहाँ आधुनिक काल में कम्बोडिया, लाओस, दक्षिणी वियतनाम और उत्तरी वियतनाम के राज्य है। वर्तमान में दोनों वियतनाम एक हो गये हैं।

फूनान राज्य की स्थापना

कौण्डिन्य प्रथम

यह विदित है कि कम्बोडिया के क्षेत्र में भारतीयों ने अनेक उपनिवेश स्थापित किये थे जिनमें फूनान भी एक था। इस फूनान के सम्बन्ध में इतिहासकारों के अलग-अलग मत हैं। कुछ

*अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

इतिहासकारों का यह मत हैं कि यह फूनान प्रारम्भ में ब्यू-नाम के रूप में उच्चरित किया जाता था। कालग्रेन के अनुसार यह ब्यू-नाम ख्मेर भाषा में व्नाम हो गया जिसका उच्चारण नाम रूप में प्रयोग होने लगा जो पर्वत का द्योतक हो गया। एस. कोनो एवं एल. फिनोटे के अनुसार कुरुंग व्नाम 'पर्वत भूपाल' या 'शैलराज' का पर्याय हो गया। प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान जार्ज सोदेस ने इसे बा नाम (Ba Phnom) कहा जो दक्षिण कम्बुज का एक पहाड़ी भाग है, जिसके अनुसार बानोम पहाड़ी की तलहटी में फूनान की राजधानी व्याधपुर थी।[1] 'डी.जी. ई. हॉल ने भी कुरुंग व्नाम को संस्कृत के शैलराज से अर्थ लगाया है। आयमोनियर के अनुसार यह एक चीनी शब्द है जिसका रूपान्तर सुरक्षित दक्षिण स है और जिसे 'वधिकों का नगर' कहा जाता था।[2] इसका उल्लेख अभिलेखों में हुआ है। यह बा नाम (Ba Phnom) एवं (Banom) ग्राम के निकट था। चीनी साक्ष्यों में इसे तू मू कहा गया है जो ख्मेर शब्द दमक (Damak) या दलमक (Dalmak) का विकृत रूप है। आर.एन. पाण्डेय का भी यही मत है। पोलियो का ऐसा मत है कि यह अंगकोर बोरे ही है। चीनी इसे समुद्र से 120 मील दूर बतलाते हैं। डॉ. आर.सी. मजूमदार ने लियंगवंश के इतिहास के आधार पर इसे 100 मील बतलाया है।[3]

फूनान की जानकारी सर्वप्रथम हमे कांग ताई नामक चीनी यात्री से मिलती है, जो ईसा की तीसरी सदी के मध्य में वहाँ गया था। उसने अपने विवरण में लिखा है कि-

''प्रारम्भ में फूनान में एक स्त्री का राज्य था, जिसका नाम लिऊ-यह था। हो-फू में एक पुरुष रहता था जिसे हुएन चेन कहते थे। वह ब्राह्मण देवता का श्रद्धालु भक्त था। देवता उसकी भक्ति से प्रसन्न था। हुएन चेन ने रात्रि में एक बार एक स्वप्न देखा, जिसमें इष्ट देवता ने एक दैवी धनुष देकर यह आदेश दिया कि वह किसी व्यापारी जहाज पर सवार होकर समुद्र-यात्रा के लिए प्रस्थान कर दे। प्रात:काल जब वह मन्दिर में पूजा के लिए गया तो वहाँ उसे एक धनुष पड़ा मिला। उसे लेकर वह एक व्यापारी जहाज पर सवार हो गया। देवता ने वायु का रुख इस प्रकार परिवर्तित कर दिया कि वह जहाज फूनान के समुद्र तट पर जा लगा। जब लिऊ-यह ने एक जहाज को अपने समुद्र-तट पर देखा तो उसे लौटाने के लिए वह एक नौका लेकर चल पड़ी। यह देखकर हुएन चेन ने दैवी धनुष से ऐसा बाण छोड़ा जो लिऊ-यह की नौका के आर-पार हो गया। रानी (लिऊ-यह) भयभीत हो गयी और उसने हुएन चेन के सम्मुख घुटने टेक दिये अब हुएन चेन फूनान का राजा बना गया।[4]

चीनी विवरणों के अनुसार लिऊ-यह ने हुएन-चेन से विवाह कर लिया था और फूनान पर उन दोनों का संयुक्त शासन स्थापित हो गया था।

अधुनातन साक्ष्यों एवं विश्लेषणों से अब यह स्पष्ट हो गया है कि हुएन चेन पौराणिक हिन्दू-धर्म का अनुयायी था और भारत से उसका सम्बन्ध था। चीनी विवरणों में जिसे हो-फू कहा

गया है, वह किस भारतीय शब्द का रूपान्तर माना गया है यह अब तक स्पष्ट नहीं है। किन्तु हुएन चेन को कौण्डिन्य का चीनी रूपान्तर मान लिया गया है, और प्रायः सभी विद्वान इसे स्वीकार करते है। चीनी साक्ष्यों के आधार पर हम यह जानते हैं कि फूनान के निवासी अर्द्ध-जंगली दशा में थे। वे नंगे रहा करते थे और अपने शरीर को नानाविध चित्र गुदवाकर विभूषित किया करते थे। यह सत्य है कि हुएन चेन (कौण्डिन्य) द्वारा ही फूनान मे सभ्यता का प्रवेश हुआ। सम्भवतः वह पहला व्यक्ति था जो बहुत से भारतीय औपनिवेशिकों के साथ फूनान गया था तथा उसने वहाँ के पुराने असभ्य निवासियों को परास्त कर उस देश में अपनी बस्तियाँ बसा ली थी। कहा जाता है कि हुएन चेन के समय से ही स्त्रियों को भी कपड़े पहनना सिखलाया गया, किन्तु भारतीय औपनिवेशिकों के साथ स्त्रियाँ नहीं थीं, अतः उन्होंने फूनान की स्त्रियों से विवाह सम्बन्ध स्थापित किया। फूनान के भारतीय उपनिवेश के निवासी जातीय दृष्टि से वर्णसंकर थे। चूंकि भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को वहाँ की स्त्रियों ने अपना लिया था, जिसके कारण वहाँ की जनता भारतीय रंग में रंग गयी थी। चीनी ग्रन्थों के आधार पर हुएन चेन का समय ईस्वी सन् की पहली सदी माना जाता है। इसके अतिरिक्त हमारे पास अन्य साक्ष्य कोई नहीं है जिसके आधार पर हम हुएन चेन के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकें।

हुएन चेन के विषय में चीनी विवरणों से ज्ञात होता है कि उसके राज्य में सात ऐसे नगर थे जिनका शासन स्थानीय व्यक्तियों के हाथों में था, पर वे फूनान के राजा की अधीनता स्वीकार करते थे। किन्तु धीरे-धीरे उनकी शक्ति बढ़ने लगी और वही फूनान राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई। यह स्वाभाविक है कि ये स्थानीय शासक अवसर की तलाश में रहा करते थे और स्वतंत्र होने की चेष्टा करते रहते थे। उसके एक वंशज हुएन पेन ह्वांग ने उन स्थानीय शासकों के स्थान पर अपने पुत्र और पौत्रों की नियुक्ति की और सारे राज्य पर सुव्यवस्थित रूप से शासन किया। हुएन पेन ह्वांग की मृत्यु 100 वर्ष की आयु में हुई। उसका काल द्वितीय शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है।

हुएन पेन ह्वांग के बाद उसका द्वितीय पुत्र पन पन फूनान का राजा बना। पन पन का सेनापति फन चे मन था जो अत्यन्त योग्य एवं कार्यकुशल था। पन पन का ऐसे सेनापति पर काफी विश्वास था और उसके शासन काल से ही वह राज्य के शासन का एक प्रमुख व्यक्ति बन गया। वह राज्य का कर्त्ताधर्त्ता रहा और तीन वर्षों के शासन के बाद जब पन पन की मृत्यु हो गयी तो जनता के द्वारा फन चे मन को राजगद्दी पर बैठाये जाने के बाद इस नये राजा ने अपनी योग्यता एवं वीरता से फूनान के छोटे से राज्य को एक विशाल साम्राज्य के रूप में परिणत कर दिया जिसका सारा श्रेय फन चे मन को ही है।

चीनी स्रोतों के अनुसार इसने एक विशाल बेड़े की सहायता से पाँच-छः हजार मील तक अपने राज्य को विस्तृत किया। उस समय से वह फूनान का सम्राट घोषित हुआ और इस विशाल साम्राज्य की सीमाएँ स्याम, लाओस के विस्तृत भू-भाग तथा मलाया प्रायद्वीप तक फैल गयी। उसने

लगभग दस राज्यों को जीत लिया और लगभग 1200 मील तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। मलाया से आगे बढ़कर वह किन लिन (सुवर्ण द्वीप या सुवर्ण भूमि) पर भी आक्रमण की तैयारी कर रहा था किन्तु वह बीमार हो गया और उसकी मृत्यु हो गयी। जब वह रोग-शय्या पर था उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र फन किन वेंग को सेना का अध्यक्ष बनाकर भेजा परन्तु इस बीच उसके भांजे फन चन ने अपने मामा की बीमारी से लाभ उठाकर फन किन वेंग का वध करा दिया और अपने को फूनान का राजा घोषित कर लिया। यह घटना लगभग 225 ई. की है।

फन चन का शासन-काल इस दृष्टि से बड़े महत्त्व का है कि उसके शासनकाल में फूनान का चीन और भारत से राजनयिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। इसके पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दौत्य मण्डल की व्यवस्था किसी राजा ने नहीं की थी। फन चन द्वारा इन दोनों देशों के राजाओं के पास अपने राजदूत भेजे गए। फूनान की ओर से जो दूतमण्डल 243 ई. में चीन भेजा गया था उसमें अनेक बहुमूल्य उपहार भी भेजे गये थे। कहा जाता है कि इनमें कुछ गायक भी थे। इसी के शासन-काल में पश्चिम भारत के टन यंग का निवासी किआ सिंग ली भी व्यापार के सम्बन्ध में फूनान पहुँचा जिसने फूनान के राजा को भारत की अपार धनराशि, रहन-सहन, खान-पान, व्यवहार और रीति-रिवाज आदि के सम्बन्ध में बहुत सी नई बातें बताई। उसके अनुसार भारत फूनान से 600 मील की दूरी पर है और वहाँ पहुँचने में तीन या चार वर्ष लगते है। भारत के विषय में ऐसी जानकारी मिलने पर सम्राट ने सूवू नामक एक दूत को भारत भेजा। उसने तेउ-केउ-ली (तक्कोला) के बन्दरगाह से जहाज द्वारा भारत के लिये प्रस्थान किया।

सूवू अपनी लम्बी समुद्र-यात्रा के बाद गंगा के मुहाने पर पहुँचा तथा वहाँ से नदी-मार्ग से 1400 मील चलकर वह भारत के सम्राट् के यहाँ पहुँचा जहाँ भारतीय सम्राट् ने उत्साहपूर्वक उसका स्वागत किया तथा राजकीय आदेश देकर उसे भारत-भ्रमण की सब सुविधाएँ प्रदान कर दीं। तत्कालीन भारतीय राजा को मिपोलु कहा गया है जिसकी तुलना सिल्वां लेवी ने मुरुण्ड से की हैं। जब फूनान का राजदूत सूवू अपने देश को लौटाने लगा तो भारत के राजा ने अपने दो दूत उसके साथ कर दिये तथा फूनान के राजा को उपहार स्वरूप युइशि देश के चार घोड़े भी भेंट दिये। जब चार वर्ष बाद सूवू अपने देश वापस पहुँचा तो वहाँ की परिस्थिति बिल्कुल ही भिन्न हो चुकी थी।

फन चन अधिक दिनों तक फूनान की गद्दी पर नहीं रह सका। फन चे मन के छोटे पुत्र फन चांग ने उसका वध कर डाला। ऐसा कहा जाता है कि फन चांग अपने पिता की मुत्यु के समय एक छोटा लड़का था। जब वह बड़ा हुआ तो उसने कुछ सरदारों का एक संगठन तैयार किया और भाई की हत्या के बदले की भावना तो उसके हृदय में थी ही। अत: अवसर मिलते ही उसने फन चन की हत्या कर डाली। लेकिन यह निश्चित नहीं कहा जा सकता है कि फन चांग गद्दी पर बैठा या नहीं। मजूमदार के विचारों से सहमत होते हुए आर.एन. पाण्डेय का ऐसा कहना है कि यदि उसने राज्य-ग्रहण भी किया होगा तो उसका शासन-काल बहुत ही कम दिनों का रहा होगा। किन्तु इस

प्रकार के षड्यन्त्रों के परिणामस्वरूप इसे भी सेनापति फन-सिउन के द्वारा अपने प्राणों को गँवाना पड़ा। इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएँ देखने को मिलती हैं।[5]

फन चन द्वारा चीन और भारत के राजाओं की सेवा में भेजे गये दूतों के बदले में जो राजदूत उन देशों ने भेजे थे, वे जब फूनान पहुँचे तो वहाँ के राजसिंहासन पर फनसिउन विराजमान था। फूनान के राजदरबार में चीन के कांग ताई और चुयिंग नामक दो राजदूतों की भारत के राजदूतों से भेंट हुई और उन्हें भारत के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का प्रथम अवसर मिला। फूनान के राजदरबार में रहते हुए कांग ताई ने भारत और फूनान के विषय में जानकारी प्राप्त की। उसने उसे एक पुस्तक के रूप में लिपिबद्ध कर दिया था। कांग ताई का कहना है कि यद्यपि देश आकर्षक था तथापि लोग नग्न ही रहते थे। फन सिउन ने इस पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न किया था। कांग ताई की यह पुस्तक उतनी ही महत्त्वपूर्ण थी, जितनी कि मेगास्थनीज की भारत-विवरण सम्बन्धी पुस्तक 'इण्डिका'। कांग ताई के ग्रन्थ के बाद के इतिहासकारों ने भी बहुत से वृत्तान्त अपनी पुस्तकों में उद्धत किये है। इसमें भारत के विषय में भी येन सोंग द्वारा प्राप्त कुछ वृत्तान्त लिखे हैं। इसका कथन है कि भारत का राजा म्यूलुन कहलाता था और उसके देश के दाहिने-बायें किज वै (कपिलवस्तु) और ये वै (श्रीवस्ती) इत्यादि छः राज्य थे। लेवी के अनुसार इस म्यूलुन की समानता मुरुण्ड नृप से की जा सकती है। इस विद्वान के विचार में इस वंश का कुषाणों से सम्बन्ध था।

फन सिउन ने एक लम्बे अरसे तक फूनान का शासन-सूत्र अपने हाथों में रखा और अपने समय में सन् 268, 285, 286 तथा 287 ई. में चार दूतमण्डल फूनान से चीन भेजे गये। फन सिउन के बाद उसके उत्तराधिकारियों के विषय में चीनी विवरणों से हमें कोई जानकारी नहीं प्राप्त होती तथा इस शासक के बाद लगभग 75 वर्षो तक फूनान का इतिहास तिमिराच्छन्न हो जाता है। इसके बाद 375 ई. में फूनान से चन्तन या चनतन अथवा चन्द्र नामक एक हिन्दू राजा ने एक दूत को कुछ पालतू हाथी देकर चीन भेजा, किन्तु चीनी सम्राट् ने भविष्य में इनको न भेजने का आदेश दिया तथा इन्हें लौटा दिया। चीनी विवरणों में इन चनतन को हिन्दू लिखा गया है और यह कहा गया है कि उसने अपने आप को फूनान का राजा घोषित कर दिया था। ब्रिग्स का मत है कि इस राजा का सम्बन्ध राजवंश से नहीं था, वरन समय के परिणामस्वरूप अवसर से लाभान्वित होता हुआ यह शासक बन गया। सिल्वां लेवी का यह विचार है कि चनतन का सम्बन्ध कुषाण वंश से रहा होगा। इस मत की पुष्टि के लिये इनका कहना है कि हो सकता है कि समुद्रगुप्त की कुषाण-विजय के बाद इस वंश के कुछ लोग सुदूर पूर्व में आवासित होने के लिए बढ़े हों। पर मजूमदार इसे सही नहीं मानते।[6] इनका ऐसा कहना है कि चीन वाले कुषाण जाति से पूर्ण परिचित थे। यदि फूनान के सम्राट् का सम्बन्ध इस वंश से होता तो निश्चयपूर्वक ही चीनी उनका उल्लेख करना न भूलते। हम इसे नहीं सकते कि समुद्रगुप्त की दक्षिण विजय से उत्पन्न अत्यधिक अशांतमय वातारण देश में

विद्यमान था। भारत के राजकुमार, ब्राह्मण एवं अन्य कलाकार शान्ति की खोज में किसी ऐसे स्थान की तलाश में रहते थे जहाँ भारतीय संस्कृति का प्रसार पहले से हो चुका था और फूनान इसमें सक्षम था। चनतन की ज्ञात तिथि 357 ई. है। इसके अतिरिक्त हमारे पास अन्य साक्ष्य नहीं है। इसके बाद फूनान के इतिहास में पुनः परिवर्तन हुआ और ईसा की चौथी शताब्दी के अन्त या पाँचवी सदी के प्रारम्भ में किआओ चेन जू अथवा कौण्डिन्य द्वितीय नामक शासक वहाँ का राजा बना।

कौण्डिन्य द्वितीय

चीनी विवरणों के अनुसार पाँचवीं सदी के प्रारम्भ में फूनान के राजसिंहासन पर किआओ चेन जू (कोण्डिन्य) विराजमान था। वह भारत का रहने वाला एक ब्राह्मण था। सिल्वां लेवी ने इसे कुषाणवंशीय माना है। चीनी एवं पुरातात्विक स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि ईस्वी सन् को चौथी शताब्दी के अन्त और पाँचवीं सदी के प्रारम्भ में भारतीयों का दल दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में पहुँच चुका था और उनका चीनियों के साथ सम्पर्क स्थापित हो चुका था। बोर्नियों के मूलवर्मन तथा जावा के पूर्णवर्मन के अभिलेखों से वहाँ भारतीयों द्वारा राज्य-स्थापना तथा अपनी संस्कृति के प्रसारण का प्रमाण मिलता है। लेवी के मतानुसार समुद्रगुप्त की दक्षिण-विजय ने पल्लव राजवंशीय व्यक्तियों को देश से बाहर जाने को बाध्य किया। जार्ज सोदेस इसका कारण समुद्रगुप्त की उत्तरी भारत की विजय मानते है।

चीन के लिअंग वंश के इतिहास (502ई.-556ई.) में किआओ चेन जू अथवा कौण्डिन्य के विषय में लिखा है कि वह ब्राह्मण था तथा भारत का रहने वाला था। एक दिन उसे फूनान जाकर वहाँ की राजगद्दी सम्भालने का दैवी आदेश सुनाई दिया। इसे सुनकर वह समुद्र-मार्ग से पूरब की ओर चल पड़ा और फूनान जा पहुँचा। वहाँ के लोगों ने उसका उत्साहपूर्वक हार्दिक स्वागत किया और उसे अपने देश का राजा मान लिया। उसने वहाँ भारतीय नियम, संस्कार और परम्पराओं का प्रसार किया।

फूनान के इतिहास में इस कौण्डिन्य का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि इस समय फूनान में भारतीय संस्कृति के प्रवाह में तीव्रता आ गई थी। भारतीय रीतिरिवाजों के आधार पर भारतीय देवताओं की पूजा भारतीय नाम धारण करना प्रारम्भ कर दिया था। कौण्डिन्य द्वितीय के बाद उसका उत्तराधिकारी, जिसका संकेत चीनी साक्ष्य में है, चेलिटोपमी है। यह सम्भवतः जयवर्मन या श्रेष्ठवर्मन का चीनी रूप है।

जयवर्मन

कौण्डिन्य के पश्चात उसके जिन वंशजों ने फूनान में राज्य किया, उनमें एक चोये पमो (जयवर्मन) था, जिसके विषय में चीनी विवरणों में अधिक विस्तार से लिखा गया है। वह कौण्डिन्य

वंशीय था। इसके प्रारम्भ की तिथि अज्ञात है। उसने व्यापार के लिये कुछ व्यापारियों को कैंटन भेजा था। जब वे वापस आ रहे थे तो नार्कअसियन (नागसेन) नामक एक भारतीय भिक्षु भी उसके साथ हो लिया। किन्तु, समुद्र तूफान आ जाने के कारण उनके जहाज को चम्पा रुक जाना पड़ा। चम्पा भी भारतीयों का एक उपनिवेश था जिसकी स्थिति वियतनाम के क्षेत्र में थी। चम्पा के लोगों ने जहाज के सब माल को लूट लिया पर नागसेन किसी तरह फूनान पहुँच गया। इस समय चम्पा में फूनान से भागा हुआ एक विद्रोही, जिसका नाम किऊ चेऊ लो था, शासन कर रहा था।[7]

जयवर्मन ने चम्पा के शासक के विरुद्ध एक पत्र चीनी सम्राट के पास भेजा तथा इस शासक के विरुद्ध सैनिक सहायता माँगने के लिए सोने के नागराज के सिंहासन का एक नमूना, सफेद चन्दन का एक हाथी, दो हाथीदाँत के स्तूप, दो रेशमी वस्त्र, सुन्दर पत्थर के बने दो फूलदान और सुपारी रखने के लिए सीप की एक तश्तरी भेंट के रूप में वहाँ भेजी। इसके अतिरिक्त साथ में नागसेन भी चीन गया जो इस दूतमण्डल का नेता था तथा इसके पूर्व भी वह चीन में रह चुका था। नागसेन ने चीनी सम्राट को फूनान के धार्मिक आचार-विचार तथा महेश्वर के विषय में वृत्तान्त दिया तथा महेश्वर बुद्ध और सम्राट की प्रशंसा में अपनी एक काव्य-रचना भी भेंट की। चीनी सम्राट् ने भी अपनी ओर से फूनान के शासक के लिए भेंट दी, किन्तु चम्पा के विरुद्ध सैनिक सहायता का उल्लेख नहीं है। इसका अर्थ हो सकता हे कि उसने चम्पा के विरुद्ध किसी भी प्रकार की सैनिक सहायता देने की असमर्थता प्रकट की होगी।

जयवर्मन से सम्बन्धित अन्य राजनीतिक घटनाएँ गौण है किन्तु प्राप्त साक्ष्यों से यह जाना जाता है कि वह एक महान सम्राट था। इसमें सन्देह नहीं कि उसके समय में फूनान और चीन में घनिष्ठ सम्बन्ध था। यद्यपि इस समय फूनान में मुख्यतया शैवधर्म का प्रचार था, पर बौद्धधर्म का भी वहाँ प्रवेश हो चुका था। यह सम्राट की धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक है। यद्यपि जयवर्मन का एक भी अभिलेख नहीं मिला है, पर इसकी महारानी, जिसका नाम कुलप्रभावती था एवं इसके पुत्र गुणवर्मन के एक-एक अभिलेख मिले है। जयवर्मन की मृत्यु 514 ई में हो गयी और उसके बाद उसका जयेष्ठ पुत्र रुद्रवर्मन गद्दी पर बैठा। कहा जाता है कि वह जयवर्मन की किसी रखैल का पुत्र था और अपने छोटे भाई की हत्या कर उसने सिंहासन प्राप्त किया था।

रुद्रवर्मन

जयवर्मन की रानी का नाम कुलप्रभावती था जिसका पुत्र गुणवर्मन था। जयवर्मन की मृत्यु के बाद उसी को फूनान का राजा बनना चाहिए था, किन्तु जयवर्मन की एक रखैल से यह अन्य पुत्र भी था जो आयु में गुणवर्मन से बड़ा था जिसका नाम रुद्रवर्मन था, सन् 514 ई. में जयवर्मन की मुत्यु के पश्चात् रुद्रवर्मन ने अपने छोटे भाई गुणवर्मन का वध कर राजसिंहासन पर स्वयं अधिकार कर लिया। वह फूनान इतिहास का अन्तिम सम्राट है जिसके पश्चात फूनान का इतिहास अन्धकारमय हो जाता है।

दक्षिण कम्बोडिया के बेअड़ प्रान्त में संस्कृत का एक अभिलेख मिला है जिसमें जयवर्मन की सम्राज्ञी कुलप्रभावती द्वारा एक आराम, एक तालाब तथा निवास (आलय) बनाने का उल्लेख है। जार्ज सोदेस के मतानुसार गुणवर्मन, जयवर्मन और कुलप्रभावती का पुत्र था जिसे मारकर रुद्रवर्मन सिंहासन पर बैठा। एक अभिलेख में रुद्रवर्मन के गुणों का उल्लेख है किन्तु उसके विषय कोई ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं मिलता है। रुद्रवर्मन ने भी अपने शासन-काल में अनेक दूत-मण्डल भेजे थे जो 517, 519, 520, 530, 535 और 539 ई. में चीन गये थे। 517 ई. में भेजे गये दूतमण्डल का नेता तंग-पाओं लाओ (धर्मपाल) नामक एक भारतीय था। 519 ई. में दूत-मण्डल के साथ चन्दन की बनी एक बुद्धमूर्ति तथा बहुत से मणि-माणिक्य उपहार रूप में भेजे गये थे। 539 ई. में उसने एक जीवित बारहसिंगा तथा बुद्ध का एक बाल चीनी सम्राट के पास भेंट-स्वरूप भेजा। डी.जी. ई. हॉल के अनुसार यह दूतमण्डल फूनान के स्वतन्त्र राज्य के रूप में अन्तिम दूत-मण्डल था।[8]

रुद्रवर्मन फूनान का अन्तिम शासक था। उसके बाद लगभग 75 वर्षो तक इसके विषय में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती है। चीनी वृत्तान्तों से यह सूचित होता है कि चेनला (कम्बुज) के राजा चित्रसेन ने फूनान पर आक्रमण कर उसे जीत लिया था। चित्रसेन का पुत्र ईश्वरसेन था जिसने 616-619 में अपना दूतमण्डल चीन भेजा था। अब चित्रसेन का समय छठी सदी के अन्तिम भाग में होना चाहिए। चेनला कम्बुज का चीनी नाम था। फूनान के समान कम्बुज भी एक भारतीय उपनिवेश था जिसके राजाओं को स्थिति फूनान के सामन्तों के समान थी। ऐसा प्रतीत होता है कि रुद्रवर्मन के बाद की अव्यवस्था के काल में चेनला (कम्बुज) फूनान की अधीनता से मुक्त हो गया था और उसके राजा चित्रसेन ने उस पर विजय प्राप्त कर ली थी। किन्तु फूनान की पृथक् रूप से सत्ता का अन्तिम रूप से अन्त सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ। उस समय तक कम्बुज राज्य की शक्ति बहुत बढ़ गयी थी तथा उसके प्रतापी राजा अपने साम्राज्य के निर्माण के लिए प्रयत्न करने लग गये थे।

ईसा की सातवीं शताब्दी के बाद का फूनान का इतिहास अन्धकारमय है जिसका उल्लेख चीनी स्रोतों में नहीं मिलता। भारतीय कौण्डिन्य के आगमन के पूर्व देश में पाषाण-युग की सभ्यता थी जैसा कि ओसइवो नामक स्थान की खुदाई में प्राप्त अवशेषों से प्रतीत होता है। चीनी स्रोतों के अनुसार कौण्डिन्य प्रथम ने सम्राज्ञी सोमा को वस्त्र पहनना सिखलाया तथा उस काल से ही भारतीय नियमों एवं संस्कारों को अपनाया गया। ईसा की चौथी शताब्दी में कौण्डिन्य द्वितीय ने भारत से आकर यहाँ पुनः भारतीय संस्कृति की स्थापना की। शिन वंश के इतिहास में भी (265-419ई.), जिसकी रचना फंग लिअन लिंग (578-648) ने की, फूनान का वृत्तान्त मिलता है।

फूनान के सन्दर्भ में प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकर ने ठीक ही कहा है कि[9]-दक्षिण पूर्व एशिया के इतिहास में फूनान ही प्रथम शक्तिशाली राज्य था। यूरोपीय इतिहास के रोमन-साम्रज्य के समान ही इस राज्य का नाम इसके पतन के बाद भी अनेक वर्षो तक रहा। कम्बोडिया के ख्मेर नरेशों ने पवित्र पर्वत एवं नागकन्या के सम्प्रदायों को स्वीकार कर लिया। यद्यपि इस फूनान की स्थापत्य कला का पूर्णरूपेण पतन हो गया फिर भी इसकी कई विशेषताएँ हमें अंगकोर काल के प्रारम्भ होने के पूर्व के भव्य महलों पर देखने को मिलती हैं। भारतीय गुप्त शैली में बनाई गई भगवान बुद्ध की प्रतिमाएँ तथा विष्णु एवं हरिहर की प्रतिमाओं से फूनान के स्थापत्य शैली का पता चलता है।

■

सन्दर्भः

1. शरण, महेश कुमार-कम्बुजदेश का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,1995, पृ. 15,।
2. हॉल, डी.जी. ई., हिस्ट्री ऑव साउथ ईस्ट एशिया, मैकमिलन एशियन पब्लिकेशन, लन्दन, 1967, पृ. 23।
3. मजूमदार, आर.सी. कम्बुजदेश, भारतीय साहित्य मंदिर, फगवाड़ा, 1944, पृ. 52।
4. ई. आयमोनियर, हिस्टौरे डेल ऐनसेन कम्बोज, चार्ल्समैन पब्लिशिंग कंपनी पेरिस, 1920, पृ. 24।
5. आर. एन. पाण्डेय, दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, विक्रमाब्द 2044, पृ. 41।
6. मजूमदार, आर. सी. कम्बुजदेश, भारतीय साहित्य मंदिर, फगवाड़ा, 1944, पृ. 77।
7. जर्नल एशियाटिक, 1926, जनवरी-मार्च, पृ. 186 देखिये। एच.जी.क्यू.वेल्स, दि मेकिंग ऑव ग्रेटर इण्डिया, लण्डन, 1961 पृ. 96 के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री, साउथ इण्डियन इन्फलुएन्स इन दि फार ईस्ट, बम्बई 1949, पृ. 20।
8. विद्यालंकर, सत्यकेतु, ए हिस्ट्री ऑव साउथ ईस्ट एशिया, श्री सरस्वती सदन, मसूरी, 1963, पृ. 31।
9. उपरोक्त, पृ. 320।

Value Based Leadership

Major General A.K. Chaturvedi*

Abstract: ***"A true leader has the confidence to stand alone, the courage to make tough decisions, and the compassion to listen to the needs of others. He does not set out to be a leader, but becomes one by the quality of his actions and the integrity of his intent"***

—Douglas MacArthurr

Keywords: Value, Leadership, Vision, Aim, Self-Belief, Attitude

Introduction

In the epic battle of Mahabharat Pandavas were handicapped in more than one way; they had lesser number of troops as compared to Kauravas (seven Akshauhini[1] of Pandavas Versus 11Akshauhini of Kauravas). Kauravas also had some better known warriors and generals of that time as compared to Pandavas. Yet, when it came to choose between Sri Krishna and Yadava Army, Arjun chose Sri Krishna and it would be needless to add that at every point of critical decision, it was Sri Krishna whose presence and sage advice made the difference between a setback and a victory for Pandavas. This shows the relative importance of 'Leadership'. No wonder that Lord Ganpati who with his typical figure (not looking soldierly in true sense and also scientifically appears unstable with a heavier head which puts centre of gravity higher) and legends attached to his conduct flag the leadership traits and as such become worthy of being first to be worshiped. Similarly in our battle of independence success started being visible only post arrival of Mahatma Gandhi on the scene. Prior to that from the first 'Battle of Independence' in 1857 to 'Non Cooperation Movement' Civil Disobedience movement in 1920-22, though many attempts were made to achieve independence from Britishers but these failed to achieve their objectives because of the absence of a central leadership.

*AVSM, VSM (Retired),Indian Army

Types of Leaders- There are two types of leaders and these are as follows:-

- **High Task Leaders**- these leaders lay greater importance to 'Achievement'.
- **High Relations Leaders**- these leaders give greater importance to benevolence and security.

Leadership

Thus it can be said that the leadership separates an unruly mass from a well-coordinated team. ***Leadership therefore is the ability of an individual or a group of individuals to influence and guide followers or members of an organization to which the leader belongs.*** Certain attributes of a good leader can be summed up and these are as follows:-

- **Intimate Contact with Followers**- Good leaders remain with their followers in all situations. In fact they lead from front.
- **Flagging a Cause**- One of the important attribute for a leader is to give a cause towards which his followers need to work. Such an approach facilitates a leader to help his group of followers to remain focused.
- **Inspiring and Motivating his Followers**- A leader needs to have capability to motivate and inspire his followers to remain focused on achieving their objective set out beforehand. "*A good leader can inspire everyone in an organization to achieve their very best*". High quality human capital is the differentiator in today's knowledge-based economy that we live in. Therefore it is the responsibility of a leader to nurture and mentor his team members to become leaders in their own right. For this, it is imperative that he should have implicit faith in team work, detailed planning, a clear focus and propensity to take chances. To establish his credibility a leader needs to have **integrity, honesty, humility**. and **clear focus.**
- **Intellectual Equity**- Good leaders should have intellectual equity to articulate a vision and have ability to see beyond immediate. If they themselves believe in their vision, it will help them to motivate people to make it a reality because once vision gets firmed in, a leader initiates those measures which make their opponents react, which can then be controlled and steered forward. This flags a very important quality which a leader has to have and that is the 'Courage of Conviction' which helps him to have self-confidence to relentlessly pursue his objective and make things happen.
- **Optimisation of Resources**- An acid test of a good leadership is in ensuring optimisation of resources and improving the efficiency towards achievement of

organisation goals. It may be noted that the provisioning of resources is a vital management function that helps to direct an organization's resources for improved efficiency and the achievement of goals. Here it is important to note that a good and effective leader is able to discern between the goal clarity and the role clarity. The two aspects necessary to find the right man for the job and thus ensure mission accomplishment.

Thus what makes a leader a great leader. Some of the essential attributes are as follows:-

- **Self- belief**- the famous statement of Obama, "Yes We Can", sums it up. It needs to be noted that the self-belief of the leader is infectious and it permeates into the followers.
- **Capacity to take Hard Decisions**- leadership is not a popularity contest. A leader will have to be ready to make hard choices, which may not please all the stake holders.
- **Articulate a Clear Vision**- After articulating vision for the organisation it is the duty of a leader to give his team members time bound missions, help them to work out objectives to fulfil their mission and thereafter with them work out the necessary strategy to achieve their objective. All this should be an iterative and participative process where leader also helps the team with the resources that would be needed to accomplish the stated objective. Needless to add that continuous monitoring is one of the important tasks which a leader needs to take on himself or create a mechanism to do that.
- **Ensuring Goal and Role Clarity**- A leader should always remember the larger aim of the organisation, which entails goal clarity and in that role clarity of every element of the system.
- **Need to know the Strengths and Weaknesses of Each Member of the Team**- A leader needs to know well each and every member of his team as that would help him to identify right man for the right job.
- **Rapport with the Team**- A leader needs to develop rapport with his team in a manner that a mutual respect, faith and comradery develops between the leader and the led. Needless to add that to achieve this state more work is needed to be done by the leader.
- **Centrality of Quality of Men**- Leader needs to have an ability to appreciate that the people are key to success. Therefore it is essential that the leader nurtures

his team members to shoulder greater responsibilities thus empowering them and get them skilled for the task they are required to perform.

- **Capacity Building**- Should be able to push people to be at their best without making them feel vulnerable or suffer from fear of failure.
- **Maintenance of Focus**- A leader's focus should always be on the ultimate objective and how to keep the team focused to achieve the stated Objective. The problems and adversities entailed in accomplishment of the mission underlines the need for the leader to keep the communication on with the team at all times with a view to keep their morale up and motivated them to go on relentlessly in pursuit of the goal.
- **Participative Style of Leadership**- Finally the approach of the leader should be participative and never coercive or as far as possible not transactional. Best way is to lead by example and follow the approach of , 'Follow Me'. Such an approach gives lots of confidence to his team mates.

Manager Versus Leaders

Management is best described as the important technical work of "getting the job done" via control of "things," such as budgeting/finance, IT, equipment, permitting, and data analysis. Leadership is best described as encouraging and supporting "people" toward a new direction or vision. Managers focus on transactions and things, while leaders focus on relationships and people.

Culture Value and Attitude

Indian culture is the Heritage of social norms, ethical values, traditional customs , belief systems, political systems, artifacts and technologies which have originated in or are associated with India either through migration into India or colonisation. The culture, it needs to be noted, transcends time. However, it is also true that certain subtle changes did occur with the arrival of Islam in India and further during the colonial rule of British/ other European countries.

The **enduring beliefs** of a social system are referred as its **value system**. The relevance of a value system is that they can give people focus and a greater sense of purpose and engagement, reinforcing the concerned society/ organisation's stated goal, which, in a way, impacts the decision making and response system of people within the society. Since beliefs are a function of culture, the values provide a robust framework for the conduct of people in normal course as well as during the period of change/ adversities.

In psychology, an **attitude** refers to a set of emotions, beliefs, and behaviours toward a particular object, person, thing, or event. Attitudes are often the result of experience or upbringing (which, in fact, substantially is a function of values), and they can have a powerful influence over behaviour. While attitudes could be enduring, but they can also change. Thus it can easily be concluded that culture, value and as such the attitude substantially influence conduct of a person.

Value Based Leadership

At its core, values-based leadership philosophy asserts that people are mostly motivated by values and live according to their beliefs. It is therefore essential to understand that the 'Values-based leadership' should be practiced so that the followers of the leader get the correct direction and motivation in pursuit of the organisational goal. An important aspect of it is that in a diversified country like India a leader needs to be cognizant and also respectful of the values of his team members which at times may be slightly different from his own values because of religious affinity and demographic background. It should be the responsibility of the leader to respect these values and incorporate them in the organisational values. A good example of bringing in the harmony of divergent values is Indian Armed Forces, wherein the leader imbibes the values of his troops. Similarly in All India Services like Indian Administrative Service the officers try to understand the values of their Cadre State and try to imbibe them in their conduct.

Here it is important to note that there has been an erosion of the moral values in the society and the leaders who are emerging from such a background, at times, tend to gloss over our traditional values and tend to take short cuts to achieve their goals. While such an approach may give some immediate result but in long run such an approach leads to only disaster. This brings out clearly that the personal values of a leader could be extended to the organization, only when he/ she works with his/ her team and shares his values with the team members. Such a collaborative approach helps to a leader to achieve behaviour change in the Team members to achieve consistency of approach and enhance the values-based culture within the organisation.

Importance of Values of Subordinates and Leader getting into Sync- This is the best state because in such situations participation of subordinates in the mission accomplishment becomes willing. In fact in the moments of difficulty the response, many a times, is beyond the call of duty. History, especially military history, is replete with the examples when miracles happened due to such a collective response. In a very difficult military operation an infantry battalion, during Kargil War captured heights of Tololing,

Point 4590 and Black Rock and changed the course of Kargil War. It refers to the exemplary leadership displayed by the Commanding Officer of the Unit, Col MB Ravindra Nath and equally positive response of the Unit; 2 RAJPUTANA RIFLES. It could happen because the values of the Commanding Officer got fully in sync with the values of his troops. It could happen mainly because over a period of time the commanding officer had been able to create an environment in the unit where values of troops and the commanding officer were totally in sync. An analysis of the response of the unit and the positive results under extremely adverse circumstances flag certain points of relative importance and these are as follows:-

- Leader having a rapport with his team members leading to Team members having implicit faith in the leader's judgement.
- Continuous dialogue between the leader and the led.
- Leader leading from front in line with the earlier stated 'Follow Me' principle.
- Willing and voluntary participation due to shared values of the leader and led in the mission accomplishment.

Qualities Essential for a Value based Leader- There are four key qualities of a values-based leader namely **self-reflection**, **balance, self-confidence**, and **humility**. In addition five Core Values are; **Integrity**: moral wholeness, righteousness and truthfulness; **Respect**: both self-respect and respect for others; **Responsibility**: never shy from the task assigned, treat them as opportunity to contribute to organisational goal; **Sportsmanship**: have a positive attitude, never to give up and competitive in tasks assigned and finally ability to be '**First among the Equals**' rather than be a boss and subordinate in the team.

These values are interconnected and together, they form a solid foundation for values-based leadership. Values-based leadership instils a common set of values in all employees, improving their cohesiveness and willingness to work together. Knowing that a leader or manager has similar beliefs often encourages employees to follow their instruction, increasing the chance of success with every goal. The hall mark of a confident value based leader is that he is capable to withstand the impact of diversity in the work place. Needs to have propensity to influence a diverse set of employees in a manner that they contribute. Therefore what emerges is that there are three essentials for a value based leader to be an effective leader and these are; **Awareness; Authenticity and Accountability**. All these aspects in a leader makes him effective as far as decision making is concerned.

Difference between Ethical Values and Value Based Leadership-

Ethics refer to a code of conduct that establishes rules for acceptable behaviour and the ethical values deal with right and wrong behaviour. Ethics are consistent (independent of time and place), whereas values as it has been explained earlier are different for different persons depending on cultural background and beliefs. That is why what is important for one person, may not be important for another person. Values tell us what we want to do or achieve in our life, whereas ethics helps us in deciding what is morally correct or incorrect, in the given situation.

As far as value based leadership is concerned it is influenced by the culture and those common set of values which develop a culture of accountability. The commitment to a value system serves to strengthen the organisation's culture, increases role clarity of each and every individual within the goal clarity of the organisation. Such an approach improves productivity, and as such serves as a long-term benefit.

It is important for a leader to identify and acknowledge one's own deeply held values because that improves self-awareness which is critical to working with and leading others. However underlying requirement is that one is sensitive to the values of others because that will empower subordinates and they also become stake holders in the success. It is also incumbent on the leader to define the organisation's value system, which should be a combination of his own values and values of all stake holders. This helps in building a strong organisational culture by creating a happy team wherein every member feels that success and growth of the organisation is his success and growth. Also it helps the entire team to work as monolithic organisation wherein the principle becomes, 'One for all and All for One'.

Conclusion

Leadership plays an important role in the mission accomplishment. However, leadership alone is not sufficient because as it is said in mathematics it is a necessary condition but is not a sufficient condition. Sufficiency comes when the followers also come on the same page as the Leader and that happens when values of both leader and followers are in sync. That underlines the need of values of leader and values of followers becoming colinear and that happens when the relationship between the leader and followers become intimate and the leader is not self -centred but cares for and is sensitive to the values of his followers. Best example of value based leadership is found in abundance in armed Forces where both leaders and followers come on the same page when they both start working on the credo, "DESH KI IZZAT, UNIT KI IZZAT, PARIVAR KI IZZAT AND APNI IZZAT", in that order. Therefore it needs to be noted that Value based leadership gives a direction with which all stake holders can identify themselves and then together they can go for

excellence. In the end sayings of following great leaders sum up different aspects of value based leadership:-

"As we look ahead in the next century, value based leaders will be those who will empower others"

-Bill Gates

"Value based Leadership is the art of getting someone else to do something you want to be done because he wants to do it"

- Dwight D. Eisenhower

"A leader is best when people barely know that he exists, when his work is done, his aim is fulfilled, they will say, we did ourselves"

-Lao Tzu

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

-Bhrithari

Translation of the above – Whether people of wisdom criticise him or praise him, whether money comes to him or goes away, death comes today or after ages, the steps of one who is trading the path of righteousness never waver.

To my mind these four quotes by great visionaries sum up all that a value based leader needs to have. The need of a value based leader in every sphere of polity is as important as any other element in the working out of the Comprehensive National Power. It is therefore the responsibility of everyone in the line of decision making to work in their respective spheres of interest to develop value based leaders specific to their areas of interest/ influence.

■

AN ARAHANT IN BUDDHISM

Dr. Mahesh Kumar Sharan*

Abstract -In Buddhism arahantas are described as those men and women who have attained Enlightenment after the Buddha, who was the first arahant and cleared the path to the attainment. Yet from the standpoint of emancipation there is no difference between the Buddha and his arahant disciples, though the former is endowed with more psychical power or super knowledge and some other attributes as a result of practising the ten perfections during a long period of time in the past. Moreover, we should note that women are placed on a part with men in regard to the capacity of attaining Enlightenment, and it is evident that the instance of women-arahants declaring their final knowledge are more than monks declaring the same.
Key-words - Buddhism, Arahant, Enlightenment, Nikaya, Tripitaka, Virtue, Mangala-Sutta, Dhammapada

In Buddhism arahantas are described as those men and women who have attained Enlightenment after the Buddha, who was the first arahant and cleared the path to the attainment. Yet from the standpoint of emancipation there is no difference between the Buddha and his arahant disciples, though the former is endowed with more psychical power or super knowledge and some other attributes as a result of practicing the ten perfections during a long period of time in the past.[1] Moreover, we should note that women are placed on a par with men in regard to the capacity of attaining Enlightenment, and it is evident that the instance of women-arahants declaring their final knowledge are more than monks declaring the same.[2]

As to a lay arahant we find mention of 21 lay arahants in the Anguttara-Nikaya[3] and we know from other sources that many lay men and women attained arahantaship while being in a lay life but immediately they entered the order.[4] It is stated in the Milindapanaha[5] that there is one of two courses for a lay arahant to follow, namely, to enter order on the day of attainment, or he dies. And in the Majjhima Nikaya[6] the Buddha tells Vacchagotta that a householder without getting rid of the family's fetters at the breaking up of the body cannot end suffering. But the fact seems to be what the Kathavatthu[7] maintains: it is not the external characteristics of a recluse or a lay man that count, but anybody who

*Former-Professor and Head, P.G. Deptt of Ancient Indian and Asian Studies, Gaya College, Gaya - Magadh University Bodhgaya (Bihar). Mobile- 6393771493

is freed from the mental fetters and lives a life of complete renunciation could attain arahantaship. Thus, we find this point clarified by the Buddha himself when he says that if Brahmin youth, either a householder or one who has gone forth is fairing along rightly, then as a result and consequence of his right course he is accomplishing the right path, dhamma, what is skilled.[8] A study on the Guhatthaka-sutta and Jara-sutta of the Mohaniddesa including their commentaries fully confirms the fact.[9] Besides, we know that the non-returner who does attain arahantaship among the Suddhavasa gods and he will make an end to suffering there. This shows clearly that an arahant has transcended laity and monkhood.

Now, we come to the descriptions that characterize an arahant as the ideal men. Here we can consider from two standpoints viz. that which is concerned with his subjectivity, and that which is related to other.[10] It is again, interesting to note that the Buddha himself tries his best to define what should constitute the ideal man according to his insight into the scheme of things. It is well-known from his attempts at giving the meanings to the terms bhikkhu, brahmana, samana or muni which are really the expression for an arahant or an ideal man of the time.

In the first place, it is stated that one cannot realize arahantaship unless one removes six things, namely conceit, underrating, overrating, complacency, stubbornness and instability.[11] This points to the state of an arahant's mind in general, in which such things cannot be found. And in such a person who has attained the excellence of true noble knowledge and insight beyond man's state the followings are absent-forgetfulness in mindfulness, lack of self possession, unguardedness as to the sense-doors, lack of moderation in eating deceit, and mealy-monthedness (for begging).[12] With all these and the destruction of the four cankers and of the ten fetters mentioned earlier, which gives birth to arahantaship, it clearly suggests the fully and well-balanced mind of this living reality. And it is best described in terms of being freed by right knowledge[13], he is perfectly peaceful and equipoised. Here the word 'tadi' is of significance historically connected with any ascetic seeking perfection[14] and it is an intrinsic worth constituting an arahant. This is well established in the Venerable Sariputra's episode in which he sought pardon from a monk who implored pardon from him, resulting in the Buddha's following utterance – "Like the earth, a balanced and well-disciplined person resents not. He is comparable to an Indakhila. Like a pool, unsullied by mind, it is he, to such a balanced one life's wanderings do not arise.[15] As such, an arahant is properly described as the such-one (or tadi) which is also the meaning used in the Vedic literature.[16] In addition, the meaning of the term is significantly related to that of the term tathatta[17] and tathagata[18], which is directly connected with the import of Nibbana or arahantaship. In this respect, it is clear that an arahant is a man of

integrity, conforming to the reality of things and not influenced or misled by the unreal. Thus, we find that the arahant is said to transcend both likes and dislikes[19], merit and demerit or good and bad.[20] He is the fearless, the noble, the hero, the great sage, the conqueror, the desireless, the cleanser and the enlightened.[21] He yearns for nothing in this world or the next[22], he is not wrathful, but is dutiful, virtuous, free from craving, self-controlled[23], whereas his wisdom is deep, he is intellectual, knowing a right path from wrong.[24] In short, he is fully endowed with the virtues which are most desirable and indispensable seen as those built in any ideal personality. These include confidence[25], contentment[26], patience[27], purity[28], humility[29], veracity[30], gentleness[31] etc. resulting from the understanding of things as they really are.

The arahant's subjectivity as pointed out above is by itself the basic infrastructure on which the second aspect rests. Primarily, we should note that the arahant, though removing all the illusion of self or anything substantial, still conforms to the conventional usage of language and thus also to the norms of society. This can be seen from the Buddha's reply to a God's pertinent question. Here the Buddha says that- "A monk who is an arahant completing all there was to do, cankarless and living the final life, might say thus: 'I' say 'they' say; it is 'mine". He is skillful, knowing a common expression and would speak merely conforming to such an expression.[32] His words are moreover, meant for helpfulness, leading to harmony and progress in society. Thus, "He delights in harmony, finds pleasure therein, rejoices in harmony and utters words that make for harmony. Abandoning bitter speech he abstains there from. Whatever speech is blameless, pleasing to the ear, affectionate, speech that goes to the heart, is urbane, delights many folk-such speech does he utter. Abandoning the babble he abstains there from. He is one who speaks in season, speaks sense, speaks according to dhamma, speaks according to the discipline. He speaks words with treasuring up, words seasonable, reasonable, discriminating and concerned with profit.[33]

Now we come to the other aspects which are essentially important from the standpoint of human relationship, apart from the above expressions. We know that a monk or bhikkhu necessarily prescribed in the Vinaya-Pitaka. Yet there is a certain statement referring to a particular set of moral rules that an arahant cannot transgress, namely (i) he cannot deprive a living creature of life (ii) or take what has not been given as it were by theft, (iii) or indulge in sexual intercourse, (iv) or speak a deliberate lie, (v) or enjoy pleasures of the sense in regard to what was stored as he did formerly when in the household state.[34] Positively, it means that he is modest, shows kindness and remains friendly and compassionate to all creatures, to all beings.[35] He takes only what is given, he waits for a gift, abides in

purity free from theft.[36] Regarding sensuality, he dwells observing chastity.[37] And as to his speech, he speaks the truth, is a joiner of truth in truth.[38] In addition, the arahant is said to abstain from indulgence in liquor, he lives on one meal a day, refraining from food at unseasonable hours; he refrains from going to the exhibitions of nautch-dancing and singing; he abstains from the use if high, wide couches, and makes his bed lowly, on a pallet or on a spread of rushes.[39] All these and some more are said to become the arahant's habitual practice throughout his life.[40]

Hence, the arahant is everybody's friend, everybody's comrade and is compassionate towards all beings.[41] He is friendly amongst the hostile, peaceful amongst the violent, and unattached amongst the attached.[42] This is because "He dwells having suffused the first quarter with a mind of friendliness, likewise the second, likewise the third, likewise the fourth, just so above below, across; he dwells having suffused the whole world everywhere, in every way, with a mind of friendliness that is far-reaching, wide spread, immeasurable, without enmity without malevolence.[43] Yes, the arahant is a critic, a scourge of evil[44], he is not under other's influence[45] and does not concur with anyone nor dispute with anyone.[46] This fact is possible for him because he does not cling to anything in the world through his knowledge of things as they are. This leads him to transcend all the philosophical views[47], in other words, for him there is nothing worth clinging to.[48] And, in this light, it is quite conspicuous that the arahant is symbolic of virtue (sheela) and wisdom or, in a more popular expression, knowledge-and-conduct. This is already reflected in the discussion between the Buddha and Sonadanda about the characteristics of a true Brahmana or ideal man has nothing to do with birth, verses colour, but the qualities that are indispensable in constituting this ideal personality are virtue and wisdom[49] "For wisdom, Oh Gotama, is purified by virtue and vice versa. Where there is virtue, wisdom is there, and where there is wisdom, virtue is there. To the virtuous there is wisdom, to the wise there is virtue and wisdom and virtue are declared to be the best thing in the world.[50] These two qualities[51] are thus the intrinsic values determining and idealizing humanity, which are extremely desirable and indispensable in any society. Therefore, in the Mangala-Sutta[52] it is said that seeing a monk or the ideal man is the highest blessing, while the Dhammapada decisively points out[53]- whether in village or in forest, in vale or on hill, wherever arahant dwell-delightful, indebted is that spot."

References:

1. W.G. Weeratne article – Arahant in Encyclopedia of Buddhism, Vol II, footnote 1, p. 42
2. Ibid, p. 45
3. Anguttara Nikaya III, p. 451

4. Vinaya Pitaka-1, p. 15
5. Milindapanha II, p. 96
6. Ibid.
7. Katthavatthu Attakatha, p. 157-158
8. Milindapanha II, p. 197
9. Bimala Charan Law – Concept of Buddhism, The Keru Institute, Leiden, 1937, p. 98
10. This is only for convenience, there are certain virtues which are connected with both respects.
11. Anguttara Nikaya III, p. 451
12. Ibid
13. Samyukta Nikaya I, p. 162
14. Vide Ven. Dr. Henpitagedara Nanavasa- The Background of the Buddha Ideology, The Mahabodhi Vol. 80, No. 5-6, May9-June 1972, p. 238
15. Dhammapada - verse 95
16. Pali Text Society Dictionary – Vide Tadin
17. Ibid
18. Dhammapada - verse 418
19. Ibid - verse 412
20. Ibid - verse 422
21. Ibid - verse 410
22. Ibid - verse 400
23. Ibid - verse 403
24. Milindapanha I, p. 175
25. Dhammapada – verse 375
26. Ibid - verse 399
27. Ibid - verse 413
28. Ibid - verse 407
29. Ibid - verse 393
30. Ibid - verse 408
31. Samyukta Nikaya I, p. 14
32. Abhidhammakosha, p. 205
33. Majjhima Nikaya I, p. 523
34. Anguttara Nikaya I, p. 211
35. Ibid
36. Ibid
37. Ibid
38. Ibid - p. 212
39. Milindapanha I, p. 179
40. Theragatha – verse 648

41. Dhammapada – verse 406
42. Majjhima Nikaya I, p. 369
43. Samyukta Nikaya I, p. 63
44. Sutta Nipata, verse 364
45. Milindapanha I, p. 500
46. Sutta Nipata, verse 794
47. Ibid - verse 795
48. Digha Nikaya, I, p. 120-123
49. Ibid - p. 124
50. Ibid
51. Khuddakapatha, p. 3
52. Dhammapada, verse-98
53. Udâna, p. 56

Decision making in an organization: It's Role and Relevance

Dr. Niraj Kumar Singh*

Introduction

To come to a decision means to cut off deliberations and to come to a conclusion. Decision making is a process of selection and the aim is to select the best alternative. A decision is an act of choice wherein an excutive forms a conclusion about what must and must not be done in a given situation. It is a conclusion that the manager has reached as to what he or others should do at some later time. It is a solution selected after examining sevral alternatives.

A decision is a course of action which is consciously chosen from among a set of alternatives to achieve a desired result. It means decision comes in picture when various alternatives are present. Hence, in organization an execute forms a conclusion by developing various course of actions in a given situation. It is a made to achieve goals in the organization. To decide means to cut off on to come to a conclusion.

It is also a mental process. Whether the problem is large or small in the organization, it is usually the manager who has to comfort it and decide what action to take. So, the quality of managers' decisions is the Yardstick of their effectiveness and value to the organization. This indicates that managers must necessarily develop decision making skills.

According to D. E. Mc Farland, "A decision is an act of choice wherein executive forms a conclusion about what must be done in a given situation, a decision represents a course of behaviour chosen from a number of possible alternatives."

According to Haynes and Massie, "A decision is a course of action which is consciously chosen for achieving a desired result".

*Asst. Professor (B.B.A. Department) Siddharth University Kapilvastu, Siddharthnagar(U.P.)

.

According to R. A. Killian, "A decision in its simplest form is a selection of alternatives".

Decision making involves two or more alternatives because if there is only one alternatives there is no decision to be made. Thus, from above definitions it can be concluded that decision-making is a typical form of planning. It involves choosing the best alternative among various alternatives in order to realize certain objectives. This process consists of four interrelated phases, explorative, speculative, evaluative and selective.

Characteristics of a decision making

- Decision is the choice of the best course among alternatives.
- Decision is the end process preceded by deliberation and reasoning.
- Decision making is a mental process because the final selection is made after thoughtful consideration.
- Decision involves rationality because through decision and endeavour is made to better one's happiness.
- Decision is aimed at achieving the objectives of the organisation.
- It also involves the evaluation of the available alternatives because only through critical appraisal one can know the best alternative.
- It may also be negative and may just be a decision not to decide.
- Decision making in involves a certain commitment. This commitment may be for short run or long run depending upon the type of decision.
- Decision relates the means to the end.
- It is always related to a situation.

Objectives of decision making

- Identifying Goals
- Efficient Utilization of Resources
- Proper communication
- Selecting Best Alternative
- Business Grwoth

- Promotes Innovation

Steps in decision making process

- Defining the problem
- Analysing the problem
- Developing alternatives
- Evaluating alternatives
- Selecting the best alternative
- Implementing the decision
- Following up the decision

Role and Relevance of Decision Making:

Decision making is a process of selecting the best course of action or plan from different alternatives available. It is a means through which managers takes action for solving the problem. This is an integral part of the management system of the company which aims at improving efficiency. Decision making is the one through which managers are able to take right decisions at right time.

Taking decisions is the core part of every organization management team. If any wrong decision is taken then it would be having negative consequences on the organisation. It may affect its overall functioning making it difficult for organisations to attain their goals. Decision-making process makes it possible to choose the right action among different alternatives at the right time. The selection of the right decision makes it easy to properly manage all business affairs and easily attain objectives.

Decision making is a continuous and dynamic activity for every business. It must be ensured that people of sound mind and creative thinking should be involved in the decision making process. Decision-making process involves a series of steps to be followed properly to take better action. In today's time organisation involves large no. of peoples in their decision making. **The following points describes Role and Relevance of decision making in the organization:**

1. Pervasiveness

Decision making is essential at each level of management either it is top level middle level or operative level, strategic decision such as planning, organising, directing and

controlling are made by top level management, division of works, fixation of authority and responsibility like tactical decision are handled by middle level management. Regular operating decision are taken by operating level management such as preparation of schedule of daily work, division of work etc. So, it is seen that decision are taken at all level of management. So it can be pervasive in nature.

2. Optimum utilisation of Resources

Optimum utilisation of resource either it is human or material is most important factor for achievement of aims and objective of an organisation . Most important resource of an organisation are men, money, material, machine, method, market and media which are denoted as 7ms. If all these resource will properly used and their will no wastage then it will be the profitable for any organisation and it is possible only through good decision making.

3. Essential component

Decision making is an essential component in any kind of organisation. At any level of management either it is top, middle or operative level decision making is essential for successful operation of business. At every stage of managerial function it is as important as blood for human body.

4. Helpful in successful operation of business

In business organisation many kind of problem may arise at different level, different situation and different time with the help of decision making tool all these problem are solved on time which is helpful in successful operation of business.

5. Facilitates Innovation

Innovation is something which is required in every sphare of life because of changing situation so as to in business too as per market changes. Innovation brings new Idea, new product, new process, new methods etc For its implementation proper planning and decision making is required.

6. Enhance employee motivation

Because of decision making overall framework of operation and guidelines of operation are guided at every level of the organisation that's why all the work done by them gives success that enhance their motivation level.

7. Achievement goals and objective

Decision making is the life blood for any organisation. every organisation have some goals and objectives and for they work hard to achieve these goals and objectives they have to take lots and decision while working to taking proper decision at proper time helps in achieving their objective.

8. .Help to establish plan and policies of the organisation

Every organization work according to their plan and policies. The plan and policies should be as which will help to achieve the organisationsal goals. Taking proper decision making help to establish plan and policies of the organisation.

9. Help to face threats and challenges

If you have a good decision making capacity you will face all the challenges comes to your way. In the same manner in an organisation decision taken by the manager or administrator on problematic situation can help the organisation to face and turn the challenges into the opportunities.

10. Create confidence among employees

If you know the map you can reach your destination without any hurdle. In the same manner in an organisation if proper decision is taken by the top management it will help to make plans and policies in in better way with the help of which an employee can perform better and it will boost his confidence.

11. Selection of best course of action

In any organisation their occurs lots of problem at different time. The decision maker have to take decision regarding it on the basis of time and situation but there is lots of decision related one problem so decision maker have to select best course of action among them.

References

- Prasaad, L.M, 2005, Principles and practice of management, Sultan chand and sons publications, New Delhi.
- Saxena, Jitendra, 2011 Business oragnisation and management, SBPD publishing house, Agra.

- Rao, V.S.P, 2002, Business organisation and management, Himalaya publishing house New Delhi.
- Sherlekar & sherlekar,2014 Modern business organisation and management, Himalaya publishing house, Mumbai.
- Vasishth, Neeru,& Vasishth Vibhuti, 2014,Principles of management,text & cases Taxman publication, New delhi.
- Rao, V.S.P, 2002, Principles of management, Sultan chand and sons, New Delhi.
- Vasishth, Neeru, 2008,Principles of management, Taxman publication, New delhi.
- Sudha,G.S,2007,Principles of management,Ramesh book depo,New Delhi.
- Singh,R.K,2015, Principles of business management,VK global publication pvt. Ltd. New Delhi.
- Chopra, R.K,2009 Administrative office management, Himalaya publishing house, Mumbai.
- Ramasamy,T, 2018 Principles of management, Himalaya publishing house, Mumbai.
- Singh,N.K, 2014, Principles of business management,Rajeev Sahitya Bhawan publications,Agra.
- Prasad Manmohan,2015, Management concept and practices, Himalaya publishing house, Mumbai.
- Rai, O.P, 2007, Business management, Wisdom books Varanasi.
- Saxsena, S.C,2015, Principles of management,Sahitya Bhawan publications,Agra.
- Agrwal, R.C,2015, Principles of business management,S.B.P.D.publishing house Agra.
- Gupta,R.N, 2012, Business organisation and management, Taxman publication, New delhi.
- Jain,S, 2013, Organisational management,Shree publishers & Distributors,New delhi.

■

Satisfaction in Public Distribution System Service of Uttar Pradesh With Special Reference to Gorakhpur District

Dr. Manjeshwar*

Abstract: This research paper is related to satisfaction of population in Public Distribution System service in Gorakhpur district. Public Distribution System service is an important public service provided by government for the betterment of social and economic welfare of people in the Gorakhpur district. The satisfaction of Public Distribution System service has been measured with the help of three independent variables (gender, habitat and religion) in respect with main and interaction effects between variables. In this regard, this research paper deals with introduction, review of literature, aim of the study, methodology, analysis of the study and conclusion.

Keywords: Gender, Habitat, Religion, Satisfaction, Quality and Public services.

Introduction

Uttar Pradesh is the most populous state in India. According to census 2011, Uttar Pradesh has population of 19.98 crores with male and female are 104,480,510 and 95,331,831 respectively. In 2001, total population was 166,197,921 in which male were 87,565,369 and female were 78,632,552. The growth of total population in this decade was 20.23%, while in the previous decade it was 25.80 %. Out of the total Gorakhpur population for 2011 census, 18.83 per cent lives in urban region of district. In total 836,129 people lives in urban area of which males are 439,051 and females are 397,078. Sex ratio in urban region of Gorakhpur district is 904 as per 2011 census data. As per 2011 census, 81.17 per cent population of Gorakhpur district lives in rural areas of

*Assistant Professor, Dept. of Economics, M.P.P.G. College Jungle Dhusan, Gorakhpur.

.

villages. The total Gorakhpur district population living in rural areas is 3,604,766 of which males and females are 1,838,726 and 1,766,040 respectively. The sex ratio of rural areas of Gorakhpur district is 960 while average sex ratio of Gorakhpur district is 950. Thus for every 1000 men there were 950 females in Gorakhpur district. Also as per census 2011, the Child Sex Ratio was 909 which is less than Average Sex Ratio 950 of Gorakhpur district.

Here, public services means, those services is provided by government for their citizen is known as public services. These services are generally available free for all. One of the important issued that quality of public services are not satisfactorily. There will be difference of quality in between public and private services. Now a days, government responsibility is to full fill the demand of public services. Therefore, satisfaction of public services is affect by supply of public services. Quality of public services was measured by many of the researchers in their research work. The responsibility of state government is to maintain the level of supply of public services as well as their quality. Public services are not properly available in East U.P. as compared to West in the proportion of population density. Therefore, we can say that implementation of government policy is not properly effective. Gorakhpur district is select for our research work because the supplies of public services are not sufficiently provided to the district levels as well as their populations. Many of the public services are not equally distributed in rural and urban area of district. Therefore, it is important to measure the satisfaction level of public services.

Review of Literature:

There are some studies conducted by researcher to analyse the status of Public Distribution System service in different states of India. **Sivamurugan Anmol (01)** reported his work on poverty and employment generation programmes. Based on his results, he observed that poverty and unemployment are the two major problems being faced by not only developing but also some of the developed countries of the world. It may be because of recent economic

crisis compared to developed countries. Author suggested that the situations of most of the developing countries are too worse.

Pal Brij (02) found in many states that ration cards are being mortgaged to ration shop owners and the beneficiaries are not aware about their rights. It is highlighted that there should clear cut policy regarding ration cards. All card holders must be motivated and should be made aware about their rights.

Bhattacharyya, et. al. (03) observed in their study by using a primary data collected from the field during 2007-08. They studied the nutritional status by way of two macronutrients e.g. calories and protein. Various other micronutrients of rural households in three Indian states like Andhra Pradesh, Maharashtra and Rajasthan. They argued that in all the three above states, there were serious deficiencies regarding consumption of various nutrients in public distribution system.

Kumar M. (04) in his study, he examined that most of the programmes aiming at poverty alleviation but not based on economics. The study has evaluated the efficiency of the poverty alleviation programmes, self-employment programmes, wage employment programmes and national social assistance programmes, with PDS based on micro level study. The result also throws sufficient light on political economy of poverty elevation besides identifying several limiting factors in the way of poverty alleviation programmes.

Nakkiran S. (05) stated the effectiveness of Public Distribution System in rural Tamil Nadu. He abbreviated the dissatisfaction over the quality and quantity of goes available was high among the respondents in weaker section.

There is no study regarding to satisfaction of Public Distribution System service. So, the measurement of satisfaction level in Public Distribution System service in Gorakhpur district of Uttar Pradesh is needed.

Aim of the Study:

The research is based on the satisfaction of Public Distribution System services in rural and urban area of Gorakhpur district of Uttar Pradesh. It concerned with qualitative data analysis on the basis of primary data with the

help of research schedule. The objectives of the study are to analyse how government developed the commitment to providing basic public services. To examine the satisfaction levels of people in Gorakhpur district of Uttar Pradesh.

Research Methodology:

The present study was conducted to investigate the effect of gender, habitat and religion on public service satisfaction of Gorakhpur district. The study was conducted in a 2×2×2 factorial design with two types of gender (male and female), two types of habitat (rural and urban) and two types of religion (Hindu and minority). Thus, there were eight treatment conditions in total. The data collected in the form of interview schedule answered by the respondents from rural, urban area of Gorakhpur district. The information collected was processed and tabulated suitably by highlighting all the parameters. The theoretical information was converted in numbers by ranking the Likert scales. Analyzing the data with the help of statistical tools like factor analysis, F test, ANOVAs, mean, standard deviation, correlation statistics were used with the help of M.S.Excel, and SPSS. For the presentation of the data, tables, charts, bar diagrams are used.

Analysis of the Study:

In order to carry out our research paper to analyse satisfaction of population in Public Distribution System service in rural and urban area of Gorakhpur district of Uttar Pradesh on the basis of independent variable like gender, habitat and religion are discussed in detailed.

Indian economy is a one of the largest country in the world therefore a large share of this populated country is poor. A poor population in the economy is leprosy for the growth of economy as well as for employment and living standard. Many governments in the world run poverty elevated programmes in the economy. Indian government also run a poverty-elevated programme named Public Distribution System (PDS). Uttar Pradesh government is distributed food grains between poor populations based on APL, BPL and Antyoday level. Food security is a one of the most important programme also run with the help of

PDS. State government distributed essential foods for APL, BPL and Antyoday cardholders, but cardholders told about amount of food grains decided by state government does not properly distributed by Kotedar (distributer). Therefore, it is important to measure the satisfaction level of public distribution system of Gorakhpur district provided by state government

Table: 1 Grand mean values of Public Distribution Systemsatisfaction score as a function of Gender, Habitat and Religion.

Gender	Habitat	Religion	Mean	Std. Deviation	N
Male	Rural	Hindu	8.2609	4.96403	46
		Minority	10.1000	4.61893	30
		Total	8.9868	4.88397	76
	Urban	Hindu	12.4545	4.15400	33
		Minority	11.8947	4.52026	19
		Total	12.2500	4.25591	52
	Total	Hindu	10.0127	5.06241	79
		Minority	10.7959	4.61871	49
		Total	10.3125	4.89375	128
Female	Rural	Hindu	10.4259	4.30709	54
		Minority	8.7714	3.06868	35
		Total	9.7753	3.93340	89
	Urban	Hindu	10.0976	2.94792	41
		Minority	9.7407	3.70647	27
		Total	9.9559	3.24812	68
	Total	Hindu	10.2842	3.76621	95
		Minority	9.1935	3.36734	62
		Total	9.8535	3.64237	157

Total	Rural	Hindu	9.4300	4.72315	100
		Minority	9.3846	3.88785	65
		Total	9.4121	4.40065	165
	Urban	Hindu	11.1486	3.70369	74
		Minority	10.6304	4.15456	46
		Total	10.9500	3.87374	120
	Total	Hindu	10.1609	4.39094	174
		Minority	9.9009	4.02934	111
		Total	10.0596	4.24844	285
Source : Compiled by Researcher.					

Table :2

Summary table of ANOVA for Public Distribution Service as a function of Gender, Haital and Religion

Source	Df	Mean Square	F	Sig.
Gender	1	54.769	3.259	.072
Habitat	1	178.272	10.607	.001
Religion	1	2.173	.129	.719
Gender * Habitat	1	115.994	6.901	.009
Gender * Religion	1	43.924	2.613	.107
Habitat * Religion	1	4.920	.293	.589
Gender * Habitat * Religion	1	55.431	3.298	.070
Error	277	16.808		
Total	285			

a. R Squared = .092 (Adjusted R Squared = .069)

The mean and S.D. values of public distribution system are given the table 1 and mean values are depicted in figure 1. It is evident from the table 1 and figure 1 that urban population (Grand Mean = 10.9500) are satisfied with public distribution system as compared to rural population (Grand Mean = 9.4121) of Gorakhpur district provided by state government in Uttar Pradesh. Thus, it may be because distribution system of public distribution system in rural area is not satisfactorily. The quality of food grains distributed by kotedar is not well in rural area of Gorakhpur district. Inquiry officers and other officers, who are investigate the quality, amount and distribution systems of public distribution system in rural area of Gorakhpur district is not regular and properly investigate. Therefore, in rural area are having arbitrariness and cheat acting with full confidence due to dormant of investigating officers. Therefore, they are less satisfied of public distribution system of Gorakhpur district.

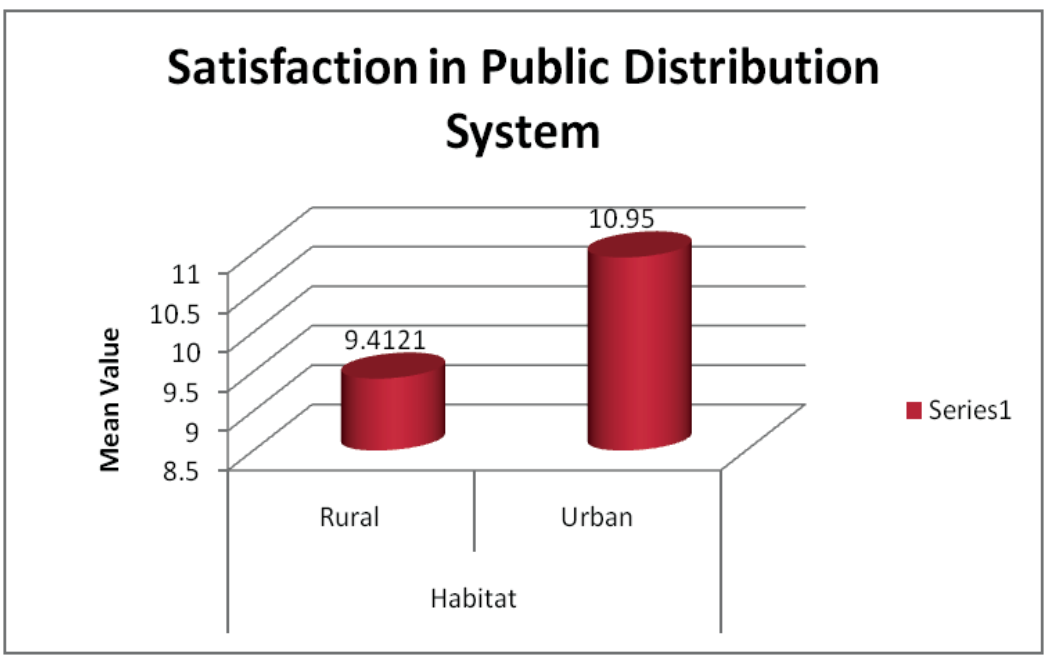

Figure-1: Mean values of Public distribution system Service use score under varying conditions of Habitat (Based on table 1).

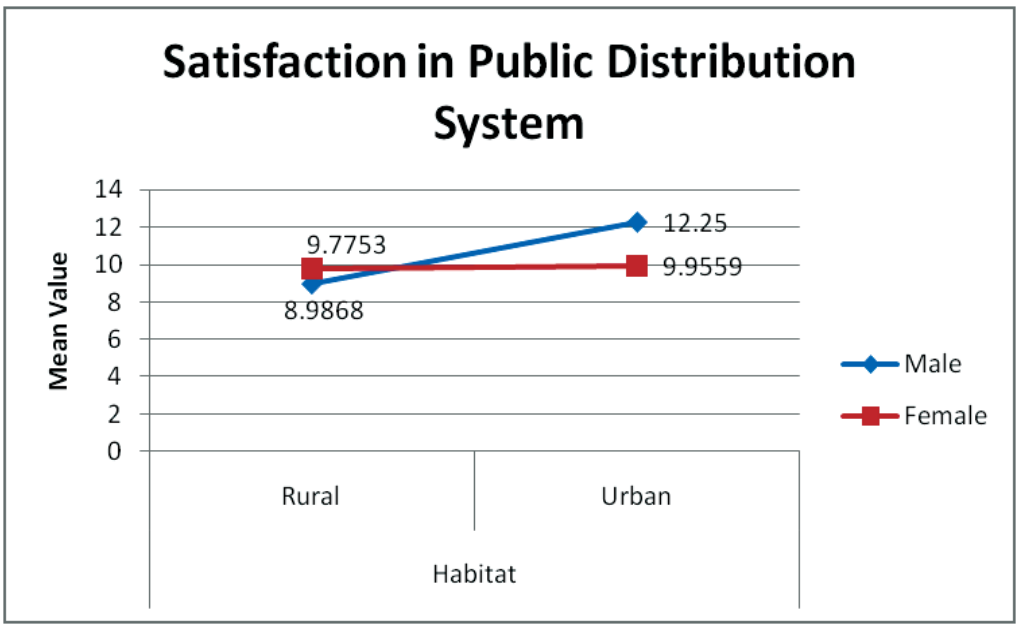

Figure-2: Mean values of Public distribution system Service use score under varying conditions of interaction between Gender and habitat (Based on table 1).

The summary table of ANOVA (Table 2) clearly shows that the main effect of habitat ($P < 0.001$) is highly significant. The gender × habitat interaction effect ($P < 0.009$) is also found to be significant. It is apparent in the figure 2 that satisfaction in public distribution system of Gorakhpur district, under varying conditions of interaction between gender and habitat. It is evident that rural male (8.9868) and rural female (9.7753) population are less satisfied with public distribution system service as compared to male (9.9559) and female (12.2500) population in urban area of Gorakhpur district provided by state government in Uttar Pradesh. However, male population (8.9868) in rural area are less satisfied with service as compared to female population (9.7753). Whereas, female population (9.9559) are less satisfied with this service as compared to male population (12.2500) in urban area. It is shows in the figure, the satisfaction difference between male and female in rural area is lower as compared to male and female in urban area of Gorakhpur district. It may be because, public distribution system in rural area are not running with proper channel; as well as, Kotedar does not distribute food grains who are truly afford this service. Every

Kotedar distribute the food grains with kerosene oil at high price. I have asked to Kotedar orally that why should you distribute all items at high price, after this, they are told that corruption of price as well as weight of food grains are distribute to every distributing officers who are relies the food grains; therefore, they are helpless to increase the price. Thus in is clear that they are less satisfied of public distribution system of Gorakhpur district provided by state government in Uttar Pradesh.

Conclusion:

On the basis of above analysis, we have found that habitat is highly significant for satisfaction in Public Distribution System service in Gorakhpur district of Uttar Pradesh. But the satisfaction in Public Distribution System service with respect to gender and religion are insignificant. Therefore, urban population are highly satisfied with Public Distribution System service as compared to rural population. The interaction effect between gender and habitat is significant resulted that female population are highly satisfied with PDS service as compared to male population in rural area; however, male population is highly satisfied with PDS service in urban area of Gorakhpur district of Uttar Pradesh but satisfaction difference between male-female in urban area is high as compared to rural area of Gorakhpur district of Uttar Pradesh.

Reference:

1. **Sivamurugan Anmol, (2012),** National Rural Employment Programme xvi, pp. 348.

2. **Pal Brij (2011),** Organisation and Working of Public Distribution System in India: A Critical Analysis, International Journal of Business Economics & Management Research, Vol.1 (1), October.

3. **Bhattacharyya, Sambit, Raghav Gaiha, and Raghabendra Jha (2010),** Social Safety Nets and Nutrient Deprivation: An Analysis of the National Rural Employment Guarantee Programme and the Public Distribution System in India', ASARC Working Paper 2010–4, Canberra: Australian South Asian Research Centre (ASARC).

4. **Kumar M. (2007),** Political Economy of Poverty: A Micro-Level Study. Deep and Deep, tables, xii, ISBN: 8176299235, pp. 166.

5. **Nakkiran S. (2004),** A study on effectiveness of Public Distribution System in rural Tamil Nadu, the planning commission government of India, New Delhi. ■

EFFECTS OF FOOD ADULTERATION ON HUMAN HEALTH

Ritika Tripathi*

Abstract: To define it simply, food adulteration marks the depreciation in the quality of food i.e. unsafe and substandard for human consumption. The quality is lowered either by the addition of inferior quality material or by the extraction of a valuable ingredient. It is not just the physical add-on but also the biological and chemical contamination during the period of growth, storage, processing, transport and distribution that affects the quality of the food products.

Keywords: Food Adulteration, Quality Growth, Product, Health, Causes, Milk, Effects, FSSAI, Market, Unsafe, Substance Causing & Harmful

Introduction

Adulteration of food is defined as the addition or subtraction of any substance to or from food so that the natural composition and quality of the original food substance is affected. It is difficult for the consumer to detect the extent of adulteration. Adulteration of foods can either be intentional, unintentional or natural.

In other language Adulteration usually refers to adding impure matter to the food or drink which is intended to be sold so as to increase the quantity of the product. Adulterated food is impure and unsafe. This is done to increase profit but adulterated food causes serious threats to human life. For instance, when we buy chili powder from the market, only half of it will be actually chili powder and the rest will be wood powder or brick powder. Something that resembles the original product is added to it to increase the quantity of it. This way the shopkeeper is making more money by selling less quantity of the actual product. I do not

*Asst. Professor , Home Science Department, Maharana Pratap Mahaviddhylay, Jungle Dhusan, Gorakhpur

mean that all shopkeepers or manufactures are the same, there are few honest people as well. But, it is difficult to find them.

FOOD IS ADULTERATED IF:

- The food sold does not meet the nature of the substance or quality as per the demand of consumer.
- The food contains inferior or cheaper substance
- The food has been prepared, packed or kept under unclean conditions leading to contamination.
- Food contains substances that depreciates or injuriously affects the health.
- If the food's original nature is substituted wholly or partially by abstracting a portion of vital substance from food.
- If it is an imitation of some other food substance.

Commonly used food adulterants in India

1. Milk

A 2012 study conducted by the FSSAI across 33 states found that milk in India was adulterated with diluted water, detergent, fat and even urea.

Some of the adulterants that are used in milk are water, chalk, urea, caustic soda and skimmed milk, while Khoya is adulterated with paper, refined oil and skimmed milk powder. The level of adulteration in milk is dangerous to so many levels and has the highest chance of causing stomach disorders.

2. Tea/Coffee

Tea and coffee are two most used beverages in India, and thus highly adulterated. Tea leaves are usually adulterated with same coloured leaves, some might not even be edible. Several cases of liver infection across the country have been reported due to consuming adulterated tea.

Coffee seeds, on the other hand are adulterated with tamarind seeds, mustard seeds and also chicori. These adulterants are the main cause of diarrhoea.

3. Wheat and other food grains

Everybody knows that wheat is very commonly adulterated with ergot, a fungus containing poisonous substances and is extremely injurious to health.

4. Vegetables

Beware of the shiny vegetables! Yes, adulteration of vegetables is in news for quite sometime now. Different coloured and textured vegetables are often coloured with different dyes and substances. These vegetables are mostly adulterated with malachite green, a chemical dye which is known to have carcinogenic.

Common adulterants in fruits and vegetables are oxytocin saccharin, wax, calcium carbide and copper sulphate.

5. Sweets

Do you get Indian sweets covered with a silver foil during Diwali? According to Indian regulations, silver must be 99.9 per cent pure if it is used as a food ingredient.

6. Honey

There are so many varieties of honey available in the market, but due to its steep price, honey is commonly adulterated with molasses sugar to increase the bottle quantity.

According to a study carried out by the Centre for Science and Environment, most honey brands being sold in the country contain varying amounts of antibiotics and their consumption over time could induce resistance to antibiotics, lead to blood-related disorders and injury to the liver.

7. Dal

The most commonly adulterated dal is arhar dal and is usually adulterated with metanil yellow. Metanil yellow is a principal non-permitted food colour used extensively in India.

The effect of long-term consumption of metanil yellow on the developing and adult brain causes neurotoxicity

Metanil yellow is used in dal as an adulterant for colouring. Its presence can be tested in dal by adding a few drops of HCl to a test sample, if the solution turns pink in colour, it indicates the presence of metanil yellow.

8. Spices

Recently, a major Indian supplier was caught and had to destroy tons of turmeric for dangerous adulteration using metanil yellow and red oxide of lead - the later being highly carcinogenic.

Soap stone or other earthy material and foreign resinare the common adulterant used in Asafoetida. Papaya seeds, black berries are the common adulterant used in black pepper as they are almost similar in size but tasteless (sometimes bitter). Red chilli powder is adulterated with brick powder,salt powder or talc powder and artificial colours like Sudan Red.

The most expensive spice in the world. Saffron is adulterated by coloured dried tendrils of maize cob.

9. Butter and cream

Butter can be diluted with water or partially replaced with cheaper plant oils such as palm oil, sunflower oil and soybean oil. This increases the profits derived from a given volume of milk.

10. Ice cream

Most common adulterants in ice cream are pepperonil, ethylacetate, butraldehyde, Ethyl acetate, nitrate, washing powder etc are not less than poison. eppaer oil is used as a pesticide and ethyl acetate causes terribble diseases affecting lungs, kidneys and heart.

Effect of different adulterans on human health

Khesari Daal

According to medical research, consumption of the khesaridal could lead to lathyrism – paralysis of the lower body as well as numbness in the spine. This, because it contains di-amino-pro-pionic acid.

Ghee

Dr Zeenath Fatima, nutritionist in a private hospital in the city, said, "Spurious ghee is made up of vegetable oils and artificial flavours. It contains high amounts of hydrogenated fats which increases bad cholesterol and visceral fat. It has carcinogenic chemicals which directly affects the immune system. Essence colours are yellow 5 and 6 and red 60 which contain compounds like benzidine and 4- aminobiphenyl that leads to cancer. Essence colours lead to allergy reaction and increase the risk of cancer."

Though some research has concluded that pure ghee is good for health, cardiologists do not agree as saturated fat present in the ghee increases cholesterol levels and leads to blockage of arteries. In spurious ghee, in addition to the saturated fats, transfats are also present which too causes heart problems.

Milk

Water reduces the nutritional value of the milk.Moreover, if water is contaminated, it may lead to harmful diseases like cholera, typhoid, meningitis, polio, hepatitis A, etc.

A high amount of starch causes diarrhoea due to the adverse effects of undigested starch in the colon.

Presence of urea in milk causes vomiting, nausea and gastritis. In addition, when urea is used for milk adulteration, it can harm the kidney, heart and liver.

Spices

Adulteration is primarily intended for economic gains. However, it may lead to serious health risks for the public. Consumption of adultelrated spices for prolonged periods may result in stomach disorders, cancer, vomiting, diarrhoea, ulcers, liver disorders, skin disorders, neurotoxicity, etc.

Honey

Honey is undubtedly a delightful food. which is full of nutrients and antioxidants. If honey is adulterated which will cause severe long term and short term health issues.

They are following –

1. Obesity -High fructose called corn syrup is mixed in honey which is known for depositing fat on the abdominal tissues Intake of HFCS can even cause fatty liver disease.
2. Increased blood sugar level - adultrated honey consumption can lead to hyper glycemia it means increased of blood sugar level
3. The risk of toxicity -When the honey is adulterated, there is a strong possibility to have toxic side effects like Arsenic. it can cause cancer and arsenic poisoning.

How to be safe from adulteration?

There are laws for theft and every other crime existing in society and so are for adulteration. But there seems to be no end to it. The officers appointed to keep a check on the food safety need to be stringent with the offenders. The lawmakers need to keep a check on the law providers. And, rules need to be implemented properly for consumer safety. It is also our responsibility to take some of the precautionary steps to avoid the purchase and consumption of adulterated products.

1. Go for packed and branded items.
2. Check FSSAI stamp and expiry date.
3. Check for reliable certificates like FPO, ISI and AGMARK on the food items.
4. For certain edible substances, we can check in the following ways:

- For red chilli powder, mix it with water and if the colour changes to red, it's adulterated.
- Before consuming milk, check if it contains foam. Adulterated milk doesn't leave a mark on a surface. Different adulterants will have different effects.
- For coffee, we can put some of it in water. If the substances in the coffee drown, those are the adulterants.
- In sweets, the presence of starch will make the colour change with a drop of iodine.

5. Dial the Consumer Care Forum whenever you're suspicious of adulterants.
6. Do not Bargain on health.

CONCLUSION

Food adulteration has many effects on our health. Prolonged consumption of adulterated food even prove to be lethal. The use of organic food is more trending these days as organic food give us the complete nutrition that a particular food is supposed to give. It is not Laden with harmful chemicals are polished with toxins like wax.But due to low productivity organic food is not always available and is more expensive than the common produce their for it is important to detect if your food is adulterated various home methods can be used to do this on the industry level food adulteration can only be checked with strict and stringent laws and government interventions and checks general public should avoid eating lakh coloured junk and other forces of fruits and vegetables falling in running water before they are consumed check for leakage and validation of seals in milk or oil pouches always check and apply products having an FSSAI validated labels licence number list of ingredients manufacture date and its expiration.

References Books

1. Linkedinrajshekharreddy.com
2. balancenutritin.in
3. balancenutrition.in
4. indiastudychannel.com
5. publichealthnotes.com
6. Induatuday.in
7. Indianexpress.com
8. Deccancronicle.com
9. Godigit.com
10. Vikaspedia.in

■

Role of Plant Based Antioxidant in Prevention of Covid-19

Smita Dubey*

Abstract: Covid-19 pandemic threatens patients, societies and health care system around the world. It is an infectious respiratory disease. At present, there are no specific vaccine or treatments available for Covid-19. When dealing with a insidious viral disease like Covid-19, It is best to take the firm stand that prevention is better than cure. So, to prevent from this disease we need to boost up our immunity in which antioxidant play an important role. Antioxidants act as first line defense system against free radicals damage and play vital role in keeping up with ideal health care. Antioxidants are substance that can prevent or slow the damage caused by free radicals to the cells. Free radicals are unstable molecules that the body produce as a reaction to environmental and other pressure. Free radicals are waste substances produced by cellular activities as the body processed food and reacts to the environment. If the body cannot process and eliminate free radicals efficiently it can result in oxidative stress. Oxidative stress has been linked to respiratory disease, Immune deficiency, cancer, heart disease and other inflammatory diseases. Antioxidants are said to help neutralize free radicals in our body and to boost overall health.[1] The sources of antioxidant can be either natural or artificial. Certain natural plant based foods are thought to be rich in antioxidants. The body also produces some oxidants. Hence, administration of balanced diet with good supplementation of fruits, vegetables, grains, oil and nuts that have adequate essentials oxidants such as zinc (Zn), vitamin C, D, cinnamaldehyde, propolis, selenium, piperine, allicin and curcumin can be sufficient to improve our body, immune system to prevent many diseases. At last, we can fight augments Covid-19 by improving our immune system through antioxidants.

Keywords: Antioxidant, Free radical, Fruits, Vegetables, Immune system, Health, Covid-19, Vitamin, C,D, Natural, Body, Oxidative stress, Supplements.

Introduction

The COVID-19 is a pandemic caused by SARS-CoV-2 which has infected and killed many people globally. The corona virus disease (COVID-19) was first emanate in 2019 from Wuhan's city in China. The disease has spread to almost all nations all around the world and it was declared a pandemic by the WHO, And it brought about by the

*Asst. Professor, Home Science, Maharana Pratap Mahavidyalay, Jungle Dhushan, Gorakhpur.

serious acute respiratory syndrome Covid-2 (SARS-CoV-2), a single stranded RNA virus and is systematically a member from the Betacoronavirus genus.[2] Patients generally suffer with fever and cough, gastrointestinal tract expressions like diarrhea, vomiting and stomach pain. Current studies shows that the obesity has also shown contribute to the increased morbidity in Covid-19 infection.

As of now, most nations all throughout the planet are into creating corona antibodies, a couple of them have gone into human trials while a large portion of them are in different phases of research and development work. Further, there is no particular medication for use against COVID-19 just as significant information both at the public or global level on the impacts of nutritional enhancements on hazard or seriousness of COVID-19. The improvement of new antivirals for COVID-19 needs considerable time period for final approval. A few proofs demonstrate that numerous nutritional supplements from different herbs, spices, fruits, and vegetables can decrease the danger or seriousness of a wide range of viral diseases by boosting the immune system, especially among individuals with insufficient dietary sources and furthermore by their anti-inflammatory, free radicals scavenging, and veridical capacities.[3]

These supplements can be repurposed in alleviating the pathological impacts incited by the SARS CoV-2 viral infection. Accordingly, the utilization of natural compounds may give elective prophylactic and restorative help alongside the treatment for COVID-19. Antioxidants prevent or moderate the damage to the cells brought by free radicals reactions . In the accompanying area, the advantageous impacts of a portion of the antioxidant supplements are depicted.

Zinc (Zn)

Zinc is a fundamental metal associated with an assortment of biological processes because of its capacity as a cofactor, signaling particle, and a primary component. It manages provocative movement, inflammatory activity and has antiviral and antioxidant capacities. Zine can likewise regulates the viral entry, combination, replication, viral protein translation and virus sprouting of respiratory infections. Studies have shown that oral supplementation of Zn diminishes the event of intense respiratory infections by 35%. Zinc additionally minimize

the duration of influenza like side effects by 2 days just as works on the pace of recovery. The suggested doses from different investigations goes from 20 to 92 mg/weck.[4] Zinc is considered as the possible supportive treatment against COVID-19 disease because of its calming, antioxidant, anti-inflammatory as well as immediate antiviral impacts.

Vitamin C

Vitamin C can possibly secure against various infections because of its fundamental job on immune wellbeing. This vitamin support the capacity of different immune cells and improves their capacity to secure against infection. Enhancing your supplements with vitamin C has been displayed to diminish the duration and seriousness of upper respiratory infections (the greater part of which are thought to be because of viral infections), including the common flu. The recommended portion of vitamin C differed from 1 to 3 g/day. The total recommended dietary allowance for vitamin C is 60 mg. Different herbs, spices, organic products (fruits), and vegetables have discovered to be astounding source of vitamin C. For instance, thyme fresh, turmeric, cardamom, coriander, beetroot juice are excellent source of vitamin C. Vitamin C is additionally a strong antioxidant.[5] As a potent antioxidant, it scavenges reactive oxygen species. It prevents lipid peroxidation, and protein alkylation and hence shields cells from oxidative stress incited cell damage . Studies additionally have discovered that administration of vitamin C in blend with quercetin gives synergistic antiviral, antioxidant effects. Recently, in light of the clinical trials it is recommended that the oral intake of 250-500 mg quercetin, 500 mg vitamin C for high danger symptoms and gentle symptoms subjects double a day for 7 days and up to 3g vitamin C and 500 mg quercetin two times every day for 7 days in Acute respiratory distress syndrome patients (helped ventilation) works on the general recovery in SARS-CoV-2 infection. Hence, having the food supplement enriched with sources of vitamin C can help in alleviating and boosting immune response and anti-inflammatory properties, antioxidant impact against SARS-CoV-2 infection.

Vitamin D

Vitamin D is a fat-soluble vitamin, assumes a fundamental part in both in immunomodulatory, cell antioxidant and antiviral reactions. The human air route epithelium

constitutively communicates the vitamin D receptor accordingly empowering the defensive impacts of vitamin D against respiratory infections. Vitamin D expands the level of cell antioxidant and works with balanced mitochondrial capacities, prevent oxidative pressure related protein oxidation, lipid peroxidation and DNA harm.

Epidemiological information relates vitamin D deficiency to expansions in the sensitivity to acute viral respiratory diseases while its supplementation potentiates the natural resistant to respiratory viral infection including those brought about by Influenza A and B, para-influenza 1 and 2, respiratory syncytial virus, and hepatitis C. However there are no reports that vitamin D straightforwardly influences the virus replication, studies discovered that vitamin D could contribute to antiviral activity . Maybe this capacity of vitamin D could help in suppression of the cytokine storm in SARS-CoV-2 disease. The gainful impact of supplementation was found in patients across all age range and in people existing chronic disease. Older individuals are regularly lacking in these significant micronutrients. Accordingly they can derive the main profit with the vitamin D supplementation.[6]

Cinnamaldehyde (Cinnamon extract) –

Cinnamaldehyde is a natural organic compound plentifully found in essential oils in cinnamon. It dominatingly exists in the trans - isomer structure, which gives cinnamon its flavor and smell. Cinnamaldehyde is a table dictary phytonutrient, known to have anti-inflammatory (calming) properties. Cinnamaldehyde is additionally known to down regulate the formation of prostaglandins subsequently bringing down the chances of hyper inflammation. All the above confirmations shows that cinnamaldehyde is a likely anti-inflammatory bioactive compound and could be helpful in alleviation of SARS-CoV-2 incited hyper inflammation in the lung.

Allicin (Garlic extract) –

Garlic is a well known herb characterized under Allium (onion) family and has been utilized from ages for its many nutraceutical properties. The overwhelming thiosulfinate in fresh garlic extract distinguished as allicin, has shown various medical advantages because of its antioxidant , anti inflammatory and antiviral properties. It restrains inducible nitric oxide (NO) synthase articulation in enacted macrophages. A few garlic related compounds

have found to have a solid viricidal action against a wide range of infections including parainfluenza virus-3, human rhinovirus, herpes simplex virus-1, herpes simplex virus-2, and vesicular stomatitis virus. A portion of the garlic compounds that show viricidal action are allicin, allyl, ajocne, methyl thiosulfinate and methyl allyl thiosulfinate. Hence, fresh garlic extract might be valuable as a prophylactic against COVID-19.

Curcumin (Turmeric extract) –

A bright yellow phenolic compound that is the primary constituent of turmeric powder, utilized as a food shading and flavouring and as a dietary enhancement. Curcumin has an wide range of natural activities, including antibacterial, anti-inflammatory, antiviral, antifungal and antioxidant properties. Curcumin applies antiviral impact on an broad range of viruses including flu virus, adenovirus, hepatitis virus, human immunodeficiency infection (HIV), herpes simplex virus-2 and Zika virus, human papilloma virus. It applies antiviral impact by different mechanisms going from repressing the virus entry into the cells, hindering encapsulation of the viruses and viral protease, restraining the virus replication, just as adjusting a few signaling pathways. Morcover, curcumin is an strong antioxidant. It applies its antioxidant impacts both by killing or neutralizing free radicals and upgrading the production of antioxidant enzymes. These examinations discovered strong immunity boosting, antioxidant and hostile to SARS-CoV-2 impacts of curcumin. Consequently, curcumin could be likely used as natural supplement in battling the COVID-19 pathogenesis.

Piperine (black pepper extract) –

Black pepper has for some time been utilized in numerous cooking styles and it holds an entirely significant space among medicinal plants. Piperine is obtained from ethanolic extract of black pepper and is a significant alkaloid in the group of cinnamamide. Piperine has a solid calming capacity and hence can be repurposed for suppression of hyper inflammation prompted during COVID-19. Piperine advances innate immunity by advancing the phagocytic action of phagocytes. Further discoveries demonstrate the potent anti-inflammatory action of the piperine. Piperine is a strong antioxidant and secures against oxidative damage by neutralizing free radicals, Reactive oxygen species, and hydroxyl radicals.[6] It searches and kill superoxide radicals. These outcomes show that piperine has

an immediate antioxidant impact against different free radicals. Along with these properties, piperine can be attempted as a prophylactic or remedial compound to shield from the oxidative stress and hyper inflammation actuated during the COVID-19.

Selenium

Selenium is richly found in food sources like corn, garlic, onion, cabbage, broccoli. It's a fundamental micronutrient that plays an essential part in different physiological cycles and on the immune system. Selenium applies its biological impact through consolidation into selenoproteins in the body. Ideal selenium status (100 μg each day) advances improved T lymphocyte cell proliferation, Natural killer cell activities and intrinsic cell functions. Further it supports more potential vaccine response and powerful resistance to microbes. Additionally, reduce serious inflammation in tissues like lungs and digestive system . Studies have shown that selenium supplementation balances the inflammatory reaction in respiratory distress condition patients by reestablishing the antioxidant status in the lungs.[6] The antiviral properties of selenium have discovered to be mediated through its antioxidant impacts. Generally, selenium works on the immunity through its non-enzymatic job going about as cofactor for compounds associated with basic post-translational modification of proteins. Due to its generous job in suppressing the inflammation and expansion of antioxidant status and innate immunity, selenium supplementation might be valuable in battle against COVID-19.

Propolis

Propolis delivered by honey bees and known to have an expansive range of natural properties, including hostile to microbial, anti-inflammatory, dermatoprotective, purgative, anti-diabetic, anti cancerous, and immunomodulatory activity. Propolis likewise stimulated more antibody secreation, proposing that it very well may be utilized as an adjuvant in vaccines/antibodies. Propolis at higher concentration hinders lymphoproliferation while at low concentration the impact is reversed, causing lymphoproliferation. Further, compounds in nectar propolis restrains, various viruses, for example, dengue virus type 2, herpes simplex virus, human cytomegalovirus, flu virus A1. Together, with immunomodulatory and

antiviral impacts, propolis can be attempted as a prophylactic support against COVID-19.

Conclusions

In this world health crisis brought about by the spread of SARS-CoV-2 infection, it is sensible to suggest a right utilization of antioxidant supplements to ensure great "strengthening of immunity." Undoubtedly, diet and food supplements show large guarantee for preventing and treating COVID-19. Nonetheless, solid clinical examination information are needed to help any such claim. The theory that nutrient supplementation and nutraceutical utilizations (particularly antioxidants) can diminish COVID-19 frequency or mortality ought to be surveyed through huge scope in randomized trials. Hence, administration of balanced diet with good supplementation of fruits, vegetables, grains, oil and nuts that have adequate essentials oxidants such as zinc (Zn), vitamin C, D, cinnamaldehyde, propolis, selenium, piperine, allicin and curcumin can be sufficient to improve our body, immune system to prevent many diseases. At last, we can fight augments Covid-19 by improving our immune system through antioxidants. Subsequently, numerous efforts should center toward this path to add to discovering helpful techniques for stopping COVID-19 disease.

References

1. Backer, J. A., Klinkenberg, D., & Wallinga, J. (2020). Incubation period of 2019 novel coronavirus (2019-nCoV) infections among travellers from Wuhan, China, 20-28 January 2020. Eurosurveillance, 25 (5), 20-28

2. Amengual, J. (2019). Bioactive properties of carotenoids in human health. Nutrients, 11 (10), 2388.

3. Zhu N., Zhang D., Wang W., et al . A novel coronavirus from patients with pneumonia in China, 2019. New England Journal of Medicine. 2020;382 (8) : 727-733. Doi : 10.1056/ NEJMoa2001017.

4. Channappanavar R, Perlman S. Pathogenic human coronavirus infections : causes and consequences of cytokine storm and immunopathology. Semin Immunopathol. (2017) 39: 529-39. doi : 10.1007/s00281-017-0629-x Carr A.C.

5. A new clinical trial to test high-dose vitamin C in patients with COVID-19. Crit. Care. 2020; 24 : 133. doi : 10.1186/s13054-020-02851-4.

6. Shakoor H., Feehan J., Al Dhaheri A.S., Ali H.I., Platat C., Ismail L.C., Apostolopoulos V., Stojanovska L. Immune-boosting role of vitamins D, C, E, zinc, selenium and omega-3 fatty acids : Could they help against COVID-19? Maturitas.2020 doi : 10.1016/j.maturitas.2020.08.003.

7. Buinitskaya Y.G., Roman, Wlodaver Clifford G., Kastsiuchenka Siarhei. Figshare Preprint 2020. Highlights of COVID-19 Pathogenesis. Insights into Oxidative Damage.

8. Feehan J., Apostolopoulos V. Is COVID-19 the worst pandemic? Maturitas. 2021 doi : 10.1016/j.maturitas.2021.02.001.

■

GROWING FINTECH MARKET IN INDIA

Chandan Kumar Thakur*

Abstract: There was a time when going to market without carrying wallet loaded with cash was unfathomable. Eventually, the ATM cards reduced the cash we needed to carry in wallets to some extent. In today's time and era, be it the roadside vendor or big stores in malls, all are accepting digital payment. These are interesting times when mobile payments are surpassing ATM withdrawals.

Fintech is integration of technology in financial service to provide better delivery to customers. This has brought ease to the customers and has immensely expanded the scope of digital ecosystem in financial sphere. Today, it is paving the way to financial inclusion and taking innovation to the last mile, thus empowering the local communities. The study evaluates India's technological advancement and its increasing role in financial services.

Keywords: Fintech, Digital Payment, Market, Technology, Financial, Customer, Service

Introduction

The technologies are turning out to be an indispensable part of our everyday life. The use of AI, Cloud Computing, Blockchain, Quantum Computing, NFTs, and Metaverse are captivating us with their infinite scope and future. Conventional banking, medicine, agriculture, and other fields are witnessing a transformation with the advent of newer tech solutions.

Digital technology is used by government and public sector to ensure transparency and accountability of governance, meet the increased demand of digital services among citizens, and to provide more simplified and high -quality services. Digital India mission and digital transaction are at the foundation of India's digital economy. Aadhaar Enabled Payment System is playing a crucial role in the financial inclusion of people not enrolled in formal banking. Another landmark change is brought out through the Direct Benefit Transfer System- it prevents financial leakage by directly transferring the benefits of social security

*Research Scholar, DDU Gorakhpur University, Gorakhpur

schemes to the beneficiary accounts. Aadhaar is ensuring 'Digital Inclusion', thus enabling social emprovement.

We are in India's techade, where technology will become indispensable to progress and strike a balance between profit and purpose. Today, India is anchoring itself as a global hub for technology and innovation in the digital economy. India, with a 1.38 billion populaon, has a huge potential for digital payments. As of October 2021, the country had around 1.18 billion mobile connections, 700 million Internet users, and about 600 million smartphones. These numbers are growing rapidly each quarter. With about 25.5 billion real-time payment transactions, India ranked first in the world in terms of the number of transactions in 2020.

To quantify this impact digital payments have grown 160 times in India since 2003, and by 2025 are expected to add 26 lakh jobs and Rs2.8 lakh crore in economic value. Our traditionally cash- driven economy has responded well to the fintech opportunities that were primarily triggered by a surge in e-commerce and smartphone penetration. This enabled by an integrated ecosystem wherein all participants (government agencies, financial and research institutions, technology expert) discuss idea and turn market's latent potential into business and economic growth.

Fintech is an integration of technology in financial services to provide better delivery to customers. Fintech, the word, is a combination of "financial technology." It is broadly based on four pillars of income, investment, insurance and institutional credit. For the citizens, the government making use of technology to link them to financial benefit and initiatives is another aspect of fintech with its array of application, the scope and opportunities are immense. This has brought ease to the customers and has immensely expanded the scope of the digital ecosystem in the financial sphere. The long queues at the highway toll and the subsequent delay have been reduced to a great extent with the automated FASTag system is an example of fintech service.

India at Fintech Market

India's fintech landscape has evolved at a breakneck pace in the past decade. The once fully cash-dependent Indian economy has been transformed by the convenience and efficiency of digital services. Despite a slowdown in economic activity due to the Pandemic in 2020, the fintech industry in India continue to showcase growth by capitalizing on the digitalization opportunities posed by the endemic and leveraging public digital infrastructure among other things. India is one of the largest and fastest growing fintech market in the

world with more than 2,000 Finteches and is the third largest fintech ecosystem in line after the US and China. India has a fintech adoption rate of 87 per cent which is the highest in the world with the global average at around 64 per cent. As of December 2021, India has over 17 fintech companies which have gained unicorn status with a valuation of over USD 1 billion and India's market itself was USD 50 - 60 billion in financial year 2020 and is expected to grow to USD 150 billion by 2025 as per a recent study conducted by Boston Consultancy Groups

Pre- Pandemic India and Fintech

The best way to know where the industry is he headed, and the patterns according to which it functions, is to look back at the journey and the catalysts that have got us to where we are today.

We term the period prior to 2010 as Digital Payments 1.0. This was period defined by the shift from cash to e -transfer - a time when cards and Real Time Gross Settlement(RTGS) were the most popular means of payment. RTGS was introduced around the year 2003-04 and recorded 100 transactions in that year, while the number of retail e- payment transactions was 21.5 crore. By 2010, all digital payments combined saw 2times increase that was primarily driven by business transactions. This certainly was a period of steady growth at a pace which is expected from any sector. However, the use of digital payments was limited to premium retail and B2B segments, there was a lack of education for individual customers, and mobile and internet penetration were still in their early stages.

With the widespread use of 3G and 4G mobile technology post- 2011, focus invariably shifted to the use of digital payments by individual customers and mobile banking grew. This is the period of Digital Payments 2.0, which lasted till 2016. Halfway through that time (by 2013), digital wallets alone registered 3.3 crore transactions, and by 2016, mobile transactions overall grew 10 times. This period was hugely indicative of the favorable appetite that Indian customers have for technology innovation in Banking. Financial Services, and Insurance (BFSI). Supporting this shift on the providers side was the addition of feature- based credit and debit cards, new mobile banking applications, and greater digital transformation for the front, back and middle offices.

With the demonetization in late 2016, 86 per cent of all cash in India was withdrawn from circulation. This disruption acted as a catalyst for further evolution in the industry and characterized Digital Payments 3.0, the 'network effect' era. This phase can be best described with technology and ecosystem advancement converging to push the next stage

of exponential growth. During this era, India started exporting fintech solutions, rural internet use, outgrow urban usage, there was a record -high number of Person- to- Merchant(P2M) transactions, and fintech entered the mobile- commerce age.

Digital Payment since Covid-19

The year 2020 was a turning point for digital transformation and consumer behaviour. The disruption caused by Covid-19 has been one of the biggest humanitarian crises after the great recession. Once again, necessity brought about a fresh round of invention as virtual and touchless became the primary modes of conduct, and all business had to roll out digital applications or services to deal with the lockdown.

India already had the right infrastructure for digital payments on a large scale, which enabled to reach a high of 411 crore monthly transactions in November 2020. Even traditional BFSI players started accelerating their fintech initiatives and investing in emerging technologies, either by themselves or in partnership with Software as Service providers, for the rollout of their digital services. As of December 2021, India had over 17 fintech startup that joined the Unicorn club, and the sector saw cumulative funding of around USD 27.6 billion. Additionally, India is ahead of US, UK and China combined when it comes to real- time payments recorded in 2020.

The Rising Techade in India

- $350-400 Billion- potential contribution to India's $1 Trillion digital economy.
- More than 125 potential high-impact solution areas companies plan to undertake by 2035.
- 3rd largest tech-startup hub in the world.
- 59 per cent share in global sourcing market
- 72 per cent Tech Firms indicate revenue growth of FY 2023 to be similar to FY2022.
- IT sector revenue to hit $350 billion by FY 2026.

The next stage of growth for India's fintech ecosystem will come from the four pillars of income, investments, insurance, and institutional credit. The objective of financial inclusion

across the nation will unify these pillars and pave the way for the industry's success, as well as our goal of 5 trillion economies.

Attention Areas under Fintech

Digital Technology eases our lives at every step. Online banking and transactions, and mobile payments are incredibly popular in our society today. There are a ton of vulnerabilities since financial transactions are being used so much, many financial institutions have to adapt to the latest security and updated technology in order to stay up to date. Even though there are a lot of risks that are associated with the use of information technology, there are a lot of positive aspects to the use of higher technology.

However, to ensure sustained growth there are a few areas that the ecosystem should pay attention to. Though the urban market is embracing fintech, rural India is still a lesser - tapped market for the industry. The infrastructure and manpower required for the fintech solution to be part of rural livelihoods need to be further strengthen to reap its benefits. Also, there is a need to ensure trust in the use of these technologies by the people and a system wherein their money and investments are safe and secure. Policy support in the area of data security and fund management is essential. The use of new technologies like blockchain, geo-fancing or geo-tagging, or the implementation of a framework to prevent QR-code based phishing attacks can be step forward in ensuring a secure and stable digital financial ecosystem. With the plethora of opportunities, fintech and its ecosystem have a long way to go as an enabler technology, that accessible and affordable for economic and social well-being. Greater customer awareness is also important to prevent frauds and cyber crimes. Secondly, with mass adoption of digital payment, we need to simplify the KYC policy for merchant and customers.

Conclusion

Fintech has been gaining significant attention over the globe, amid, digitalization and the growing need for faster transactions. After 2015, India witnessed a huge increase in the number of fintech companies. Factors such as the availability of appropriate technical skills, capital investments from domestic and international investors, and changing government policies are driving growth in the fintech space.

The government initiatives along with India's strong startup and innovation ecosystem have laid a strong foundation for the growth and development of India's fintech maturity. In just two decades, the evolution of India's fintech ecosystem has been extraordinary, and

the outlook for the future is promising. As we reflect on the journey that has brought us here today, it has been continuous efforts by the integrated ecosystem that has enabled success.

In the last seven and half decades, India has made a tremendous leap to become a robust digital economy. Winning the techade, India must build on its digital advantage and pivot towards a more data- driven structure of governance to create a more inclusive, sustainable, and impact- led innovation. The future of our country will be defined by how well we can integrate digital solutions across platforms, build digital talent at scale, and balance between profit and purpose to truly lead in this techade. ■

References

1. https://nasscom.in/knowledge-center/publications/techade-2020-digital-tech-opportunities

2. https://nasscom.in/knowledge-center/publications/india-digital-payments-40-2025 outlook

3. Global Findex database 2017, The World Bank

4. https://www.ibef.org/download/1649833967_d15e45c9730c1392d810.pdf

5. https://www.investindia.gov.in/sector/bfsi-fintech-financial-services

6. https://www.bis.org/statistics/payment_stats/commentary2112.htm

पुनर्पाठ
विमर्श 2022

उद्घाटन समारोह

उदघाटन समारोह

आज़ादी का
अमृत महोत्सव
राष्ट्रसंत ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ स्मृति
सप्तदिवसीय व्याख्यान माला
22-28 अगस्त, 2022

आज़ादी का
अमृत महोत्सव

आज़ादी का
अमृत महोत्सव
समापन समारोह

आजादी के अमृत महोत्सव पर

हिन्दुत्व की परिभाषा

विनायक दामोदर सावरकर*

'हिन्दू' शब्द से ही हिन्दुत्व और 'हिन्दू धर्म' दोनों शब्दों का उद्‌भव हुआ है। अतः इसका अर्थ भी समग्र हिन्दू जाति से सम्बन्ध रखने वाला ही है। हिन्दू धर्म की जिस किसी भी परिभाषा में हमारी जाति के किसी अंग की अभिव्यक्ति न हो पाए अथवा उसे अपने कतिपय संस्कारों को गुप्त रखना पड़े, वह परिभाषा निरर्थक ही रहेगी। वस्तुतः हिन्दू धर्म ऐसा है जो हिन्दू मात्र का सामान्य धर्म है। क्या इसकी जानकारी प्राप्त करने हेतु यह जानना भी अभीष्ट है कि हिन्दू की परिभाषा क्या है? किन्तु यदि हम यह विस्मृत कर दें कि हिन्दू है कौन, तो मुक्त हृदय से प्रयास किये बिना यह परिभाषा की जानी संभव नहीं है। अनेक व्यक्ति पहले हिन्दू धर्म की ही परिभाषा करना आरम्भ कर देते है और यह कहने लग जाते है कि हिन्दू धर्म का तो एक भी लक्षण ऐसा नहीं जो अति व्याप्ति के दोष से मुक्त हो अथवा जिसमें हिन्दू धर्म के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक समाज को समाविष्ट कर सकें। इसका परिणाम यही होता है कि उन्हे सर्वसामान्य लक्षण उपलब्ध नहीं हो पाते और विवश होकर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अमुक जातियाँ तो अहिन्दू है। इसलिए 'हिन्दू ही नहीं के जिन लक्षणों की कसौटी पर उनको कसने का प्रयास किया जाता है, उनमें अतिव्याप्ति दोष है, अपितु इसलिए कि ये जातियाँ उन बातों को धर्म के रूप में मान्यता नहीं देतीं जिन पर ये लोग अपने मन से ही हिन्दू धर्म की छाप अंकित करते हैं। हिन्दू है कौन? इस प्रश्न का उत्तर देने की वास्तव में ही यह नितान्त ही विपरीत रीति है और इस कारण सिख, जैन, देव समाजी ही नहीं अपितु देशाभिमानी और प्रगतिशील आर्य–समाजी तक भी मानसिक रूप से क्षुब्ध हुए बिना नहीं रह पाते।

हिन्दू है कौन? वह प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है जो हिन्दू धर्म का पालन करता है। यह उत्तर तो बहुत अच्छा है, किन्तु अब प्रश्न उठता है कि हिन्दू धर्म क्या है? वे कौन से तत्त्व और नियम है जिनका हिन्दू परिपालन करते है, किन्तु इस पद्धति से इस प्रश्न को समाधान करना तो एक चक्र के पीछे स्वयं भ्रमित मति हो जाना मात्र है। इस ढंग हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते। अतः इस पद्धति से उपरोक्त प्रश्न का समाधान खोजने वाले अनेक व्यक्ति कहने लग जाते है कि 'हिन्दू तो कोई है ही नहीं।'

जिस अंग्रेज ने 'हिन्दूइज़्म' शब्द की रचना की यदि वैसा ही कोई बुद्धिमान अंग्रेज इंग्लिशिज्म शब्द के आधार पर सर्व सामान्य में प्रचलित धर्म सिद्धान्तों का पता लगाने का प्रयास करे एवम् त्रिमूर्ति तत्त्व से उपयुक्ता के तत्त्वज्ञान तक तथा ज्यू लोगों से जैकोविन वर्ग के व्यक्तियों तक अनेक मतों और पन्थों पर दृष्टिपात कर निराशा और घबराहट के कारण उसके मुख से ये शब्द फूट पड़ें कि 'नहीं, नहीं, अंग्रेज तो इस पृथ्वीतल पर एक भी नहीं है!' इस प्रकार की उक्ति

का उद्घोष करने वाले अंग्रेज की स्थिति जितनी हास्यास्पद होगी उतनी ही हास्यास्पद स्थिति है उस हिन्दू की जो आज यह कहता है कि 'हिन्दू नाम का तो कोई मानव समाज ही अस्तित्व में नहीं है।' इस प्रक्रिया में फँसकर कैसी दुविधाजनक स्थिति से ग्रस्त होना पड़ता है तथा 'हिन्दुत्व', 'हिन्दूधर्म' इन दोनों के भेद को दृष्टिगत न रखने से कैसी विचित्र स्थिति उत्पन्न होती है इसका परिचय जिस किसी को प्राप्त करना हो वह प्रकाशन पराक्रम में पारंगत नरेशन कम्पनी द्वारा प्रकाशित 'हिन्दूइज्म के लक्षण' नामक आंग्ल भाषा में प्रकाशित हुए ग्रन्थ पर दृष्टिपातग कर देखें।

हिन्दू धर्म का तात्पर्य है कि हिन्दू जनों का धर्म; और 'हिन्दू' शब्द का उद्भव ही 'सिन्धु' से होने के परिणामस्वरूप इसका मूल आशय ही उन लोगों से है जो सिन्धु–सरिता से महासिन्धु पर्यन्त विस्तीर्ण इस भूखण्ड में निवास करते है। अतः हिन्दू धर्म का तात्पर्य उस धर्म अथवा उन धर्मों से है जो इस देश एवं इस जाति के सहोदर हैं। इस विभिन्न धर्म सिद्धान्तों और आचार–व्यवहारों में हमें यदि कोई समन्वय परिलक्षित न हो तो यही कहना होगा कि हिन्दू धर्म कोई सामान्य धर्म न होकर ऐसे अनेक धर्मों एवं सम्प्रदायो का समूह है जिन सम्प्रदायों का समूह है जिन सम्प्रदायों में परस्पर भिन्नता ही नहीं अपितु विरोधाभास भी विद्यमान है, किन्तु इस सामान्य हिन्दू धर्म का पता लगाने में असफल रहकर कोई व्यक्ति किसी स्थिति में भी यह नहीं कह सकता कि हिन्दू तो न एक राष्ट्र है और न ही है एक मानव–समाज। हिन्दू सम्प्रदाय को कोई यह कहकर भी आघात नहीं लगा सकता कि अमुक सम्प्रदाय हिन्दू ही नहीं है।

इस प्रबन्ध की मर्यादा हमें हिन्दू धर्म के लक्षणों पर सविस्तार विचार करने की अनुमति प्रदान नहीं करती। हमने पहले ही यह लिखा है कि 'हिन्दू धर्म क्या है?' इस तथ्य की जाँच उसी स्थिति में हो जानी सम्भव है जबकि हम हिन्दुत्व के लक्षणों का निश्चय कर सम्यक् रूप से यह पता लगा लें कि हिन्दू हैं कौन! अतएव हिन्दू धर्म के लक्षणों का विश्लेषण करना इस प्रबन्ध की विषय सामग्री के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं हो सकता। यहाँ इस सम्बन्ध में इतना ही विचार किया जाना सम्भव है, जितने का प्रस्तुत प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्ध है। वस्तुतः हिन्दू धर्म किसी धर्म सम्प्रदाय का नाम न होकर उन सभी सम्प्रदायों को समष्टिगत रूप है जो अपने–आपको हिन्दू नाम से सम्बोधित करते है। परन्तु हिन्दू धर्म, इन शब्दों का प्रयोग उस धर्म सम्प्रदाय हेतु ही होता आया है जिसे हिन्दुओं का बहुमत स्वीकार करता है। अतः यह नितान्त ही स्वाभाविक है कि किसी धर्म, सम्प्रदाय, देश अथवा जाति का नामकरण उस धर्म, देश और जाति के उसे विशिष्ट स्वरूप पर दृष्टि रखकर ही किया जाए जिसे अधिकांश व्यक्ति मान्यता प्रदान करते है। दैनिक व्यवहार में इससे पर्याप्त सुविधा हो सकती है, किन्तु यदि किसी सुविधाजनक नाम के कारण भ्रम उत्पन्न होता हो अथवा हानि होता हो, तो केवल सुविधामात्र के विचार से ही हमें अपनी न्यायान्याय–विवेक–बुद्धि को पंगु न बना देना चाहिए। हिन्दुओं में से अधिकांश व्यक्ति 'श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त धर्म' अथवा जिसे 'सनातन धर्म' की संज्ञा दी जाती है, उसे ही धर्म के रूप में मान्यता देते रहे हैं। इस धर्म को यदि 'वैदिक धर्म' कहा जाए तो इसमें भी कोई आपत्ति नहीं

होगी, किन्तु हिन्दुओं में ऐसे लोगों का प्रचण्ड बहुमत होने पर भी ऐसे अनेक हिन्दू है, जो कतिपय पुराणों को सर्वथा अथवा अंशतः मान्यता नहीं देते, कुछ ऐसे भी हैं जिनकी दृष्टि में स्मृतियाँ भी मान्य नहीं है और कुछ तो ऐसे भी हिन्दू मिल जाएँगे जिन्हें श्रुतियाँ तक भी स्वीकार नहीं, किन्तु यदि श्राप बहुजन समाज के इस धर्म को ही हिन्दू धर्म मानें और उसे ही 'विशुद्ध हिन्दू धर्म' की संज्ञा दें तो जो अन्य उससे भिन्न धर्म–सम्प्रदाय है उन्हें अपने–आपकों हिन्दुत्व की सीमा–सेवाओं से बहिष्कृत किया जाना और हिन्दुत्व पर एकछत्र आधिपत्य जताना कदापि नहीं सुहाता, और उनकी यह अनुभूति है भी ठीक ही। अल्पसंख्यक समुदायों का भी तो कोई नाम होना अभीष्ट है, किन्तु यदि आप केवल सनातन धर्म को ही हिन्दू धर्म के रूप में मान्य करेंगे तो इसका तात्पर्य यही समझा जाएगा कि जो कट्टर सनातन धर्मी नहीं वह हिन्दू धर्मावलम्बी भी नहीं। किन्तु इस प्रकार का निर्णय उन्हें भी असह्य प्रतीत होता है जो इस बात के पूर्व पक्ष को स्वीकार कर उस निग्रह कोटि में आ खड़े होते है जहाँ ठहरने के वे इच्छुक तो नहीं किन्तु वहाँ से निकलने का भी प्रयास नहीं करते। आपको विदित ही है कि हमारे लाखों सिख, जैन, लिंगायत और आर्य–समाजी बन्धु इस उक्ति को सहन करने को तैयार नहीं हैं कि वे हिन्दू नहीं रहे। इससे तो उन्हें क्रोध ही आता है और वे इसमें अपना अपमान भी मानते हैं। किन्तु इसके साथ ही इन्हीं में अनेक ऐसे भी हैं जो यह समझ बैठे हैं कि हिन्दू होना अपने पूर्वजों की जाति में बने रहना और उन अन्ध–विश्वासों को भी मान्यता देना है जिन्हें हम हृदय से स्वीकार नहीं करते, या तो हम उन्हें स्वीकार करें अथवा जाति से पृथक् हो जाये।

इस भाँति यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है कि बहुजन समाज के धर्म को ही हिन्दू धर्म के रूप में स्वीकार किए जाने की ही भूल अब तक होती आ रही है। अतः या तो इस शब्द के अनुचित अर्थ को ही स्वीकार करते हुए हिन्दुओं के सभी सम्प्रदायों को ही हिन्दू धर्म के रूप में सम्बोधित किया जाए और यदि ऐसा किया जाना असम्भव प्रतीत हो तो इस शब्द का व्यवहार किया जाना ही समाप्त कर दिया जाए। बहुसंख्यक हिन्दुजनों के धर्म का परम्परागत रूप से प्रचलित 'सनातन धर्म' अथवा 'श्रुतिस्मृति पुराणोक्तधर्म' नाम ही बहुत ठीक है और अन्य सम्प्रदाय, उदाहरणतः सिख धर्म, आर्य धर्म, जैन धर्म आदि अपने–अपने नाम से सुविख्यात हैं ही। जब इन सभी धर्मो का अन्तर्भाव एक ही नाम में करने की आवश्यकता पड़ती है तो उनके सर्वसामान्य नाम 'हिन्दू धर्म' से ही उन्हें सम्बोधित करना उपयुक्त होता है। इस उच्चारण से अर्थ तो स्पष्ट हो ही जाता है, साथ ही इससे अभिप्राय की भी पूर्णतः अभिव्यक्ति हो जाती है, जिसके उपरान्त सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। इस नाम से अल्पसंख्यकों के मन की आशंका और बहुसंख्यकों के मानसिक असन्तोष दोनों का ही निराकरण हो जाता है और ऐसा अवसर उपलब्ध हो जाता है, जब हम सब हिन्दू–जन एक प्राण, एक जाति व एक ही संस्कृति की चिरपुरातन विजय वैजयन्ती की छत्रछाया में भाई–भाई के रूप में संघबद्ध हो जाते है।

यदि हम अखिल मानव जाति के विचार से अलग होकर केवल हिन्दू के ही नाते विचार करें, तो भी यह स्पष्ट है कि हिन्दू जाति में से किसी भी समाज के धार्मिक विचारों और संस्कारों

से सम्बद्ध सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ वेद ही हैं। सप्तसिन्धुओं का यह वैदिक राष्ट्र अनेक जातियों और उपजातियों वर्गो में विभाजित था। उस समय बहुसंख्यक जन–समुदाय का जो धर्म था, उसे हम सुविधा की दृष्टि से वैदिक धर्म का नाम देते हैं, परन्तु उस समय भी सप्तसिन्धुओं में एक ऐसा अल्पसंख्यक समाज बसता था जो वैदिक धर्मावलम्बी नहीं था। परणी, दास, ब्रात्य एवं अन्य अनेक ऐसी जातियाँ थीं, जो अनेक बार अपने वैदिक धर्मी होने का खण्डन करती थीं। और कई तो ऐसे भी वर्ग थे जिन्होंने वैदिक धर्म को कभी स्वीकार ही नहीं किया था। इतने पर भी उनमें इतनी चेतना अवश्य ही थी कि जाति और राष्ट्र की दृष्टि से हम सभी एकता के पुनीत बन्धनों में आबद्ध है। किन्तु 'वैदिक धर्म' और 'सिन्धु धर्म' दोनों एक ही नहीं थे। इसका कारण यह है कि यदि 'सिन्धु धर्म' नाम की रचना उस समय की जाती तो स्वभाविक रूप से ही उस नाम में केवल वैदिक धर्म ही नहीं, अपितु उन सभी जातियों का अन्तर्भाव निहित होता जो उन दिनों सप्तसिन्धु अंचल में निवास करती थीं। इष्ट का समावेश अनिष्ट का परित्याग करने की परम्परा का पालन करते हुए ही सिन्धु जाति ने विकसित होते–होते हिन्दू जाति और सिन्धुओं के स्थान ने हिन्दुओं के स्थान अथवा हिन्दुस्थान का नाम प्राप्त किया था। इस जाति के वैदिक और अवैदिक दोनों ही मतों के प्रवर्तकों ने अनेक अनुभवों के उपरान्त नवीन तत्त्वों का आविष्कार कर अनेक वस्तुओं का ज्ञान उपलब्ध किया। निम्न से निम्नतम और उच्च से उच्चतम तक, अणु से आत्मा और परमाणु से परब्रह्म तक सम्पूर्ण चराचर सृष्टि की तत्काल सम्भव चिकित्सा और परीक्षा कर, विचार–सृष्टि के गूढ़ रहस्यों की जानकारी प्राप्त कर परमानन्द की अनुभूति करते हुए एक ऐसा समीकरण खोज निकाला था जिससे सत्य का अन्वेषण करने वाले प्रत्येक अन्वेषक को मानसिक समाधान की उपलब्धि होती थी, फिर चाहे व सत्यान्वेषी द्वैतवादी था या अद्वैतवादी, आस्तिक था अथवा नास्तिक। इस समीकरण का ध्येय है सत्य की खोज और साधन है आत्मानुभूति। यह समीकरण वैदिक है तो अवैदिक भी है, वस्तुतः इसमें दोनों का ही समागम है, अथवा यों ही कह लीजिए कि यह प्रत्यक्ष धर्म का अनुभवसिद्ध शास्त्र है और इसी का नाम है हिन्दू धर्म। वैदिक, सनातनी, बौद्ध, जैन और सिख आदि सभी मत–मतान्तरों का एकीकरण करने के उपरान्त जो सत्य और निर्णायक तत्व उद्भूत हुए हैं उन्हीं सब तत्त्वों की सत्यता को हिन्दू धर्म की पावन संज्ञा प्राप्त हुई है। जितने भी धर्म, सिद्धान्त और धार्मिक सम्प्रदाय 'सप्तसिन्धु' नाम से सुविख्यात इस भूखण्ड में तथा भावी विराट सिन्धुस्थान अथवा हिन्दुस्थान में उत्पन्न हुए उन सबका अन्तर्भाव हिन्दू धर्म मे ही होता है और वे सभी धर्म और मत–मतान्तर हिन्दू धर्म के ही अविभाज्य अंग–प्रत्यंग है।

इससे यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है कि 'वैदिक धर्म' अथवा 'सनातन धर्म' हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ही अन्य संप्रदायों के तुल्य संप्रदायमात्र ही हैं। फिर इन संप्रदायों के अनुयायियों की संख्या चाहे कितनी ही विशाल क्यों न हो। हिन्दू धर्म की स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने निम्नलिखित व्याख्या की थी–

प्रामाण्य बुद्धिर्वेदेशु साधनानामनेकता।।
उपास्यानासनियम एतद्धर्मस्य लक्षणम्।।

वस्तुतः उपरोक्त व्याख्या सनातन हिन्दू धर्म की ही व्याख्या है। उन्होंने 'चित्रमय जगत' में एक पाण्डित्यपूर्ण लेख लिखकर अपनी विद्वत्ता और ज्ञान का परिचय देते हुए इस 'नास्ति' पक्ष की व्याख्या को ही 'अस्ति' पक्ष में परिणित करने का प्रयास किया गया था। किन्तु इसके साथ ही साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि हमारी यह व्याख्या उसी धर्म के सम्बन्ध में है, जिसे जनसाधारण हिन्दू धर्म की संज्ञा देते हैं। यह व्याख्या हिन्दुत्व का विश्लेषण नहीं है, इतना ही नहीं, अपितु अपने इसी लेख में लोकमान्य ने सुस्पष्ट शब्दों में यह भी लिखा था कि इस व्याख्या के अन्तर्गत आर्य समाजी बन्धु नहीं आ पाते, यद्यपि राष्ट्रीय एवं जातीय दृष्टि से आर्य समाजी और हिन्दू पृथक् नही हैं। लोकमान्य की उपरोक्त व्याख्या अपने सीमित अर्थों में तो उत्तम ही है, किन्तु हम इसे हिन्दू धर्म की वास्तविक व्याख्या तो कह सकते है अपितु हिन्दुत्व की व्याख्या नहीं। यह तो केवल 'श्रुतिस्मृति पुराणोक्त' लक्षणों से युक्त 'सनातन धर्म' की ही विवेचना है और यह धर्म संप्रदाय अन्य सभी संप्रदायों की तुलना में अधिक जन मान्य होने के फलस्वरूप इसे ही सामान्य जन हिन्दू धर्म की संज्ञा देते है, परन्तु तात्विक दृष्टि से ऐसा नहीं है। इस भाँति व्युत्पत्ति और प्रत्यक्ष व्यवहार की दृष्टि व साम्प्रदायिक दृष्टि से ही 'हिन्दू धर्म' हिन्दुओं का धर्म होने के कारण एवं धर्म शब्द का तात्पर्य केवल सम्प्रदाय मात्र ही न होने से हिन्दू धर्म में ये सभी विशेषताएँ समाविष्ट होती हैं जो प्रत्येक हिन्दू में उपलब्ध है।

हम इससे पूर्व ही यह बात स्पष्टतः कह चुके हैं कि हिन्दू होने का सर्वप्रधान लक्षण यह है कि वह व्यक्ति इस आसिन्धु सिन्धु पर्यंतविस्तीर्ण भूखण्ड को अपनी मातृभूमि और पितृभूमि के रूप में मान्यता देता हो। उसी के ऋषियों और पूर्वजों की भूमि भी यही हो। जिन धर्म–सम्प्रदायों को हम वैदिक अथवा अवैदिक हिन्दू–धर्म की संज्ञा देते हैं, ये सभी धर्म–सम्प्रदाय उनके प्रवर्तक तथा उनके द्वारा दिखाए गये पथ के सभी अनुगामी भी इस धरती माता की सन्तान है। हिन्दूधर्म के सभी पक्षों और सम्प्रदायों के लिए यह 'सिन्धुस्थान' ही दिव्य धरा है। इसी भूमि में उन्होंने ईश्वरीय ज्ञान की उपलब्धि की है, इसी भूमि के मानवी मन से वे सभी पंथ और सम्प्रदाय कृस्ति हुए हैं। जिस भांति पतितपावनी गंगा साक्षात् विष्णु भगवान के चरण–कमलों से उद्भूत हुई है किन्तु कट्टर–से–कट्टरतम हिन्दूजन भी हिमवान की कन्या के रूप में ही उसकी विरुदावलि गाते है, उसी भांति, यह भूमि जिसके तत्वज्ञान के धार्मिक रूप को हम हिन्दू धर्म की संज्ञा प्रदान करते हैं वही इस तत्त्वज्ञान की मातृभूमि और पितृभूमि है हिन्दुत्व का द्वितीय लक्षण यह है कि प्रत्येक हिन्दू अपने को प्राचीन सिन्धुओं और उनसे उत्पन्न हुई हिन्दू जाति का वंशज कहे और उनके पावन रक्त अपनी धमनियों में प्रवाहित होने की सगर्व घोषणा करें और अपने–आपको हिन्दू माता–पिता की सन्तान समझे। हिन्दुओं के विभिन्न सम्प्रदायों पर भी यह लक्षण पूर्णतः घटित होता है। इसका कारण यह है कि इन सभी पंथों और सम्प्रदायों की स्थापना हिन्दू ऋषि–मुनियों और तत्त्ववेत्ताओं द्वारा ही सम्पन्न हुई है। अतः ये सभी सम्प्रदाय एवं पंथ सप्त–सिन्धुओं के तत्वज्ञान के वटवृक्ष के ही पादपल्लव हैं। हिन्दू धर्म, हिन्दुओं की नैसगिक परिस्थिति और विचार–प्रणाली मात्र का ही नहीं, अपितु हिन्दू–संस्कृति के विकास का भी घोतक है।

वैदिक–काल अथवा बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायों के उदित होने के समय और इसके उपरान्त अर्थात् आधुनिक काल में जब चैतन्य, चक्रधर, वासव, नानक, महर्षि दयानन्द अथवा राजा राममोहनराय के समय में भी हिन्दू–धर्म में जो भी वैचारिक क्रान्तियाँ हुई हैं, उस प्रत्येक क्रान्ति की बेला में उपलब्ध हुई सर्वोच्च आनन्द की अनुभूति, जिस भाषा तथा लाक्षणिक शब्दों में अभिव्यक्त हुई, वह भाषा और वे शब्द, उनकी कथा तथा तत्त्वज्ञान, उनके द्वारा चर्चित और मान्य सिद्धान्त, इस सब पर ही हिन्दू–संस्कृति की ऐसी अमरछाप अंकित है कि जो कभी न मिट सकेगी। हिन्दू धर्मान्तर्गत सभी सम्प्रदायों का आविर्भाव हिन्दू–संस्कृति की ऐसी अमरछाप अंकित है कि जो कभी न मिट सकेगी। हिन्दू धर्मान्तर्गत सभी सम्प्रदायों का आविर्भाव हिन्दू संस्कृति के वायुमण्डल का ही प्रतिफल थे। उसी से उसे जीवन शक्ति उपलब्ध हुई है और उसी में वे विकसित हुए हैं। इसी भाँति प्रत्येक हिन्दू का धर्म उसकी इस जन्मभूमि से इतना अभिन्न प्राण है कि यह भूमि प्रत्येक हिन्दू की दृष्टि में उसकी पितृभूमि ही न होकर पुण्यभूमि भी है।

आसिन्धु–सिन्धु पर्यंत यह हमारा देश, यह सिन्धुस्थान हमारी पुण्यभूमि है। इसका कारण यह है कि इसी भूमि में हमारे धर्म–प्रवर्त्तकों ने जन्म ग्रहण किया और इसी भूमि में हमारे वे ऋषि उत्पन्न हुए थे जिन्होंने वेद–मंत्रों को सर्वप्रथम सुना था। इन वैदिक ऋषियों से ऋषि दयानन्द पर्यंत, जिन से महावीर तक, बुद्ध से नागसेन तक, नानक से गोविन्द और बन्दावैरागी से वासव तक, चन्द्रधर से चैतन्य पर्यंत एवं समर्थ स्वामी रामदास से राजा राममोहनराय तक हमारे सभी पुरुषों की यही देश जन्म–भूमि तथा कर्म–भूमि है। इस भूमि की प्रत्येक सरिता पावन है और उसने इसकी वन सम्पदा के संवर्धन में योगदान दिया है। हमारे महान् पूर्वजों और ऋषि–मुनियों ने इन्हीं सरिताओं के तट पर बैठकर, तरुलता–कुंजों की शीतल छाया तले ध्यानमग्न होकर मानवी जीवन, आत्मा और परमात्मा एवं ब्रह्म तथा माया सरीखे गूढ़तम रहस्यों का विवेचन किया है। इस भूमि की प्रत्येक गिरि–कन्दरा में कपिल और वणाद, व्यास और बुद्ध तथा शंकराचार्य एवं समर्थ रामदास का स्मृति समीकरण प्रवाहित हो रहा है। कहीं भगीरथ की राजधानी रही है, कहीं कुरुक्षेत्र विद्यमान है तो कहीं वह स्थान स्थित है जहाँ जनककन्या ने स्वर्ण मृग को खड़े होकर निहारा था। कलकल निनादिनी यमुना के तट पर खड़े होकर ब्रजनन्दन गोपाल ने अपनी विश्वमोहिनी मुरली से सुमधुर–संगीत प्रवाहित किया था और यही उसकी मुरली की मधुर तान सुनकर गोकुल के ग्वाल–बाल आनन्दमत्त होकर झूम–झूमकर नाच उठते थे। यहीं स्थित है वह बोधिवृक्ष तो तपोवन भी यही है। यहां ही महावीर ने निर्वाण पाया तो गुरु नानक की संगत ने 'गगन थाल–रविचन्द दीपक बने की आरती का भी यहीं सस्वर गायन किया था। इसी धरती में जन्म–ग्रहण करने वाले महाराज गोपीचन्द ने राज्य–सिंहासन को ठोकर मारकर संन्यासी का वेश वारण कर लिया और अपने हाथ में भिक्षापात्र लेकर भगिनी के द्वार पर खड़े होकर 'मैया भिक्षा दे' की भावाज लगाई थी । यहाँ बन्दावैरागी के पुत्र का वध उसके सामने ही बोटी काट–काटकर किया गया था और जब मृतप्राय बहादुर ने भी हिन्दू–धर्म को त्यागना स्वीकार नहीं किया तो उसके मुख में भी उसी के वीर बालक का रक्त से डूबा हुआ हृदय नितान्त ही

क्रूरता सहित ठूंसा गया। इस भारत वसुन्धरा के हर कण में ही किसी–न–किसी हुतात्मा की पुनीत गाथा अंकित है । 'जहाँ कृष्णसार उपलब्ध है' यही नहीं अपितु कश्मीर से कन्याकुमारी पर्यंत यह सम्पूर्ण भारत भूमि ही यज्ञभूमि है, जिसे ज्ञान और आत्मयज्ञ की पावन अग्नि ने पतितपावनी बना दिया है। जननी जन्मभूमि ! तेरा कण–कण ही यज्ञभूमि बन गया है। अतः हे भारतभूमि, सिन्धुस्थान, तू प्रत्येक हिन्दूजन की पितृभूमि है।

अतः ऐसे मुसलमान अथवा ईसाई, जिन्हें बलात, धर्मयुक्त कर परधर्मावलम्बी होने पर विवश किया गया है, अन्य हिंदुओं के समान ही यह उनकी मातृभूमि और पितृभूमि है। वे हिन्दू संस्कृति के अधिकांश लक्षणों को अब भी मानते है। उनके अनेक व्यवहारशास्त्र, भाषा, रीति–रिवाज ही नहीं अपितु इतिहास और लौकिक–संस्कार भी हिन्दुओं से मिलते–जुलते है, किन्तु हमने पूण्यभूमि की जो परिभाषा दी है, उसके अन्तर्गत उपरोक्त श्रेणी के मुसलमानों और ईसाइयों की पुण्यभूमि भी यह भारत वसुन्धरा नहीं हो सकती और इस कारण उन्हें हिन्दू के नाम से सम्बोधित नहीं किया जा सकता। अन्य हिन्दुओं के समान हिन्दुस्तान उनकी भी मातृ–भूमि मोर पितृ–भू तो है किन्तु पुण्य भूमि नहीं है। उनकी पुण्यभूमि तो यहाँ से बहुत दूर स्थित अरब फिलिस्तीन में है। उनके पुराण और अवतार भी इस धरती पर अवतरित नहीं हुए अतः उनके नामों और आकांक्षाओं में भी पराएपन की गन्ध निहित है। उनकी निष्ठा भी विभाजित है। उनमें से यदि कतिपय व्यक्तियों की, जैसा कि वे स्वयं कहते हैं, वैसी ही निष्ठा हो तो वे भी क्या करें उन्हें अपनी पुण्यभूमि को अपनी पितृभूमि की अपेक्षा श्रेष्ठ स्थान देना ही होगा। यह है भी स्वाभाविक ही। हम इसके लिए उनको बुरा भी नहीं बताते और न ही इस पर अश्रुपात ही करते हैं। हम तो वस्तुस्थिति ही प्रस्तुत कर रहे हैं । हमने अब तक हिन्दुत्व के लक्षणों को ही स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उपरोक्त विवरण से एक ही तथ्य सुस्पष्ट होता है कि बोहरा जाति तथा अन्य कतिपय मुसलमानों अथवा ईसाइयों में हिन्दुत्व के अन्य सभी लक्षणों के होते हुए भी एक महान् लक्षण का अभाव है और वह यह कि वे हिन्दुस्तान को अपनी पुण्यभूमि स्वीकार नहीं करते। हमें यहां इस विषय का विश्लेषण नहीं करना कि कौन–सा धर्म श्रेष्ठ है। परमात्मा, आत्मा और जीवात्मा के सम्बन्ध में भी हम यहाँ किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर रहे, क्योंकि हमारा अन्तःकरण वृत्ति से ही यह सुदृढ़ विश्वास है कि हिन्दू तत्त्व ज्ञान उस पराकाष्ठा को पहुँच गया है कि मानवी कल्पना–शक्ति के सम्बन्ध में अब कुछ भी ऐसा अवशिष्ट नहीं है कि उससे अज्ञेय तो क्या अज्ञात के सम्बन्ध में भी हम किसी नवीन कल्पना को खोज सकें। अथवा 'तत्' और 'त्वम्' की ही कोई नवीन मीमांसा हो सके। आप क्या है? ईश्वरवादी आस्तिक अथवा अनीश्वरवादी नास्तिक। जो कोई भी हो, आपके लिए यहाँ पूर्ण अवसर विद्यमान है। सभी मन्दिरों को अपने– आप में समाविष्ट कर लेने वाले इस महान् मन्दिर में आकर, जो किसी वैयक्तिक नींव नहीं अपितु अटल, अविचल और व्यापक सत्य की नींव पर आधारित है, तुम चाहे कितने ही ऊँचे उड़कर उच्चाति उच्च और परम सुखधाम को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर सकते हो। यहाँ अपना छोटा–सा रिक्त जलपात्र हाथों में लिए आप कूपों की खोज में क्यों विचर रहे हो, जबकि तुम स्वच्छ सलिल

प्रवाहिणी स्रोतस्विनी, पतितपावनी, महानदी के पावन तट पर खड़े हुए हो? क्या तुम्हारी धमनियों में हिलोरें लेने वाला हमारे और तुम्हारे समान पूर्वजों का पावन रक्त तुम्हे उन पुनीत बन्धनों और अतीत के सुखद दृश्यों का स्मरण नहीं करा पाता, जिनको आतताइयों ने बलात् काटा है और हमें तुमसे तथा तुम्हें हमसे पृथक् कर दिया है। आओ बन्धुओ, अपने बन्धु–भगिनियों के इस समाज में पुनः वापस आ जाओ, जिनकी आलिंगन के लिए उत्सुक भुजायें फैली हुई हैं और जिनके नेत्र तुम्हारी और अपनत्व की पावन दृष्टि लिए उत्सुकता सहित निहार रहे हैं, जिन्होंने अपने हृदय–कपाट खोलकर स्वागतार्थ पलक–पाँवड़े बिछा दिए हैं। तुम्हे उपासना करने की इतनी अधिक स्वतन्त्रता कहाँ प्राप्त हो सकेगी, जितनी इस पुनीत वसुन्धरा में उपलब्ध है, जहाँ महाकाल के महान् मन्दिर की सीढ़ियों पर खड़ा होकर चार्वाक भी अपने नास्तिक दर्शन का उपदेश जनता को दे सकने में पूर्णतः स्वतन्त्र है। समाज संगठन की जितनी व्यापक सुविधा तुम्हें यह हिन्दू जाति प्रदान करती है, उससे अधिक तुम्हें कहाँ प्राप्त हो सकेगी। यह हिन्दू जाति का ही उदार और विशाल हृदय है जो बिहार प्रान्त स्थित पाटलिपुत्र से काशी के प्रकाण्ड पण्डितों तक एवम् सन्थालों से लेकर राजप्रासादों में निवास करने वाले राजपूतों तक सभी को अपनी विशिष्ट पद्धतियों के अनुरूप सामाजिक संगठन की सुविधाएँ प्रस्तुत करता है। इसीलिए तो यह उक्ति भी कोरी कल्पना नहीं अपितु एक ठोस वास्तविकता है कि–

''यवेहास्ति न सर्वत्र यन्नेहास्तिन् कुत्र चित्''

यहाँ जो कुछ उपलब्ध है वह सर्वत्र प्राप्त न हो सकेगा, और जो यहाँ नही है वह अन्यत्र भी न मिलेगा। विश्व में जो कुछ भी है वह यहाँ विद्यमान है। तुम तो जाति, वंश, रक्त और संस्कृति सभी दृष्टियों से हिन्दू ही हो। तुम्हें हिंसा के हाथ ने ही अपने पितृगृह से बलात् बाहर घसीटा है। तुम्हें तो केवल इतना ही करना होगा कि तुम अपने हृदय की सम्पूर्ण अनुरक्ति, सकल भक्ति इस वन्दनीया माता के श्रीचरणों में समर्पित करो और इसे केवल मातृभूमि और पितृभूमि मानकर ही नहीं अपितु पुण्यभूमि मानकर भी इसकी वन्दना करो और इस महान हिन्दू संघ में पुनः प्रविष्ट हो जाओ। हिन्दू जाति नितान्त प्रसन्नतासहित तुम्हारा हार्दिक अभिनन्दन करेगी, अपने अन्तरतम के विशुद्ध नेह का पावन अमृत तुम्हें सहर्ष दान देगी।

बोहरा, खोजा, मोमिन तथा इसी श्रेणी के अन्य मुसलमानों और ईसाइयों के लिए हिन्दू समाज का प्रवेश द्वार खुला हुआ है, इसमें प्रवेश करना उनकी इच्छा पर निर्भर है। किन्तु जब तक वे इस मार्ग का अवलम्बन नहीं करते तब तक हम उन्हें हिन्दू कहकर सम्बोधित नहीं कर सकते । यहाँ इस तथ्य को भी दृष्टिगत रखना अपेक्षित है कि हम हिन्दुत्व के लक्षणों की समीक्षा कर रहे हैं, अतः किसी पक्ष अथवा पूर्वाग्रह के वशीभूत अर्थ निकालना अथवा विवेच्य विषय की विवेचना में तोड़–मरोड़ करना न्यायसंगत नहीं होगा।

अस्तु, वही व्यक्ति हिन्दू है जो हिमगिरि के धवल शैल–शृंगों से महोदधि की उत्ताल तरंगों तक विस्तृत इस भूखण्ड को अपनी पितृभूमि के रूप में मान्यता देता है, जो रक्त सम्बन्ध की दृष्टि से उसी महान् जाति का वंशज है जिसका प्रथम उद्भव वैदिक सप्त सिन्धवों में हुआ था

और जो निरन्तर अग्रगामी होता अन्तर्भूत को पचाती तथा महनीय रूप प्रदान करती हुई हिन्दू जाति के नाम से हिन्दुत्व सुख्यात हुई है। जो उत्तराधिकार की दृष्टि से अपने–आपको उसी जाति का स्वीकार करता है तथा इस जाति की उस संस्कृति को अपनी संस्कृति के रूप में मान्यता देता है जो संस्कृत भाषा में संचित है। जिसकी अभिव्यक्ति इस जाति के इतिहास, साहित्य कला, धर्मशास्त्र, व्यवहारशास्त्र, रीतिनीति, विधि–संस्कार और पर्वों के माध्यम से हुई है। इसके साथ ही उस व्यक्ति के लिए यह भी अनिवार्य है। कि वह उपरोक्त बातों के साथ ही साथ इस देश को अपनी पुण्यभूमि, अपने अवतारों, ऋषियों, महर्षियों की अवतार स्थली एवम् इसके कण–करण को तीर्थस्थली समझता है । हिन्दुत्व के लक्षण हैं एक राष्ट्र, एक जाति तथा एक संस्कृति। इन सभी लक्षणों को संक्षेप में इस भांति प्रस्तुत किया जा सकता है कि वही व्यक्ति हिन्दू है जो सिन्धु स्थान (हिंदुस्थान) को केवल पितृभूमि ही नहीं अपितु पुण्यभूमि भी स्वीकार करता है। हिन्दुत्व के प्रथम दो लक्षणों राष्ट्र तथा जाति का समावेश 'पितृभूमि' शब्द में हो जाता है और तृतीय लक्षण एक संस्कृति की अभिव्यक्ति 'पुण्य–भूमि' शब्द से होती है। क्योंकि संस्कृति में ही सब संस्कार समाविष्ट हैं और वही किसी भूमि को पुण्य–भूमि का रूप प्रदान करती है। उपरोक्त परिभाषा को और भी अधिक संक्षिप्त रूप में निम्नलिखित श्लोक में प्रस्तुत किया जा सकता है

आ सिन्धु सिन्धु पर्यंता यस्य भारत भूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव सर्व हिन्दू रितिस्मृतः ।।

सिन्ध में हिंदू

हमने अब तक हिन्दुत्व की जो स्थूल विवेचना की है, उससे 'हिन्दुत्व' के मुख्य लक्षणों की परिचायक एक कामचलाऊ परिभाषा तैयार हो गई है। अब यह देखना अवशिष्ट है कि यह सर्वसामान्य परिभाषा किस भांति व्यवहृत होती है। इसका विश्लेषण कतिपय उदाहरण और विशेषतः ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करके ही किया जा सकता है, जिनके कारण इस परिभाषा की आवश्यकता अनुभव हुई है। इस परिभाषा को निश्चित करते समय इस बात की सतर्कता रखना भी अनिवार्य है कि इसमें अतिव्याप्ति का दोष न पाया जाए। अब कतिपय विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर उन पर हम इस परिभाषा को घटित कर सकें तो इस सम्बन्ध में निश्चय हो जाएगा कि यह अतिव्याप्ति से तो पूर्णतः मुक्त है ही, साथ ही अव्याप्ति के दोष से भी रहित है।

हिन्दुओं में विद्यमान प्रादेशिक–विभाग भी इस परिभाषा से विसंगत नहीं है। इस तथ्य की अभिव्यक्ति उन विभागों पर दृष्टिपात करते ही हो जाएगी। हमने जो परिभाषा दी है उसका मूल 'आसिन्धु सिन्धुपर्यन्ता' भूमि–खण्ड ही है । अनेक हिन्दू सिन्धु सरिता के उस पार भूखण्ड में भी रहते हैं। फिर भी जब किसी नदी के तटों का उल्लेख किया जाता है तो उससे आशय दोनों ओर स्थित तटों से ही होता है। अतः सिन्धु नदी के पश्चिमी–तट का अंचल भी स्वाभाविक रूपेण ही सिन्धुस्थान का एक अंग है। अतः यह भी हमारी परिभाषा की परिधि से वहिष्कृत नहीं होता । सिन्धु सरिता के पश्चिमी तट प्रदेश पर निवास करने वाले भी निःसन्देह प्राचीन सिन्धुओं

के ही वंशज है । उन्होंने आज तक भी अपने उस 5000 वर्ष प्राचीन नाम का परित्याग नहीं किया है और वे अपने–आपको सिन्धी अर्थात् सिन्धु देश की सन्तानों के रूप में ही स्वीकार करते हैं। द्वितीय प्रमुख तथ्य यह है कि मुख्य भूमि के सन्निकट स्थित भूमि भी मुख्यभूमि के ही नाम से सम्बोधित की जाती है और तृतीय उल्लेखनीय तथ्य यह है कि सिन्धु–सरिता के उस पार के निवासी भी भारतवर्ष को ही अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि मानते आए हैं, इतिहास हमारे इस कथन की साक्षी प्रस्तुत कर रहा है। उन्होंने कभी भी अपने उसी छोटे–से भूखण्ड को ही पितृभूमि और पुण्यभूमि मानने की भ्रान्त धारणा को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया, जिस भूमि में वे निवास करते हैं। अपितु हम जिस बनारस और कैलाश तथा गंगोत्री को पावन मानते हैं वे भी उन्हीं हिन्दुत्व को अपने पावन तीर्थों के रूप में मान्य कर उनके दर्शन करना अपने जीवन का सुफल समझते हैं । वैदिक काल से ही वे भारतवर्ष के अविभाज्य अंग है। रामायण और महाभारत में भी "सिन्धशिविसौवीरों" का उल्लेख महान् हिन्दू जातीय संघ के एक भाग के रूप में ही उपलब्ध है। वे भी हमारे राष्ट्र, जाति और संस्कृति के ही अंश हैं । अतः वे भी हिन्दू ही है और हमारी परिभाषा के ही अंतर्गत आ जाते हैं।

परन्तु यदि किसी को हमारी यह धारणा मान्य न हो कि किसी सरिता का अपनी सीमा के अन्तर्गत होना उसके दोनों तटों का ही उसमें समाविष्ट होना है, तब भी हमारी परिभाषा में कोई दोष नहीं आ पाता। और भी अनेक कारण हैं जिनके फलस्वरूप हमारी परिभाषा सिन्धी–बन्धुओं के सम्बन्ध में पूर्णतः सत्य सिद्ध होती है। सिन्धु सरिता के उस पार निवास करने वाले हमारे सिन्धी–बन्धुओं के अतिरिक्त अन्य सहस्रों हिन्दू जन हैं, जो विदेशों में निवास करते हैं। ऐसा भी एक समय आ सकता है जब हमारे वे हिन्दू बन्धु, जो अन्य उपनिवेशों में जा बसे हैं, और आज भी वहाँ व्यापार, वाणिज्य, संख्या, क्षमता और बुद्धिमत्ता के कारण प्रभावी सिद्ध हुए हैं, उस सम्पूर्ण देश के स्वामी बनकर वहाँ अपनी स्वतन्त्र राज्यसत्ता भी स्थापित करने में सफल हो जाएं, तो क्या वे हिन्दू न रहेंगे? यह प्रश्न भी उपस्थित किया जा सकता है। क्या हिन्दुस्थान से बाहर अन्यत्र किसी देश में निवास करने वाला व्यक्ति अहिंदू कहा जाएगा? ऐसा कदापि न होगा, क्योंकि हिन्दुत्व का प्रथम लक्षण यह नहीं है कि कोई व्यक्ति हिन्दुस्थान से बाहर न रहता हो, अपितु यह है कि वह हिन्दुस्थान को ही अपनी पितृभूमि स्वीकार करता हो। फिर यह प्रश्न केवल मानने अथवा न मानने मात्र से ही तो सम्बद्ध नहीं हैं। जिस किसी के भी पूर्वज भारत से बाहर जाकर बस गए हों, उसे भी तो यही स्वीकार करना होगा कि हिन्दुस्थान ही मेरी पितृभूमि है। इस भाँति इस परिभाषा में हिन्दू जाति के चतुर्दिक विस्तार के लिए भी स्थान प्राप्त है। हमारे जो उपनिवेश बसे हैं वे तो अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य सहित हिन्दुस्थान को विराट् हिन्दुस्थान और 'भारत' को वृहत्तर भारत' बनाने में ही संलग्न रहे हैं। यह उद्योग ये निरन्तर जारी रखें। हिन्दू जाति में ही संलग्न रहे हैं। हिन्दू जाति में जो कुछ भी उत्तम तत्व विद्यमान है, उन्हें वे मानव मात्र के कल्याण हेतु प्रस्तुत करते रहें और इस भाँति एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक फैली हुई इस सम्पूर्ण धरती पर निवास करने वाले मानवजन को वे सद्गुणसंपन्न बनाने में अपना योगदान दें तथा जहाँ

जो कुछ भी उत्तम है, उसे उन देशों से ग्रहण कर इस हिन्दू–भूमि को समृद्ध बनाएँ। हिन्दुत्व हिमालय के गरुड़ों को पंखविहीन नहीं करता, अपितु उनकी उड्डयन शक्ति में वृद्धि ही करता है। हे हिन्दु–बन्धुनो! जबतक हिन्दुस्थान को अपने पूर्वजों और महापुरुषों तथा अवतारों की लीला–स्थली मानते हो, जब तक इस वसुन्धरा को तुम पितृभूमि और पुण्यभूमि के रूप में मान्यता देते हो, तुम में हिन्दू संस्कृति और पावन रक्त के प्रति अभिमान के भाव विद्यमान हैं, तब तक तुम संसार में निष्कटंक होकर बढ़े चलो, जहाँ तक तुम्हारी विस्तार करने की इच्छा है विस्तार करो। हिन्दुत्व की भौगोलिक सीमाओं में तो सम्पूर्ण वसुधा की सीमाएं ही समाहित हैं।

जहाँ तक हमारे द्वारा की गई परिभाषा के जातीय पक्ष का सम्बन्ध है, हम यह नहीं समझते कि उसको भी कोई गम्भीरता सहित चुनौती दे सकता है। जिस भांति इंग्लैण्ड में इबेरियन, कैल्ट, प्रांग्ल, सैक्सन, ऐन तथा नार्मन आदि भिन्न–भिन्न वंशों के व्यक्ति पारस्परिक विवाहो के कारण वंशगत अन्तर रहते हुए भी एक जाति का रूप ग्रहण करने में समर्थ हो गए हैं, उसी भांति प्राचीन आर्य, कोलार, द्रविड़ आदि वंशगत अन्तर होते हए भी हम एक जाति का रूप ग्रहण कर गए हैं। हम पिछले परिच्छेदों में विस्तार सहित इस विषय का प्रतिपादन कर चुके हैं कि हमारे धर्म–शास्त्रों में जिन अनुलोम और प्रतिलोमविवाह–पद्धतियों को मान्यता प्राप्त है, उन्हीं से यह तथ्य स्वतः सीख है कि ये विभिन्न वंश और जातियाँ इस भांति परस्पर मिश्रित हो गई है कि अब हममें एक ही जाति का समान रक्त प्रवाहित हो रहा है। जहाँ रूढ़ियाँ मार्ग में अवरोधक बनी, यहाँ प्रकृति में इन बन्धनों को टूक–टूक कर दिया । हिडिम्बासी अन्य वंश की युवतियाँ से प्रणय करने वाला भीमसेन सरीखा कोई एकाकी आर्यपुत्र ही नहीं था, अपितु अन्य आर्य युवकों ने भी अनेक पृथक वंश की युवतियों को अपनी जीवन–संगिनियों के रूप में ग्रहण किया था। आज हम भील अथवा संथाल जातियों की दस–बीस कुमारियों को यदि किसी पाठशाला में अध्ययन के लिए छोड़ दें तो उनकी आकृति अथवा संस्कारों से किसी को यह विदित न हो सकेगा कि वे किस जाति की हैं। यह कल्पना नहीं अपितु अकाट्य सत्य है कि आर्य, कोलार अथवा द्रविड़ वंशों के सम्मिश्रण से जो नवीन जाति सृजित हुई है, उसे हम आर्य, द्रविड़ अथवा कोलार नामों से न पुकारकर हिन्दू नाम से ही, सम्बोधित करते हैं । वस्तुतः यह जाति एक ही मातृभूमि की सन्तान है और एक ही पुण्यभूमि इसकी उपासना का केन्द्र भी है । अतः संथाल हो या धींवर, भील हो या पंचम, नमःशूद्र हो अथवा ऐसी ही किसी अन्य जाति के लोग, वे सभी हिन्दू जाति के अविभाज्य अंग हैं। हिन्दुस्थान जितनी हमारे आर्य पूर्वजों की भूमि है, उतनी ही वह उनकी भी है। इनमें भी हिन्दू रक्त का ही संचार होता है और हिन्दू–संस्कृति के पावनसंस्कार से ही वे भी विभूषित हैं। यह भी सत्य है कि उनमें भी कतिपय ऐसे लोग हैं, जो किसी कट्टर पुराणोक्त हिन्दू पंथ के अनुगामी नहीं हैं, किन्तु इतने पर भी वे ऐसे देवी–देवताओं और साधु–सन्तों का ही नामोच्चार करते हैं और ऐसे ही किसी 'धर्म' को अपना मानते हैं जिसके प्रणेता इसी पुण्य–धरा में अवतरित हुए हैं। अतः हिन्दुस्थान उनकी भी मातृ–भूमि और पितृ–भूमि होने के साथ–ही–साथ पुण्य–भूमि भी है।

"हिन्दुत्व' के सांस्कृतिक पक्ष के सम्बन्ध में भी किसी को आपत्ति करने का अवसर प्राप्त नहीं हो सकता, किन्तु 'हिन्दुत्व' और 'हिन्दूधर्म' इन दोनों को ही एक मान लेने की भूल के कारण भ्रम की उत्पत्ति अवश्य ही होती। इन दोनों के अन्तर को भी इसने इससे पूर्व विस्तार सहित स्पष्ट किया है। हमने यह भी बतलाया है कि हिन्दू–धर्म को सनातन–धर्म समझने की दोहरी भूल का की यह कुपरिणाम सामने आ रहा हैं कि सनातनेतर सम्प्रदायों के मन में भ्रम की भावना रम जाती है और इस एक भूल का परिमार्जन करने के प्रयास में ही कतिपय सज्जन और भी भयंकर भूल कर बैठते है। उनके द्वारा ये घोषणाएँ कर दी जाती है कि हम तो हिन्दू ही नहीं है। हमें यह आशा है कि हिन्दुत्व की हमारी उपरोक्त परिभाषा के फलस्वरूप इस प्रकार की भूल और भ्रम होने की आशंका न रहेगीं इसके साथ ही हमारा यह भी विश्वास है कि इस परिभाषा में वर्णित सत्य का एक सुपरिणाम यह भी होगा कि हिन्दू–राष्ट्र के विचारवान व्यक्ति हमारी इस परिभाषा को मान्य करेंगें। किन्तु हमने अभी तक अपनी परिभाषा को किसी सम्प्रदाय–विशेष का उदाहरण देकर कसौटी पर नहीं कसा है, अतः अब हम वही प्रयास कर रहे है। उदाहरणतः आप सिख संघ को ही ले लें। कोई भी सिख आपको ऐसा नहीं मिलेगा, जो सिन्धुस्थान को, इस 'आसिन्धु सिन्धुपर्यन्ता' भारत वसुन्धरा को अपनी पितृभूमि न मानता हो, जहाँ वैदिक काल से अब तक हमारे महान पूर्वज अवतरित हुए है। जहाँ रहकर उन्होंने प्रभुभक्ति में मत्त होकर सुमधुर भजन गाए हैं और उस आलौकिक शक्ति की खोज में समाधि लगाई है। द्वितीय बात यह है कि इन सिख–बन्धुओं में भी उतना ही विशुद्ध हिन्दू–रक्त संचारित हो रहा है, जितना किसी बंगाली अथवा मद्रासी हिन्दू के शरीर में है। जो हिन्दू महाराष्ट्र अथवा बंगाल में निवास करता है उसमें तो आर्य रक्त के अतिरिक्त अन्य स्थानीय जातियों का रक्त भी मिश्रित हुआ है, किन्तु सिख तो नितान्त ही अभिमानसहित यह घोषणा कर सकते है कि हम ही प्राचीन सिन्धुओं के वास्तविक वंशज हैं और हिन्दू जीवन की पावन–गंगा के नीचे आकर बहने से पूर्व, जहाँ इसका उद्‌गम स्थल है वहीं हमारी जन्मस्थली है। तृतीय तथ्य यह है कि हिन्दू–संस्कृति के महान् भण्डार को भरने में उन्होंने भी अपना पूरा–पूरा योगदान दिया है, अतः उन्हें हिन्दू–संस्कृति पर हमारे ही समान अधिकार प्राप्त हैं । विद्या और कला की अधिष्ठात्री के रूप में मान्य होने के पूर्व सरस्वती भी पुनीत सरिता के रूप में पंचनद प्रदेश की ही पावन धरती पर अठखेलियां किया करती थी। हे सिख बन्धुजनो, तुम्हारे सिन्धु पूर्वज भी उसी नदी के तट पर गीतों को गाया करते थे, जहाँ हमारी संस्कृ ति और सभ्यता का बीजारोपण हुआ है । आज भी हिन्दुस्थान भर के कोटि–कोटि हिन्दूजन उसी भांति गीतों के माध्यम से उस सरिता के प्रति तुम्हारे पूर्वजों के तुल्य ही कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। आज भी तो 'अंबितमे नदीतने! देवीतमे सरस्वति' इस पावन मंत्र का उच्चार वैदिक परम्परा के अनुरूप होता सुनाई पड़ता है। वेदों को चाहे तुम अपौरुषेय न मानते हो किन्तु वे हमारे समान ही तुम्हारे भी हैं। वेदों को अपौरुषेय न मानते हुए भी तुम यह तो स्वीकार करते ही हो कि वेदों में प्राकृतिक शक्तियों को स्वकार्यसाधन–हित प्रयोग में लाने के प्रथम मानवीय प्रचण्ड प्रयास का वर्णन उपलब्ध है। इनमें स्वर्गीय अमृत सरिता को अन्धकार में बन्दी बनाकर रखने वाले तथा

आत्म–ज्योति की पावन किरणों के मनोमुग्धकारी प्रकाश को मानवी मन तक आने से रोक चैतन्य को भी जड़वत् रखने वाले अज्ञान के साथ मानव के दुर्धर्ष संग्राम का सविस्तार वर्णन उपलब्ध है । इस दृष्टि से वेद सिखों की दृष्टि में भी पूज्य ग्रंथ हैं। सिखों का इतिहास भी अन्य हिन्दूजनों के इतिहास के समान ही वेदों से प्रारम्भ होता है। वह भी अयोध्या के राजप्रासादों और श्रीलंका के समरांगण से विचरता हुआ, लहू से लाहौर का शिलान्यास होते हुए देखता है और कपिलवस्तु से सिद्धार्थ के प्रस्थान करने वाले रूप का दर्शन पाता हुआ तापदग्ध मानव के दुःखों की निवृत्ति की खोज में गुहा–द्वारों में विलुप्त हो जाता है। हमारे साथ–ही–साथ हमारे सिख–बन्धु भी पृथ्वीराज की पराजय पर अश्रुपात करते हैं और हिन्दू के नाते ही हिन्दुओं के दुःखों और दुर्भाग्य की करुणकहानी उनकी प्रांतों से भी विवशता के अश्रुकण छलका देती है। 'उदासी' और 'निर्मल' एवम् 'गहन गम्भीर' तथा लाखों सिन्धी सिखबन्धु संस्कृत को अपने पूर्वजों की भाषा मात्र ही नहीं मानते अपितु उसे अपने देश की पवित्र भाषा अर्थात देववाणी के रूप में ही मान्यता देते हैं। जबकि अन्य सिख बन्धु भी इसे अपने पूर्वजों की भाषा तथा गुरुमुखी अथवा पंजाबी भाषा की जननी के रूप में ही स्वीकार करते हैं। आज भी अपनी बाल्यावस्था में गुरुमुखी और पंजाबी संस्कृति माता का स्तन–पान कर ही अपने–आपको समृद्ध और प्रभावी बनाती हुई दीख पड़ती हैं। अन्ततः यह भी एक महान सत्य है कि अन्य हिन्दूजन के समान भारत ही सिखों की पितृभूमि मात्र नहीं अपितु पुण्यभूमि भी है। गुरु नानक एवम् गुरु गोबिन्द, श्री बन्दा और श्री रामसिंह भी तो हिन्दुस्थान में ही अवतरित हुए थे। अमृतसर और मुक्तसर भी तो हिन्दुस्थान के ही सरोवर हैं और हिन्दुस्थान में ही उन के गुरुद्वारे और गुरुघर स्थित हैं। वस्तुतः यदि किसी जाति के हिन्दू होने में रंचमात्र भी सन्देह नहीं किया जा सकता तो वह सिख जाति हो है। इसका कारण यह है कि सिख ही सप्तसिन्धु तट पर निवास करने वाले आदिजन हैं और वे ही सिन्धु अथवा हिन्दू की प्रत्यक्ष सम्पति हैं। जो आज सिख है वह कल हिन्दू ही था और आज का हिन्दू भी कल सिख ही सकता है। वेषभूषा अथवा रहन–सहन या दैनिक व्यवहार–सम्बन्धी इतिपय बातों में परिवर्तन हो जाने मात्र से ही तो किसी का रक्त अथवा मूल–परिवर्तित नहीं हो जाया करता और न ही उसके इतिहास को बिनष्ट किया जा पाना सम्भव हो पाता है।

लक्षाविधि सिख बन्धु–बान्धवों का हिन्दुत्व तो स्वतः ही सिद्ध है। सहनधारी, उदासी, निर्मल, गहन–गम्भीर एवम् सिन्धी सिख बन्धुओं को तो जाति और राष्ट्र की दृष्टि से अपने हिन्दू होने का पूर्ण अभिमान है भी। जबकि उनके गुरुजन हिन्दूजन ही थे तो उन्हें हिन्दुत्व कोई अहिन्दू कहकर उनका कोपभाजन बनने से कैसे बच सकेगा? गुरुग्रन्थ साहब को सिख और सनातनी हिन्दू दोनों ही अपना पूण्य ग्रन्थ मानकर उसका पाठ करते हैं। दोनों के पर्वो और त्योहारों में भी समानता है। 'तत्त्व–खालसा' पंथ के सिख भी अधिकांशतः अपने को हिन्दू ही मानते हैं और वे हिन्दुओं के साथ हिन्दुओं के समान ही जीवनयापन भी करते हैं। उनसे यदि कोई यह कहेगा कि तुम हिन्दू नहीं हो तो इससे उन्हें महान् आघात लगेगा और वे आश्चर्यचकित हुए बिना न रह सकेंगे। हमारी जातीय एकता इतनी प्रत्यक्ष और पूर्ण तथा असन्दिग्ध है कि आज भी सिखों

और सनातन मतावलम्बियों में विवाह–सम्बन्धों में कोई बाधा नहीं आ पाती।

रही यह बात कि यदा–कदा कतिपय सिख नेतागण यह कहते हुए सुनाई पड़ते हैं कि हम तो हिन्दू नहीं हैं। इस प्रकार के स्वर कभी–कभी गूंज उठने के कारणों पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट हो जायगा कि इसका कारण है हिन्दू धर्म को भ्रमवश सनातन–धर्म के नाम से सम्बोधित करना अथवा मानना। यदि इन दोनों शब्दों के अन्तर को सुस्पष्टः समझ लिया जाता तो हमें यह स्वर कदापि सुनाई न पड़ता कि 'हम हिन्दू नहीं हैं'! 'हिन्दू–धर्म' के अर्थ के सम्बन्ध में उत्पन्न किये गए भ्रम का ही यह कुपरिणाम हुआ है कि इस प्रकार की आत्मघातक प्रवृत्ति कतिपय व्यक्तियों में उभरी है और इससे भाई–भाई में वैर–भावना को पनपने का अवसर मिला है। हम यह तथ्य सविस्तार स्पष्ट कर झुके हैं कि हिन्दुत्व किसी धार्मिक कल्पना का परिचायक नहीं है। यहां हम पुनः यह बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सिख यदि चाहें सो 'सनातन–धर्म' की सभी बातों, यहां तक कि वेदों को अपौरुषेय मानने को भी अन्ध–विश्वास समझकर अमान्य घोषित कर सकते हैं। यदि वे ऐसा करते हैं तो सनातनधर्मी अवश्य ही नहीं रह जाएंगे, किन्तु इससे भी हिन्दुत्व के अधिकार से उन्हें कोई वंचित न कर पाएगा। हमने हिन्दुत्व की जो परिभाषा की है उसके अनुसार ही सिख हिन्दू है, अन्य किसी धार्मिक व्याख्या के अनुसार नहीं। सम्प्रदाय और धर्म की दृष्टि से वे सिख हैं, ठीक उसी प्रकार जिस भांति जैन, जैन हैं और लिंगायत अथवा वैष्णव, वैष्णव हैं। किन्तु जाति, राष्ट्र अथवा संस्कृति के नाते वे आज तक हिन्दू ही कहलाते रहे है और यह हिन्दू नाम ही उनके लिए सार्थक भी है। अन्य किसी नाम में हमारी जातीय एकता को अभिव्यक्त करने की क्षमता भी नहीं है। भारतीय शब्द से भी यह भावना अभिव्यक्त नहीं हो पाती। भारतीय शब्द हिन्दू शब्द की अपेक्षा अधिक व्यापक है और इससे भारत अथवा हिन्दुस्थान में निवास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का बोध होता है। हम हिन्दुओं की जातीय एकता का स्वरूप कदापि व्यक्त नहीं हो पाता। हम सिख हैं, हिन्दू हैं तथा भारतीय भी। हम एक साथ तो तीनों ही हैं किन्तु पृथक्–पृथक् तो कुछ भी नहीं।

हमारे कतिपय सिख–बन्धुओं ने अपने–आपको हिन्दुओं से पृथक् गणना कराने का जो प्रयास किया, उसका कारण उनका यही भय रहा है कि अपने–आपको हिन्दू नाम से परिचय कराने से तो हम सनातनधर्मी समझ लिए जाएंगे और हमारा पृथक् अस्तित्व ही विलुप्त हो जायगा। इसके अतिरिक्त इस भावना के पनपने का एक राजनैतिक कारण भी है। हम यहाँ 'विशेष प्रतिनिधित्व' की व्यवस्था के गुणदोषों पर विचार करने को उचित नहीं मानते। सिख नेता अपने समाज के विशिष्ट अधिकारों की रक्षा चाहते थे और जब मुसलमानों को विशिष्ट और साम्प्रदायिक आधार पर प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया जाता है तो भारत के अन्य सम्प्रदायों द्वारा भी ऐसी ही मांग की जानी स्वाभाविक ही थी। किन्तु यह भी सुस्पष्ट है कि सिखों को अपने इस अधिकार की भांग प्रस्तुत करते समय इस प्रकार की आत्मघाती प्रवृत्ति को अपनाना न तो अपेक्षित ही था और न उचित ही–कि हम तो हिन्दू ही नहीं हैं । सिखों को एक महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक समाज के रूप में अपने साम्प्रदायिक हितों की रक्षार्थ विशेष हिन्दुत्व साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की मांग

प्रस्तुत करने का अधिकार भी था और ये यदि ऐसा करते तो उन्हें भी अनाहारणों तथा कतिपय अन्य वर्गों के तुल्य इस दिशा में सफलता भी अवश्य ही प्राप्त होती ! किन्तु यह तो सर्वथा अनुचित ही कहा जायगा कि वे इस प्रयास में अपने हिन्दू होने के जन्मसिद्ध अधिकार का ही परित्याग कर दें। हमारे सिख बन्धुओं का समाज मुस्लिम–सम्प्रदाय से किसी दृष्टि से भी कम महत्वपूर्ण नहीं है, अपितु उनकी अपेक्षा अधिक महत्व का ही है। सिख, जैन, लिंगायत और अब्राह्मण ही नहीं, अपितु यदि ब्राह्मण भी चाहें तो वे भी अपने लिए विशिष्ट साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की प्राप्ति हेतु संघर्ष कर सकते हैं, क्योंकि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के फलस्वरूप होने वाली हानि जातीय अलगाव के फलस्वरूप होने वाली क्षति की अपेक्षा तो अवश्य ही कम होगी। यदि उपरोक्त वर्ग विशिष्ट प्रतिनिधित्व में ही अपनी–अपनी उन्नति होने की आशा रखते हों तो हम इसका विरोध भी क्यों करें, क्योंकि इन वर्गों और समुदायों की उन्नति पौर प्रगति में ही तो समग्र हिन्दू जाति की उन्नति भी समाहित है। अति प्राचीन युग में भी तो राजसभाओं और स्थानीय संस्थानों में चारों वरणों को साम्प्रदायिक दृष्टि से पृथक् प्रतिनिधित्व हुआ करता था। सभी वर्ण इस विशेषाधिकार की प्राप्ति के अधिकारी थे, किन्तु इसके लिए उन्हें अपने हिन्दुत्व को ही तिलांजलि दे देने का साहस कदापि नहीं हो पाया। अतः सिख भी एक धार्मिक सम्प्रदाय के रूप में सिख ही बने रहे किन्तु जाति, राष्ट्र तथा संस्कृति के नाते वे हिन्दू हैं और हिन्दू ही रहना उनके लिए हितकर तथा श्रेयस्कर भी है।

जिन वीरों के महावीर पूर्वजों ने सैकड़ों की संख्या में आततायियों की खड्गों से अपने शीश कटा दिये किन्तु अपने गुरु के वचनों का उल्लंघन नहीं किया–––'धर्म हेतु साकार जिन किया, सिर दिया पर सिरह न दिया' क्या वे ही आज अपने मूल को भूल जाएंगे, क्या वे ही अपने बलिदानी पुरखों को अपमानित करेंगे, क्या वे क्षुद्र स्वार्थमात्र के लिए आज अपने जन्मसिद्ध अधिकार को ही नीलाम पर चढ़ा देंगे? परमात्मा कभी ऐसा न होने दे। हिन्दू जाति के अल्पसंख्यक समुदाय को इस तथ्य को विस्मृत नहीं करना चाहिए कि हिन्दुत्व ही ऐसा दृढ़ और प्रिय तथा श्रेष्ठतम बन्धन है, जिससे हमारी इस महान जाति का वास्तविक, चिरस्थायी और शक्तिसम्पन्न संघ निमित रह सकता है। यदि आप यह कल्पना करते होंगे कि आज तो पृथक रहते से ही लाभ है परन्तु ऐसी मनोवृत्ति से इस प्राचीन राष्ट्र को तो अपूर्णनीय क्षति होगी ही, साथ ही आपको भी कम हानि न होगी। आपका हित अपने अन्य हिन्दू बन्धुओं के साथ इतना अधिक अविभाज्य है कि इसे आप पृथक् कर ही नहीं सकते। अतीत की ही भांति यदि भविष्य में कभी हिन्दू–सभ्यता पर दूसरों का आक्रमण हुआ तो हिन्दू समाज के अन्य अंगों के समान, आपके लिए भी प्राणघातक ही सिद्ध होगा। अतीत काल के समान ही जब भविष्य में भी कभी यह सम्पूर्ण हिन्दू राष्ट्र किसी छत्रपति शिवाजी अथवा महाराजा रणजीतसिंह के नेतृत्व में, मर्यादा पुरुषोत्तम राम अथवा धर्मराज युधिष्ठिर के नायकत्व में, अथवा किसी अशोक या अमोघवज्र को अपना नेता मानकर अपने में पूर्ण चैतन्य की अनुभूति करते हुए अपने बल और विक्रम के परम वैभव को प्राप्त करेगा तब उसकी प्रभा से आपकी कीर्तिपताका भी उतनी ही आलोकित होगी

जितनी हिन्दू समाज के किसी अन्य समाज की प्रतिष्ठा का चन्द्रमा उससे कान्ति प्राप्त करेगा। अतः हे प्रिय बन्धुगण, इतिहास के विपरीत अर्थ लगाकर अपने क्षणिक, क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति हेतु मन्दबुद्धि बनने की भूल कदापि न करो। एक बार एक ग्रन्थी महोदय मुझे मिले, किन्तु ग्रन्थी होते हुए भी एक ब्राह्मण के घर पर डाका डालने के आरोप में वह कारावास भोग रहा था। उस ब्राह्मण का वह ऋणी था और उसी ने ब्राह्मण की हत्या भी की थी। इस ग्रन्थी ने मुझसे एक दिन कहा कि 'सिख तो हिन्दू नहीं हैं, और किसी ब्राह्मण को मारने से कोई पाप नहीं होता, क्योंकि गुरु गोविन्द सिंह के सुपुत्रों के साथ एक ब्राह्मण रसोइये द्वारा ही विश्वासघात किया गया था। सौभाग्य की बात यह हुई कि इस भेंट के अवसर पर एक अन्य ग्रन्थी महोदय भी उपस्थित थे। बड़े-बड़े सिख विद्वानों में भी उन्हें मान्यता प्राप्त थी। उन्होंने, उन ग्रन्थी महोदय के विचारों का खण्डन किया। उन्होंने मतिदास आदि ब्राह्मणों ने किस भांति सिखों की सहायता ही नहीं की, अपितु अपने प्राणों की भी उनके लिए भेंट चढ़ा दी, आदि उदाहरण देकर उनके मन पर पड़े भ्रम के आवरण को हटाया। इतिहास साक्षी है कि शिवाजी महाराज के साथ उनके अपने ही लोगों ने और उनके पौत्र शाहजी के साथ 'पिसाल' सरीखे हिन्दुओं ने ही तो विश्वासघात किया था। किन्तु क्या ऐसा होने से शिवाजी ने अपनी जाति अथवा हिन्दुत्व को ही तिलांजलि दे दी ? बन्दा वैरागी के साथ अनेक सिखों ने ही विश्वासघात किया तो खालसा का अंग्रेजों के साथ जो अन्तिम संग्राम हुआ उसमें भी अनेक सिख ही पंथ से विश्वासघाती बने। यह भी इतिहास बताता है कि गुरु गोविन्दसिंह का तुमुल-संग्राम के क्षणों में अनेक सिखों ने साथ छोड़ दिया था और उनकी इस विपन्न अवस्था में ही उस नराधम ब्राह्मण को गुरुपुत्रों के साथ विश्वासघात करने का अवसर प्राप्त हुआ था। किन्तु यदि इस नीच ब्राह्मण के उस पाप के कारण हम हिन्दुत्व से ही सम्बन्ध-विच्छेद कर लें तो उन विश्वासघाती सिखों के आचरण की प्रतिक्रियास्वरूप तो हमें सिख पंथ को भी सदा के लिए तिलांजलि दे देनी पड़ेगी।

हिन्दू जाति के अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक समुदाय कहीं आकाश से अवतरित नहीं हो गये। वस्तुतः ये सभी उस एक वृक्ष पर कुसुमित हुए कुसुम हैं जिसका मूल एक ही संस्कृति में निहित है जिसकी जड़ें एक ही धरती में दूर तक विस्तृत हैं। किसी बकरी के बच्चे को पकड़कर उसे केश-कृपाण तथा कच्छा पहनाकर तो आप सिंह नहीं बना सकते। गुरु गोविंदसिंह को हुतात्माओं और योद्धाओं की जो बलिदानी-वाहिनी सजाने में सफलता प्राप्त हो पाई उसका एक ही कारण था कि उनके वीर खालसा की जन्मदायिनी जाति में वह महान शक्ति निहित थी। सिहों के यहाँ ही सिंह जन्म लेते हैं। किसी कदम की डाली पर विकसित पुष्प यह नहीं कह सकता कि देखो मैं कैसे खिलता हूँ, हँसता हूँ, और सुगन्ध विस्फारित करता है और यह सब इस डंठल से पृथक् होने के फलस्वरूप ही। इसके मूल से तो मेरी उत्पत्ति हई नहीं अतः इससे मेरा क्या सम्बन्ध है ? जब आप किसी सिख की ओर संकेत करके कहते हैं कि यह गुरु का सच्चा अनुयायी है, तब आप मुख से उच्चारण न करते हुए भी यही कहते हैं कि यह हिन्दू अपने गुरु का सत्य अनुगामी सिद्ध हुआ है, क्योंकि सिख होने के पूर्व तो वह हिन्दू था ही, सिख होने के

बाद भी हिन्द ही रहा है । जब तक सिख–बन्धु सिख धर्म का सत्यता सहित पालन करते रहेंगे वे हिन्दू ही रहेंगे, क्योंकि उस समय तक उन्हें इस आसिन्धु पर्यन्त भारत–भूमि को अपनी मातृ–भूमि, पितृ–भूमि और पुण्य–भूमि मानना होगा और जब वे सिख धर्म का परित्याग कर देंगे तो वे सम्भवतः हिन्दुत्व से भी गिर ही जायेगे।

सिखों के सम्बन्ध में हमने यहाँ सविस्तार विचार किया है। इसका कारण यह है कि अपनी परिभाषा को सिखों पर घटाने की दृष्टि से हमने जो तर्क प्रस्तुत किये हैं वे हिन्दुत्व की दृष्टि से हिन्दू राष्ट्र के सभी वैदिक तथा अवैदिक पन्थों और सम्प्रदायों पर भी समान रूप से लागू होते हैं। उदाहरण खोजने में नहीं मिल पाया, जिससे हमें यह पता लगे का हमने हिन्दुत्व की जो परिभाषा की है, उसमें अव्याप्ति का दोष किसी अंश में भी रह गया है।

एक अन्य बात अवश्य ही ऐसी है, जिसके सम्बन्ध में थोड़ी कठिनाई अवश्य उपस्थित होती है। उदाहरण के लिए प्रश्न किया जा सकता है कि क्या भगिनी निवेदिता हिन्दू कहला सकती है अथवा नहीं? यह भी एक कथन है कि अपवाद से ही नियम सिद्ध होता है। यदि यह सत्य है तो यह कथन यहाँ सर्वांश में सही प्रमाणित होता है। हमारी इस उदारमना भगिनी ने भी तो आसिन्ध पर्यन्त विस्तीर्ण इस हिन्दू स्थान को ही अपनी पितृ–भूमि के रूप में स्वीकार किया था। इस देश के प्रति उनका अनुराग इसी प्रकार का था यदि हमारा उस समय एक स्वतन्त्र राष्ट्र होता तो हम अपनी इस पुण्यात्मा बहिन को ही सर्वप्रथम अपने स्वतन्त्र देश की नागरिकता का अधिकार सहर्ष भेंट करते। हमने अपनी परिभाषा के अंतर्गत जिस प्रथम लक्षण की चर्चा की है वह तो इस भांति भगिनी निवेदिता के उदाहरण पर घटित होता है। किन्तु इसी प्रकार के उदाहरणों में परिभाषा के अन्तर्गत जो द्वितीय लक्षण है वह कतिपय स्थितियों में घटित नहीं हो पाता । तथापि ऐसी स्थिति में वैवाहिक बन्धन का मार्ग प्रशस्त है। इसका कारण भी सुस्पष्ट है कि वैवाहिक बन्धनों द्वारा कोई भी दो प्राणी एक ही हो जाते हैं। यद्यपि भगिनी निवेदिता के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं है, किन्तु हिन्दुत्व की परिभाषा के अन्तर्गत जिस तृतीय लक्षण का वर्णन किया गया है, उससे उन्हें भी हिन्दू कहलाने का अधिकार उपलब्ध हो सकता था। इसका कारण यह है कि वे हिन्दू–संकृति को हृदय से अंगीकार कर चुकी थी। वे इस भूमि को ही अपनी पुण्यभूमि के रूप में मान्यता देकर श्रद्धा–सुमन समर्पित करने के लिए हिन्दुस्थान पधारी थीं। वे अपने अन्तःकरण से ही स्वयं को हिन्दू स्वीकारती थीं। यही एक ऐसा तथ्य है जो सब बातों से बढ़कर है और हिन्दुत्व को परखने की सर्वोच्च कसौटी मी तो यही है। किन्तु हम इस तथ्य को भी विस्तृत नहीं कर सकते कि हम हिन्दुत्व के लक्षणों का निर्धारण बहुजन समाज के संस्कारों को आधारशिला पर ही करते हैं। अतः हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि अहिन्दू माता–पिता से उत्पन्न कोई व्यक्ति उसी स्थिति में हिन्दू हो सकता है जब वह इसी देश को यथार्थ रूप में अपना स्वदेश माने तथा इससे अपना रक्त–सम्बन्ध स्थापित करें और इस भाँति हिन्दुस्थान को अपनी पितृ–भूमि मानकर इसकी बन्दना करें और हिन्दू–संस्कृति को ही अपनी पुण्य–भूमि के रूप में मान्यता दे। ऐसे सम्बन्धों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली सन्ताने निश्चित रूप से ही

हिन्दू कहलाएँगी। अब हम इससे अधिक चर्चा नहीं करेंगे।

परन्तु 'हिन्दू' परिवार के किसी भी धर्म को ग्रहण कर लेने से कोई भी व्यक्ति सनातन, जैन अथवा बौद्ध मत ग्रहण कर सकता है और इन सभी मत–मतान्तरों के हिन्दू राष्ट्र के ही धर्म–सम्प्रदायों के अन्तर्गत होने के कारण ये सभी धर्म सम्प्रदाय की दृष्टि से हिन्दू ही कहला भी सकेंगे। किन्तु एक बात दृष्टिगत रखनी होगी कि इस भांति धार्मिक विश्वास और संस्कृति की दृष्टि से हिन्दू हो जाने वाला कोई भी विदेशी यदि हिन्दुत्व के तीन लक्षणों में से किसी एक से ही युक्त है तो वह राष्ट्रीयता की दृष्टि से हिन्दू नहीं हो सकता। हमारी मातृ–भूमि के प्रति भगिनी निवेदिता तथा ऐनी–बिसेन्ट सरीखी विषियों ने जो महती सेवा की है, उसके लिए हमारे हृदय में कृतज्ञता के महान भाव विद्यमान हैं। हिन्दू जाति की तो यह प्रकृति ही है कि किसी के प्रेमपूर्ण स्पर्श मात्र से ही उसके हृदय में इतनी उदारता के भाव उमड़ पड़ते हैं कि भगिनी निवेदिता अथवा उनके सरीखी किसी अन्य नारी अथवा पुरुष द्वारा अपने जीवन को महान् हिन्दू जाति के जीवन की धारा में आप्लाबित कर दिया जाए तो स्वतः ही उसका हिन्दू जाति की पुनीत गंगा में समावेश हो जाता है। किन्तु इस स्थिति को सामान्य नियम का अपवाद ही मानना होगा। ऐसा कोई भी सामान्य नियम नितान्त कठोर भी हो सकता है और कठोरता रहित भी। जिन कसौटियों पर हमने अब तक हिन्दुत्व की परिभाषा को परखा है उससे यह तथ्य स्पष्ट हो गया है कि इस परिभाषा में न तो अव्याप्ति का दोष है और न ही अतिव्याप्ति का।

हिन्दुस्थान को अनुपम प्राकृतिक देन

अब तक हमने निष्पक्ष दृष्टि से यह विचार किया है कि हिन्दुत्व क्या है? यहाँ तक कि हमने इस विचारमंथन में उपयुक्तता तक की दृष्टि में भी नहीं सोचा । अब जबकि सम्पूर्ण विवेचन हो चुका है तक यह विचार करना भी अप्रासंगिक न होगा कि हिन्दुत्व के इन लक्षणों ने हमारी जाति की उन्नति, एकता और अखण्डता एवं प्रगति में कहाँ तक योगदान दिया गया है। क्या इन लक्षणों के आधार पर इतनी गहन और सुदृढ़ आधारशिला बन सकती है कि जिस पर हिन्दू जाति अपने भविष्य के ऐसे सुविशाल भवन का निर्माण कर ले कि जिस पर होने वाले आक्रमणों के प्रहारों और विपरीत अन्धड़ों का कोई प्रभाव न हो और वे कुण्ठित हो जाएँ। अथवा क्या ये आधार हिन्दू जाति के लिए रेत की दीवार मात्र सिद्ध होंगे?

कतिपय प्राचीन राष्ट्रों ने अपने सम्पूर्ण देश को ही एक सुदृढ़ दुर्ग के रूप में सुरक्षित रखने हेतु सृजन किया था। किन्तु आज उनके द्वारा निर्मित की गई वे दीवारें नष्ट–भ्रष्ट हो रही हैं अथवा धूलिधूसरित होकर रह गई हैं। अब तो उनके भग्नावशेषों में ही उनके अतीत की कहानियाँ सीमित हो गई हैं। जिन जातियों ने अपनी सुरक्षा हेतु इन दीवारों का निर्माण किया था अब वे जातियाँ भी नाम शेष होकर रह गई हैं। हमारे प्राचीन पड़ोसी चीनियों ने अपनी कई पीढ़ियों को खपाकर अपने सुविशाल साम्राज्य के एक से दूसरे छोर तक इतनी विशाल दीवार का निर्माण किया था कि विश्व में आज उसे मानवी प्रयत्नों के आश्चर्य की संज्ञा दी जाती है अन्य

मानव–निर्मित आश्चर्यों के समान ही उनका आश्चर्य भी अपने ही भार के नीचे दबकर रह गया है। किन्तु प्रकृति ने जिन आश्चयों की रचना की है, तनिक उन पर दृष्टि–पात करो। आज भी हिमालय उस महान् स्थितप्रज्ञ ऋषि के तुल्य अविचल खड़ा हुआ है, जिसने अपनी सभी इच्छाओं को पूर्ण कर लिया हो। हिमालय की इन पर्वतमालाओं को वैदिककालीन ऋषियों ने जिस रूप में निहारा था, उसी रूप में वे आज भी हमें दिखाई दे रही हैं। वस्तुतः यह हिमगिरि पर्वतमाला ही हमारा वह परकोटा है जिसने हमारे इस महान् देश को अभेद्य दुर्ग का रूप प्रदान कर दिया है।

आप खन्दकों को खोदकर गगरियों से उन्हें पानी से परिपूर्ण कर देते हैं और परिखा की संज्ञा देते है। किन्तु तनिक दृष्टिपात कीजिए; स्वतः वरुणदेव ने ही अपने एक हाथ से पृथ्वीखण्डों का हटाकर अपने दूसरे हाथ से उस रिक्त हुए स्थान में सागरों में सागरों में सागरजल प्रवाहित किया है और यह हिन्दू महासागर, इसकी खाड़ी और उपसागर ही हमारे देश की परिखा बन गये है।

ये है हमारी सीमा रेखाएं, जिन्होंने हमारे इस देश को एक द्वीप तथा सागर तट दोनों से ही लाभान्वित किया है।

हमारी यह मातृभूमि परमपिता की सर्वाधिक लाड़ली पुत्री है। इसकी सरिताएँ गहन–गम्भीर तथा सतत–प्रवाहिनी है। इसके भूखण्ड इतने मृदुल हैं कि हलों से ही उन्हें जोत लिया जाता है और इसके खेतों में सोना बरसाने वाली फसलें लहलहा उठती हैं। इसकी आवश्यकताएँ भी न्यूनतम हैं और प्रकृति इसके अभावों की पूर्ति हेतु उन्मुक्त हस्त से वरदान लुटा रही है। यह वनस्पतियों, फल–फूलों के अक्षय भण्डारों से परिपूरित है। भगवान् सूर्यदेव स्वतः इसे प्रकाश और उष्णता प्रदान कर वैभवशालिनी बनाये हुए हैं।

इसे हिमाच्छादित प्रदेशों की लालसा ही क्यों हो? वे उन्हीं को समर्पित जो उनमें निवास करते हैं। यदि कभी यहाँ ताप का प्रचण्ड–प्रकोप शरीर को दग्ध करने लगता है तो शीत का प्रकोप भी कभी–कभी शरीर के अंग–प्रत्यंगो को जमाने–सा लगता है। वहाँ यदि शीत के फलस्वरूप अधिक शारीरिक–श्रम को क्षमता उपलब्ध है तो यहाँ उष्णता के कारण उसकी आवश्यकता ही घट जाती है। उष्ण आहार से कंठ भूनने की अपेक्षा इसे शीतल जल से तृष्णा बुझाने में ही अधिक आनन्द की अनुभूति होती है । जिन्हें इस आनन्द की उपलब्धि नहीं हो पाती वे उसे प्राप्त करने की चेष्टा करें, किन्तु जिन्हें प्रकृति ने इसे प्रदान किया है वे इससे तृप्त क्यों न हों । हिमाच्छादित टोंस सरिता में चाहे कितनी ही त्वरित गति से अपने प्रपंचों के पर्दे डालो किन्तु हमारी जाति को तो भगवती गंगा की पावन लहरों पर चन्द्रमा के सुशीतल प्रकाश में नौकाओं द्वारा घाट–घाट पर विहार करने में ही असीम आनन्द की उपलब्धि होती है । हमारी जाति जननी को प्रकृति ने जो हल, कमल, मयूर और गज तथा गीता प्रदान की हैं वे उसके पास रहें, फिर हिमाच्छादित देशों में प्राप्त होने वाला आनन्द उसे न भी मिले तो कोई चिन्ता नहीं। किसी की सभी मनोवांछित आशाओं की पूर्ति होना तो असंभव ही है। हमारी मातृभूमि के उद्यानों में हरीतिमा विस्फारित है,

इसके खेत–खलिहान फसलों से लदे हुए हैं, इसके तड़ाग और सरसरिता स्फटिक तुल्य स्वच्छ जल से परिपूरित हैं, पुष्पों से सौरभ गन्ध चतुर्दिक व्याप्त हो रही है तो फल भी इससे परिपूर्ण हैं और इसमें उत्पन्न होने वाली बूटियों में रोगनिवारण की अद्‌भुत शक्ति विद्यमान है । उषा के रंगों से रंगीन है इसकी चित्रकला की तूलिकाएं तथा इसकी वीणा के गीतों से गोकुल के मोहन का मादक संगीत मुखरित हो रहा है। वस्तुतः यह स्वरपूर्ण और अकाट्य सत्य और तथ्य है कि हिन्दू भूमि परम–पिता परमात्मा की सर्वाधिक ऐश्वर्य सम्पन्न सुकन्या है। ––––––इंग्लैंड हो अथवा फ्रांस, संभवतः चीनियों और कदाचित् अमरीकनों को छोड़कर किसी की भी ऐसी मातृभूमि और पितृभूमि नहीं है जो प्राकृतिक सम्पदा और वैभव की दृष्टि से सिन्धुस्थान की तुलना में ठहर सके । किसी भी सुदृढ़ राष्ट्र की प्राथमिक आवश्यकता है उसका अपना देश, अपना भूखण्ड । विश्व के देशों में इस दृष्टि से भी भारत से श्रेष्ठ अन्य कोई देश नहीं है। एक महान् और समृद्ध राष्ट्र की दृष्टि से प्रकृति ने हिन्दुस्थान की जो भू रचना की है उससे अधिक श्रेष्ठ रचना अन्य किसी भी देश की नहीं हो पाई। इसी कारण हम हिन्दुओं को प्रकृति ने ही एकता और प्रेम के अटूट और पावन बन्धनों में बांधा है । इस मातृभूमि के प्रति अडिग निष्ठा ही हमारा सर्वप्रधान कर्तव्य है। इसी के फलस्वरूप हमारे प्रेम बन्धन इतने सुदृढ़ हैं कि वे इस राष्ट्र को सुसंगठित और सुदृढ़ बनाकर अधिकाधिक पराक्रम और उत्साह तथा सामर्थ्य प्रदान कर रहे हैं।

हिन्दुत्व के द्वितीय लक्षण ने भी हमारी राष्ट्रीय एकता और गौरव की नियामक प्रसुप्त शक्तियों को जागृत करने में महान् योगदान दिया है । चीन के अतिरिक्त इस धराधाम पर एक भी अन्य ऐसा देश नहीं जिसमें इतनी अविचल जातीय एकता और प्राचीनता तथा प्रचण्ड संख्या बल एवं जीवन–शक्ति प्राप्त हो जितनी कि हिन्दुस्थान में रहने वाले हम हिन्दुओं को प्राप्त है । राष्ट्रीय एकता के देश सम्बन्धी आधार में जो अमरीकी हमारे तुल्य हैं वे भी.उपरोक्त दृष्टि से हमारे समान सौभाग्यशाली नहीं हैं। मुसलमान कोई जाति हैं और न ईसाई ही। उनके तो साम्प्रदायिक संघ मात्र हैं जातीय अथवा राष्ट्रीय संघ नहीं। किन्तु हम हिन्दू जहाँ एक जातीय संघ है वहाँ ही हममें साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय एकरूपता भी विद्यमान है और हम सबकी निवासस्थली भी एक ही है हिन्दू भूमि–हिन्दुस्थान । इसके साथ–ही–साथ हमारा संख्या बल भी हमें श्रेष्ठता प्रदान कर रहा है। और संस्कृति? अंग्रेज और अमरीकी शेक्सपियर पर अपने समान अधिकार के कारण अपने को एक ही जाति मानते हैं । किन्तु हम हिन्दुओं के लिए केवल कालिदास अथवा भरत ही नहीं अपितु रामायण और महाभारत सरीखे महान् ग्रन्थ भी हमारी समान सम्पदाएं हैं। और वेद! वेदों की तो चर्चा ही क्या करें? अमरीका में अमरीकी बालकों में आत्म–गौरव की भावनाओं को जागृत करने के लिए उन्हें एक राष्ट्रीय गीत सिखाया जाता है, जिसमें कहा गया है कि 'अमरीकियो, तुम्हारे पीछे कुछ सौ वर्ष का इतिहास है।' किन्तु हम हिन्दुओं के इतिहास–के–इतिहास की नाप–तोल शताब्दियों के छोटे–से पैमाने से हो पानी असम्भव है। अपितु इस जाति के इतिहास की नाप तो युग और कल्पों में करनी पड़ती है तथा आश्चर्य सहित यह प्रश्न करना पड़ जाता है कि–

रघुपते : क्व गतोत्तराकोशला।
यदुपते : क्व गता मथुरापुरी।।

हिन्दू जाति आत्म–गौरव की भावनाओं को जागृत करने के लिए उतना प्रयत्न नहीं करती जितना कि वह स्वयं को उद्घाटित करने की दिशा में प्रयत्नशील है। संभवतः यही कारण भी है कि हिन्दू को रामसेस और नेबुक उनेज्जार की अपेक्षा अधिक आयुष्मान होने का सुयोग मिला है। जिस जाति का कोई अतीत नहीं उसका भविष्य भी कोई नहीं हो सकता। यदि यह उक्ति सत्य पर आधारित है तो हिन्दू जाति, जिसने अतीत में वीरों की अनन्त टोलियों को गोद में खिलाया है, जो आज तक भी अपने उस गौरवपूर्ण युग की पावन स्मृति को अपने हृदय में संजोये हुए है कि उसने यूनान और रोम, फारोहा तथा इन्काओं जैसे राष्ट्रों को नष्ट कर देने वाली शक्तियों का भी मान–मर्दन कर देने का महान्–शौर्य और बल–विक्रम प्रदर्शित किया था, तो उस हिन्दू राष्ट्र के इतिहास में भविष्य के सम्बन्ध में अन्य किसी भी जाति की अपेक्षा अधिक विश्वस्त आश्वासन विद्यमान है यह निस्संकोच तथा पूर्ण निश्चय सहित कहा जा सकता है।

किन्तु संस्कृति के अतिरिक्त, पुण्यभूमि की समानता भी ऐसा बन्धन है, जो कतिपय स्थितियों में मातृभूमि के बन्धनों की अपेक्षा भी अधिक सशक्त और सुदृढ़ सिद्ध होता है। तनिक मुसलमानों पर दृष्टि डालिये। आज भी दिल्ली और आगरा की अपेक्षा मक्का ही उनके लिए अधिक प्रेरणादायक है। उनमें से कुछ तो सुस्पष्ट शब्दों में ही यह घोषणा भी कर देते हैं कि वे अपने पैगम्बर के नगर की रक्षा और इस्लाम की गौरव–वृद्धि के लिए सम्पूर्ण हिन्दुस्थान का बलिदान चढ़ा सकते है। यहूदियों का ही उदाहरण ले लीजिये, इन्होंने जिन देशों में शरण पाई, अपनी धन–सम्पदा में वृद्धि की, उन देशों के प्रति इनके हृदय में अपनी पुण्यभूमि से अधिक प्रेम तो क्या होता उतना प्रेम भी ये इन देशों से नहीं कर पाए। यदि कभी यहूदियों का स्वप्न साकार हुआ और फिलिस्तीन में यदि कभी यहूदी राज्य की स्थापना हो गई (अब फिलिस्तीन का यहूदी राज्य अस्तित्व में आ भी चुका है) तो वे यूरोप और अमरीका आदि के हितों को अपनी मातृभूमि के हितों पर बलिदान चढ़ा देने में तनिक भी संकोच नहीं करेंगे। यदि कभी इस यहूदी राज्य और उनकी मातृभूमि में युद्ध हुआ तो तथ्य सुनिश्चित है कि चाहे वे तन से यहूदी राज्य से जाकर न मिलें किन्तु मन से ये अपनी पुण्यभूमि के ही साथ होंगे। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध भी है। यूरोप में जब 'क्रूसेड' के युद्ध हुए तो अपनी पुण्यभूमि के लिए विभिन्न जातियों और राष्ट्रों के लोग, जिनकी भाषाएँ भी पृथक् थीं, संयुक्त होकर संग्राभरत हुए। इस उदाहरण से भी यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है कि पुण्यभूमि की ममता कितनी अधिक बलशाली होती है।

अतः किसी भी राष्ट्र की पूर्ण एकता, अखण्डता और संगठित अवस्था के लिए सर्वोत्तम स्थिति यही हो सकती है कि उसकी मातृभूमि और पुण्यभूमि एक ही हो। वही उसके पूर्वजों की जन्मस्थली हो और उसके देवी–देवता तथा आचार्य भी उसी भूखण्ड में अवतरित हुए हों। वही हो उनके इतिहास की घटना स्थली तथा ईश्वरीय लीलाओं से परिपूर्ण दृश्यावलियों को भी उसी ने अपनी गोद में समेटा हुआ हो।

वस्तुतः हिन्दू ही एकमात्र जाति है, जिसे आदर्श स्थिति उपलब्ध है, जिसने उसकी सुदृणता, समन्वय भावना और महानता में भी वृद्धि की है। यहाँ तक कि चीनियों को भी ऐसी स्थिति प्राप्त नहीं हो पाई। यदि अरब और फिलिस्तीन में कभी यहूदी अपना राज्य स्थापित कर पाए (अब उन्होंने अपना राज्य स्थापित भी कर लिया है) तो वे इस स्थिति को प्राप्त करने में सफलता पा सकेंगे।

किन्तु किसी जाति को गौरवान्वित करने वाली जो प्राकृतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा ऐसी ही अन्य कतिपय स्थितियाँ है। उनका तो अरबों के लिए भी पूर्णतः अभाव ही है। यदि कभी फिलिस्तीन में यहूदियों की राज्य–स्थापना का स्वपन साकार हुआ (जो कि अब साकार हो भी चुका है) तो उससे भी इन बातों की कमी ही विद्यमान रहेगी।

इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, तुर्की, ईरान, जापान, अफगानिस्तान, वर्तमान मिश्र, (वर्तमान इसलिए कि 'पन्टो' की पुरानी संतति और उनका मिश्र तो बहुत दिनों पूर्व ही काल के कराल गाल में जा चुका है) तथा मैक्सिको, पेरू और चिली, किस–किस देश के नाम की गणना की जाए, ये सभी देश अथवा जाति की दृष्टि से थोड़े–बहुत एक होने पर भी भौगोलिक, सांस्कृतिक और संख्याबल की दृष्टि से हिन्दुओं की अपेक्षा प्रायः नगण्य स्थिति में ही है। इतने पर भी यह सौभाग्य तो उन्हें प्राप्त ही नहीं हो पाया कि उनकी मातृभूमि और पुण्यभूमि भी समान ही हों। अब अवशिष्ट देशों में उल्लेखनीय हैं रूस और अमरीका। यद्यपि भौगोलिक दृष्टि से वे दोनों देश हमारी मातृभूमि के समान ही सम्पन्न हैं, किन्तु राष्ट्रीयता सम्बन्धी अन्य बातों में वे हमसे बहुत निर्धनतम है। आज के जीवत–राष्ट्रों में केवल चीन ही ऐसा है जो भौगोलिक, जातीय और सांस्कृतिक दृष्टि से तथा संख्याबल आदि में हमारे समान सम्पन्न है। किन्तु राष्ट्रीयता सम्बन्धी दो बातों में यह भी हमारी तुलना में नहीं ठहर पाता। वे दो बातें है– एक पूर्णतः विकसित तथा पावन भाषा जो हमें संस्कृत के रूप में मिली है तथा दूसरी है हमारी पावन जन्मभूमि। राष्ट्रीय सुदृढ़ता में योगदान देने वाले तो इन तत्वों की दृष्टि से हम ही अधिक सौभाग्यशाली है।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि हिन्दुत्व के जो वास्तविक लक्षण है वे ही हमारी राष्ट्रीयता के भी आधारभूत तत्व हैं। यदि हम प्रयास करें तो हम ऐसे महान् भविष्य का निमार्ण करने में सफलता प्राप्त कर सकते है कि अन्य राष्ट्र उसका स्वप्न भी नहीं ले सके है। वह भविष्य ऐसा है कि जो हमारे अतीत के गौरव की अपेक्षा भी अधिक महान् होगा। किन्तु यह उसी स्थिति में सम्भव होगा जब कि हम इन उपलब्ध तत्वों का उपयोग कर पाएँगे। हमें यह तथ्य स्मरण रखना होगा कि आज का युग संगठन का है और संघ शक्ति ही आज की युग–शक्ति है। आज चतुर्दिक् सुदृढ़ संघो का गठन हो रहा है। राष्ट्रों का संघ, मित्र राष्ट्रों का संघ, अखिल–विश्व इस्लाम संघ, स्लाव जातियों का संगठन, ये सभी इस एक तथ्य के परिचायक है। आज विश्व के छोटे–छोटे जीव भी संघ–शक्ति का आश्रय लेकर महान् शक्ति उपलब्ध करने की दृष्टि से प्रयत्नशील हैं, जिसमें वे इस जीवन संग्राम में विजयश्री का वरण करने में सफलता प्राप्त कर सकें। आज जो देश संख्याबल में न्यून है, उनकी भौगोलिक स्थिति भी सशक्त नहीं। जो संख्याबल और ऐतिहासिक

दृष्टि से सम्पन्न है वे भी अन्यों के साथ मिलकर शक्तिशाली बनने के लिए प्रयत्नशील है। किन्तु वस्तुतः वे तो धिक्कार के ही पात्र है, जिन्हें अपने जन्मकाल से ही उपरोक्त सब प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हैं किन्तु जिन्हें इनकी जानकारी नहीं है अथवा जानते हुए भी जो उनका तिरस्कार करते है। आज विश्व का प्रत्येक राष्ट्र किसी–न–किसी संघ में सम्मिलित होकर–शक्ति संवर्धन के लिए प्रयत्नशील है। किन्तु हे हिन्दू बन्धु–बान्धवो! आप चाहे जैन हों अथवा सनातनी, आर्यसमाजी हों अथवा सिख या अन्य किसी वर्ग के हों, क्या इस प्राचीन और प्राकृतिक महासंघ से पृथक होकर इसे नष्ट करने का प्रयास आपके लिए लाभदायक सिद्ध हो सकेगा? आपका तो यह संघ भी एक ऐसा महान् संघ है जो किसी सन्धि–पत्र पर लिखी गई शर्तों पर हस्ताक्षर करके निर्मित नहीं हुआ है अपितु जिसका उद्भव एक रक्त और एक संस्कृति के प्रकृति जन्म–बन्धनों के फलस्वरूप हुआ है। तुम इन एकता के बन्धनों को और अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रयास करों। तुम जिस किसी भी सम्बन्ध से अखिल हिन्दू जाति के साथ सम्बद्ध हो, फिर चाहे यह रक्त का है अथवा मातृभूमि और संस्कृति का, उसे संपुष्ट कर सुदृढ़ बनाने की दिशा में प्रयत्नशील बनों। जाति और व्यवहारों, वर्ग अथवा वर्गों के जो बन्धन आज के युग में अपनी उपादेयता खो चुके हैं उन्हें मिटा दो। आज की स्थिति में अन्तः प्रान्तीय और अन्तः जातीय विवाहों को बढ़ावा दो, जहाँ ऐसा नहीं हो पाता वहाँ उन्हें आरम्भ करो। आज भी सिखों और सनातनियों, जैनी और वैष्णवों और लिंगायतों तथा अलिंगायतों में ये विवाह होते है। यदि कोई का प्रयास करेगा तो वह भी एक आत्मघाती पग ही होगा। हमें चाहिए कि हम हिन्दू रक्त की पुनीत धारा को अटक से कटक तक समग्र हिन्दू जाति की नस–नस में प्रवाहित होने दें, जिससे कि यह जाति एक अखण्ड, अभेद्य राष्ट्र और इस्पात की भाँति तीक्ष्ण सिद्ध हो सके।

एक बार अपने अतीत पर दृष्टिपात करो और पुनः वर्तमान को निहारों। फिर देखों कि क्या दृष्टिगोचर हो रहा है? एशिया में अखिल–इस्लाम–संघ, यूरोप में राजनीतिक संघ और अफ्रीका तथा अमरीका में नीग्रों जाति का संघ बना रहा है। इसके बाद हिन्दुओं, तुम भी विचार करो कि क्या तुम्हारा भविष्य भी इसी हिन्दू देश के साथ बँधा हुआ नहीं है? और अन्ततः क्या इस हिन्दू देश का भविष्य तुम हिन्दुओं की ही शक्ति पर अवलम्बित नहीं है? हम लोग आज जी भरकर ऐसा प्रयास कर रहे हैं तथा यह प्रयास करना हमारा कर्तव्य है कि हम देश में निवास करने वाले हिन्दुओं, मुस्लमानों, ईसाइयों और यहूदियों में यह पुनीत भाव जाग्रत हो सके कि हम सब ही सर्वप्रथम हिन्दुस्तानी है और तदुपरान्त कुछ और। इस दिशा में अब तक भारत ने जो कुछ भी प्रगति की हो, किन्तु एक तथ्य तो सुस्पष्ट ही है जिसकों हम विस्तृत नहीं कर सकते। वह यह तथ्य है हिन्दुस्तान हो अथवा विश्व का कोई अन्य राष्ट्र, उसका कोई अधिष्ठान और आधार–भूमि होनी आवश्यक है जिस पर वह खड़ा हो, वह आधार–भूमि यह है कि किसी राष्ट्र की शक्ति उन्हीं नागरिकों में समाहित होती है जिनके पारस्परिक हित इतिहास और सद्–अभिलाषाएँ उस राष्ट्र के हितों के साथ ही संलग्न होती है। वस्तुतः ये ही वे लोग है जिन्हें हम उस राष्ट्र के आधार–स्तम्भ की संज्ञा दे सकते है। इस तथ्य के स्पष्टीकरण हेतु हम तुर्की का उदाहरण

ले सकते है। राज्यक्रान्ति के पश्चात युवा तुर्कों को अपनी संसद और सामरिक संस्थाओं को पूर्ण धर्म–निरपेक्ष रूप देने हेतु, उनके द्वार ईसाइयों और आर्मिनियनों पर भी खोल देने पड़े थे। उन्होने इनको भी अपने राष्ट्र का अविभाज्य अंग स्वीकार कर लिया था। किन्तु जब तुर्की और सर्विया में युद्ध की रणभेरी बज उठी तो पहले तो इन ईसाइयों में से अनेक और फिर ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो गई कि उनके कई रेजीमेण्ट प्रकट–रूप से ही शत्रु पक्ष से जा मिले, क्योंकि राजनैतिक तथा धार्मिक दृष्टि से वे तुर्की की अपेक्षा सर्विया के सन्निकट थे। अब अमरीका का उदाहरण ले लीजिये। जब जर्मन युद्ध आरम्भ हुआ तो जर्मन वंश के अमरीकी भी अमरीका से निष्क्रमण करने लगे और अमरीका के लिए यह स्थिति एक महान संकट–प्रद स्थिति के रूप में उपस्थित हुई। आज भी यह तथ्य सुस्पष्ट है कि अमरीकावासी नीग्रो अपने–आपको अन्य अमरीकियों से उतना सन्निकट नहीं समझते। अतः अमरीका का भाग्य वहाँ के आंग्ल–सैक्सन नागरिकों के साथ ही बँधा हुआ है। ऐसी ही स्थिति हिन्दुओ की भी है। उनका भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों ही हिन्दुस्तान के साथ अविभाज्य रूप से बँधे है। यही देश उनकी मातृ–भू,पितृ–भू तथा पुण्य–भूमि है। अतः हिन्दू बन्धुओं, भारतीय राष्ट्रीयता के नाते भी तुम्हे अपनी हिन्दू राष्ट्रीयता को सुदृढ़ और सुसंगठित करना ही होगा। अपने अहिन्दु बन्धुओ अथवा विश्व के अन्य किसी प्राणी को किसी प्रकार से कष्ट पहुँचाने हेतु नहीं अपितु इसलिए कि आज विश्व में जो विभिन्न संघ और वाद प्रभावी हो रहे है, उनमें से किसी को भी हम पर आक्रान्ता बनकर चढ़ दौड़ने का दुस्साहस न हो सके। जब तक हिन्दुस्तान के अन्य सम्प्रदाय हिन्दुस्तान के हितों को ही अपना सर्वश्रेष्ठ हित और कर्तव्य मानने को तैयार नहीं है, और जब तक विश्व के सभी देश मानव मात्र की हितचिन्तना को ही अपना व्यावहारिक उद्देश्य समझने की सदस्यता का प्रदर्शन करने को सिद्ध नहीं हो जाते, अपितु ये सभी जाति अथवा धार्मिक सम्प्रदायों या राष्ट्र के रूप में विचार करते हुए संकुचित स्वार्थो की आधारशिलाओं पर गुटो का निर्माण करने में संलग्न है, कम से कम उस समय तक के लिए हिन्दु बन्धुओ! तुम्हें अपने उन सूक्ष्म बन्धनों को सुदृढ़ करना ही होगा जो तुम्हारे एक और अविभाज्य विराट राष्ट्र पुरूष के जीवन–तन्तु है। आज जो लोग इन बन्धनों को टूक–टूक करने अथवा अपने आपको हिन्दू ही न मानने का अपघाती कृत्य करने में दत्तचित्त है उन्हें भी भविष्य में पश्चाताप ही होगा और वे देखेंगे कि महान हिन्दू जाति से पृथक होकर उन्होंने अपने अपने आपको जातीय जीवन और शक्ति स्त्रोत की पावन धारा से ही पृथक कर लिया है। हमने 'हिन्दुत्व' की व्याख्या करते हुए राष्ट्रीयता के जिन लक्षणों की मीमांसा की है उनमें से कुछ की विद्यमानता ने ही स्पेन और पुर्तगाल सरीखे छोटे–छोटे राष्ट्रों को भी विश्व में सिंह सदृश महान् पराक्रम प्रदर्शित करने का सुअवसर प्रदान किया था, किन्तु जब हिन्दू जाति उपरोक्त सभी लक्ष्णों से युक्त है तो इस मानव–जगत् में उसके लिए कुछ भी प्राप्त करना असम्भव नहीं है।

30 करोड़ हिन्दूजन, जिनकी कर्मभूमि, पितृ–भूमि तथा पुण्य–भूमि हिन्दुस्थान है, जिनका इतिहास भी महान् प्रेरक इतिहास है, जो समान रक्त और समान संस्कृति के पावन बन्धनों में

आबद्ध है भला उनकी और वक्रदृष्टि डालने का साहस भी कौन कर सकता है? वे तो विश्व–भर को ही अपने समक्ष नतमस्तक होने के लिए विवश कर पाने में सक्षम है। एक दिन अवश्य ऐसा आएगा जब मानव–जाति इस महान् शक्ति के दिव्य रूप का दर्शन करेगी।

इसके साथ ही साथ यह भी एक सुनिश्चित तथ्य है कि जब कभी हिन्दू जाति उपरोक्त अवस्था को प्राप्त कर लेगी और विश्व को उसके हिन्दुत्व द्वारा प्रस्तुत शर्तों को स्वीकार करने एवं उसके आदेशों को सुनने हेतु तत्पर होना पड़ेगा तो इस महान् हिन्दू जाति का वह आदेश उस आदेश से भिन्न नहीं होगा जो गीता में उपलब्ध है अथवा जो गौतम बुद्ध के श्रीमुख से उच्चारित हुआ था। जब कोई हिन्दू हिन्दुत्वातीत हो जाता है और जब उसका हिन्दुत्व अथाह और असीम रूप ग्रहण कर लेता है तो भगवान शंकराचार्य के समान ही उसके मुख से भी 'वाराणसी मेदिनी' का उच्चार होने लगता है और उसे समग्र–भू मण्डल में ही अपनी काशी का विस्तार दिखाई देता है। अथवा सन्त तुकाराम के समान ही उसकी वाणी से भी यही संगीत प्रवाहित हो उठता है।

'आमुचा स्वदेश! भुवनत्रयामध्ये वास!' अर्थात् मेरा देश सम्पूर्ण भू–मण्डल की चतुसीमा में ही फैला हुआ है और ये सीमाएँ ही मेरे देश की सीमाएँ है।

■

आजादी के अमृत महोत्सव पर

भारत का भविष्य

स्वामी विवेकानन्द*

यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशों को जाने से पहले तत्त्वज्ञान ने आकर अपनी वासभूमि बनायी थी; यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके बहनेवाले समुद्राकार नद हैं, जहाँ चिरन्तन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरों द्वारा मानो स्वर्गराज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर संसार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरणरज पड़ चुकी है। यहीं सब से पहले मनुष्यप्रकृति तथा अन्तर्जगत् के रहस्योद्घाटन की जिज्ञासाओं के अंकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी–ईश्वर एवं जगत्प्रपंच तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा–विषयक मतवादों का पहले–पहल यहीं उद्भव हुआ था। और यहीं धर्म और दर्शन आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहाँ से उमड़ती हुई बाढ़ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्त्वों ने समग्र संसार को बार–बार प्लावित कर दिया, और यही भूमि है, जहाँ से पुनः ऐसी तरंगे उठकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देंगी। यह वही भारत है जो शताब्दियों के आघात, विदेशियों के शत–शत आक्रमण और सैकड़ों आचार–व्यवहारों के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत है, जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढ़तर भाव से खड़ी है। आत्मा जैसे अनादि, अनन्त और अमृतस्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है, और हम इसी देश की सन्तान हैं।

भारत की सन्तानों, तुमसे आज मैं यहाँ कुछ व्यावहारिक बातें कहूँगा, और तुम्हें तुम्हारे पूर्वगौरव की याद दिलाने का उद्देश्य केवल इतना ही है : कितनी ही बार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर नजर डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नहीं होता; अतः हमें भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है। परन्तु अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। अतः जहाँ तक हो सके, अतीत की ओर देखो, पीछे जो चिरन्तन निर्झर बह रहा है, आकण्ठ उसका जल पिओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर, महत्तर और पहले से और भी ऊँचा उठाओ। हमारे पूर्वज महान् थे। पहले यह बात हमें याद करनी होगी। हमें समझना होगा कि हम किन उपादानों से बने हैं, कौनसा खून हमारी नसों में बह रहा है। उस खून पर हमें विश्वास करना होगा। और अतीत के उसके कृतित्व पर भी, इस विश्वास और अतीत गौरव के ज्ञान से हम अवश्य एक ऐसे भारत की नींव डालेंगे, जो पहले से

---

*स्वामी विवेकानन्द जी का यह भाषण मद्रास सभा के अन्तिम व्याख्यान के रूप में एक विशाल मण्डप में लगभग चार हजार श्रोताओं के सम्मुख दिया गया था।

श्रेष्ठ होगा। अवश्य ही यहाँ बीच–बीच में दुर्दशा और अवनति के युग भी रहे है, पर उनको मैं अधिक महत्त्व नहीं देता। हम सभी उसके विषय में जानते हैं। ऐसे युगों का होना आवश्यक था। किसी विशाल वृक्ष से एक सुन्दर पका हुआ फल पैदा हुआ, फल जमीन पर गिरा, मुरझाया और सड़ा, इस विनाश से जो अंकुर उगा, सम्भव है वह पहले के वृक्ष से बड़ा हो जाए। अवनति के जिस युग के भीतर से हमें गुजरना पड़ा, वे सभी आवश्यक थे। इसी अवनति के भीतर से भविष्य का भारत आ रहा है, वह अंकुरित हो चुका है, उसके नये पल्लव निकल चुके हैं और उस शक्तिधर विशालकाय ऊर्ध्वमूल वृक्ष का निकलना शुरू हो चुका है। और उसी के सम्बन्ध में मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ।

किसी भी दूसरे देश की अपेक्षा भारत की समस्याएँ अधिक जटिल और गुरुतर हैं। जाति, धर्म, भाषा, शासनप्रणाली – ये ही एक साथ मिलकर एक राष्ट्र की सृष्टि करते हैं। यदि एक–एक जाति को लेकर हमारे राष्ट्र से तुलना की जाए तो हम देखेंगे कि जिन उपादानों से संसार के दूसरे राष्ट्र संगठित हुए हैं, वे संख्या में यहाँ के उपादानों से कम है। यहाँ आर्य हैं, द्रविड़ हैं, तातार हैं, तुर्क हैं, मुगल हैं, यूरोपीय हैं, – मानो संसार की सभी जातियाँ इस भूमि में अपना–अपना खून मिला रही हैं। भाषा का यहाँ एक विचित्र ढंग का जमावड़ा है, आचार–व्यवहारों के सम्बन्ध में दो भारतीय जातियों में जितना अन्तर है, उतना पूर्वी और यूरोपीय जातियों में नहीं।

हमारी एक मात्र सम्मिलनभूमि है – हमारी पवित्र परम्परा, हमारा धर्म। एकमात्र सामान्य आधार वही है, और उसी पर हमें संगठन करना होगा। यूरोप में राजनीतिक विचार ही राष्ट्रीय एकता का कारण है। किन्तु एशिया में राष्ट्रीय ऐक्य का आधार धर्म ही है, अतः भारत के भविष्यसंगठन की पहली शर्त के तौर पर उसी धार्मिक एकता की आवश्यकता है। देश भर में एक ही धर्म सब को स्वीकार करना होगा। एक ही धर्म से मेरा क्या मतलब है? यह उस तरह का एक ही धर्म नहीं, जिसका ईसाइयों, मुसलमानों या बौद्धों में प्रचार है। हम जानते हैं, हमारे विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्त तथा दावे चाहे कितने ही विभिन्न क्यों न हों, हमारे धर्म में कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो सभी सम्प्रदायों द्वारा मान्य हैं। इस तरह हमारे सम्प्रदायों के ऐसे कुछ सामान्य आधार अवश्य हैं। उनको स्वीकार करने पर हमारे धर्म में अद्‌भुत विविधता के लिए गुंजाइश हो जाती है, और साथ ही विचार और अपनी रुचि के अनुसार जीवननिर्वाह के लिए हमें सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाती है। हम लोग, कम से कम वे जिन्होंने इस पर विचार किया है, यह बात जानते हैं और अपने धर्म के ये जीवनप्रद सामान्यतत्त्व हम सब के सामने लाएँ और देश के सभी स्त्री–पुरुष, बाल–वृद्ध, उन्हें जाने–समझें तथा जीवन में उतारें – यही हमारे लिए आवश्यक है। सर्वप्रथम यही हमारा कार्य है।

अतः हम देखते हैं कि एशिया में और विशेषतः भारत में जाति, भाषा, समाज–सम्बन्धी सभी बाधाएँ धर्म की इस एकीकरण शक्ति के सामने उड़ जाती हैं। हम जानते हैं कि भारतीय मन के लिए धार्मिक आदर्श से बड़ा और कुछ भी नहीं है। धर्म ही भारतीय जीवन का मूलमन्त्र है, और हम केवल सब से कम बाधावाले मार्ग का अनुसरण करके ही कार्य में अग्रसर हो सकते

हैं। यह केवल सत्य ही नहीं कि धार्मिक आदर्श यहाँ सब से बड़ा आदर्श है, किन्तु भारत के लिए कार्य करने का एकमात्र सम्भाव्य उपाय यही है। पहले उस पथ को सुदृढ़ किये बिना, दूसरे मार्ग से कार्य करने पर उसका फल घातक होगा। इसीलिए भविष्य के भारतनिर्माण का पहला कार्य, वह पहला सोपान, जिसे युगों के उस महाचल पर खोदकर बनाना होगा, भारत की यह धार्मिक एकता ही है। यह शिक्षा हम सब को मिलनी चाहिए कि हम हिन्दू द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी या अद्वैतवादी, अथवा दूसरे सम्प्रदाय के लोग, जैसे शैव, वैष्णव, पाशुपत आदि भिन्न भिन्न मतों के होते हुए भी आपस में कुछ समान भाव भी रखते हैं, और अब वह समय आ गया है कि अपने हित के लिए, अपनी जाति के हित के लिए हम इन तुच्छ भेदों और विवादों को त्याग दें। सचमुच ये झगड़े बिल्कुल वाहियात हैं। हमारे शास्त्र इनकी निन्दा करते हैं, हमारे पूर्वजों ने इनके बहिष्कार का उपदेश दिया है, और वे महापुरुषगण, जिनके वंशज हम अपने को बताते हैं और जिनका खून हमारी नसों में बह रहा है, अपनी सन्तानों को छोटे–छोटे भेदों के लिए झगड़ते हुए देखकर उनकी ओर घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

लड़ाई–झगड़े छोड़ने के साथ ही अन्य विषयों की उन्नति अवश्य होगी, यदि जीवन का रक्त सशक्त एवं शुद्ध है तो शरीर में विषैले कीटाणु नहीं रह सकते। हमारी आध्यात्मिकता ही हमारा जीवनरक्त है। यदि यह साफ, बहता रहे, यदि यह शुद्ध एवं सशक्त बना रहे तो सब कुछ ठीक है। राजनीतिक, सामाजिक, चाहे जिस किसी तरह की ऐहिक त्रुटियाँ हों, चाहे देश की निर्धनता ही क्यों न हो, यदि खून शुद्ध है तो सब सुधर जाएँगे। क्योंकि यदि रोगवाले कीटाणु शरीर से निकाल दिये जाएँ तो फिर दूसरी कोई बुराई खून में नहीं समा सकती। उदाहरणार्थ आधुनिक चिकित्साशास्त्र की एक उपमा लो। हम जानते हैं कि किसी बीमारी के फैलने के दो कारण होते हैं – एक तो बाहर से कुछ विषैले कीटाणुओं का प्रवेश, दूसरा शरीर की अवस्थाविशेष। यदि शरीर की अवस्था ऐसी न हो जाए कि वह कीटाणुओं को घुसने दे, यदि शरीर की जीवनीशक्ति इतनी क्षीण न हो जाए कि कीटाणु शरीर में घुसकर बढ़ते रहें तो, संसार में किसी भी कीटाणु में इतनी शक्ति नहीं, जो शरीर में पैठकर बीमारी पैदा कर सके। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य के शरीर के भीतर सदा करोड़ों कीटाणु प्रवेश करते रहते हैं, परन्तु जब तक शरीर बलवान है, हमें उनकी कोई खबर नहीं रहती। जब शरीर कमजोर हो जाता है, तभी ये विषैले कीटाणु उस पर अधिकार कर लेते हैं और रोग पैदा करते हैं। राष्ट्रीय जीवन के बारे में भी यही बात है। जब राष्ट्रीय जीवन कमजोर हो जाता है, तब हर तरह के रोग के कीटाणु उसके शरीर में इकट्ठे जमकर उसकी राजनीति, समाज शिक्षा और बुद्धि को रुग्ण बना देते हैं। अतएव उसकी चिकित्सा के लिए हमें इस बीमारी की जड़ तक पहुंचकर रक्त से कुल दोषों को निकाल देना चाहिए। तब उद्देश्य यह होगा कि मनुष्य बलवान हो खून शुद्ध हो और शरीर तेजस्वी, जिससे वह सब बाहरी विषों को दबा और हटा देने लायक हो सके।

हमने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज, हमारे बल, यही नहीं हमारे राष्ट्रीय जीवन का भी मूल आधार है। इस समय मैं यह तर्क–वितर्क करने नहीं जा रहा हूँ कि धर्म उचित है

या नहीं, सही है या नहीं, और अन्त तक यह लाभदायक है या नहीं। किन्तु अच्छा हो या बुरा, धर्म ही हमारे राष्ट्रीय जीवन का प्राण है; तुम उससे निकल नहीं सकते। अभी और चिरकाल के लिए भी तुम्हें उसी का अवलम्ब ग्रहण करना होगा और तुम्हें उसी के आधार पर खड़ा होना होगा, चाहे तुम्हें इस पर उतना विश्वास हो या न हो, जो मुझे है। तुम इसी धर्म में बँधे हुए हो, और 'अगर तुम इसे छोड़ दो तो चूर–चूर हो जाओगे। वही हमारी जाति का जीवन है और उसे अवश्य ही सशक्त बनाना होगा। तुम जो युगों के धक्के सहकर भी अक्षय हो, इसका कारण केवल यही है कि धर्म के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया था, उस पर सब कुछ निछावर किया था। तुम्हारे पूर्वजों ने धर्मरक्षा के लिए सब कुछ साहसपूर्वक सहन किया था, मृत्यु को भी उन्होंने हृदय से लगाया था। विदेशी विजेताओं द्वारा मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े गये, परन्तु उस बाढ़ के बह जाने में देर नहीं हुई कि मन्दिर के कलश फिर खड़े हो गये। दक्षिण के ये ही कुछ पुराने मन्दिर और गुजरात के सोमनाथ के जैसे मन्दिर तुम्हें विपुल ज्ञान प्रदान करेंगे। वे जाति के इतिहास के भीतर वह गहरी अन्तर्दृष्टि देंगे, जो ढेरों पुस्तकों से भी नहीं मिल सकती। देखो कि किस तरह ये मन्दिर सैकड़ों आक्रमणों और सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न धारण किये हुए हैं, ये बार–बार नष्ट हुए और बार–बार ध्वंसावशेष से उठकर नया जीवन प्राप्त करते हुए अब पहले ही की तरह अटल भाव से खड़े हैं। इसलिए इस धर्म में ही हमारे राष्ट्र का मन है, हमारे राष्ट्र का जीवनप्रवाह है। इसका – अनुसरण करोगे तो यह तुम्हें गौरव की ओर ले जाएगा। इसे छोड़ोगे तो मृत्यु निश्चित है। अगर तुम उस जीवनप्रवाह से बाहर निकल आये तो मृत्यु ही एकमात्र परिणाम होगा और पूर्ण नाश ही एकमात्र परिणति। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि दूसरी चीज की आवश्यकता ही नहीं। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है, किन्तु मेरा तात्पर्य यही है और मैं तुम्हें सदा इसकी याद दिलाना चाहता है कि ये सब यहाँ गौण विषय हैं, मुख्य विषय धर्म है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और । अतः धर्म को ही सशक्त बनाना होगा पर यह किया किस तरह जाए? मैं तुम्हारे सामने अपने विचार रखता हूँ। बहुत दिनों से, यहाँ तक कि अमेरिका के लिए मद्रास का समुद्री तट छोड़ने के वर्षो पहले से ये मेरे मन में थे और उन्हीं को प्रचारित करने के लिए मैं अमेरिका और इंग्लैण्ड गया था। धर्म–महासभा या किसी और वस्तु की मुझे बिल्कुल परवाह नहीं थी, वह तो एक सुयोग मात्र था। वस्तुतः मेरे ये संकल्प ही थे जो सारे संसार में मुझे लिये फिरते रहे।

मेरा विचार है, पहले हमारे शास्त्रग्रन्थों में भरे पड़े आध्यात्मिकता के रत्नों को, जो कुछ ही मनुष्यों के अधिकार में मठों और अरण्यों में छिपे हुए हैं, बाहर लाना होगा। जिन लोगों के अधिकार में ये छिपे हुए हैं, केवल उन्हीं से इस ज्ञान का उद्धार करना पर्याप्त न होगा, वरन् उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भाषा में ये सुरक्षित हैं, उस संस्कृत भाषा के शताब्दियों के पर्त खाये हुए अभेद्य शब्दजाल से उन्हें निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि मैं उन्हें सब के लिए सुलभ कर देना चाहता हूँ। मैं इन तत्वों को निकालकर सब की, भारत के प्रत्येक मनुष्य की, सामान्य सम्पत्ति बनाना चाहता हूँ, चाहे वह संस्कृत जानता हो या नहीं। इस मार्ग की बहुत बड़ी कठिनाई हमारी

गौरवशाली संस्कृत भाषा ही है, और यह कठिनाई तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक हमारे राष्ट्र के सभी मनुष्य संस्कृत के अच्छे विद्वान न हो जाएँ। यह कठिनाई तुम्हारी समझ में आ जाएगी, जब मैं कहूँगा कि आजीवन इस संस्कृत भाषा का अध्ययन करने पर भी जब मैं इसकी कोई नयी पुस्तक उठाता हूँ, तब वह मुझे बिल्कुल नयी जान पड़ती है। अब सोचो कि जिन लोगों ने कभी विशेष रूप से इस भाषा का अध्ययन करने का समय नहीं पाया, उनके लिए यह भाषा कितनी अधिक क्लिष्ट होगी! अतः मनुष्यों की बोलचाल की भाषा में उन विचारों की शिक्षा देनी होगी। साथ ही संस्कृत की भी शिक्षा अवश्य होती रहनी चाहिए, क्योंकि संस्कृत शब्दों की ध्वनि मात्र से ही जाति को एक प्रकार का गौरव, शक्ति और बल प्राप्त हो जाता है। महान् धर्माचार्य रामानुज, चैतन्य और कबीर ने भारत की नीची जातियों को उठाने का जो प्रयत्न किया था, उसमें उन्हें अपने ही जीवनकाल में अद्‌भुत सफलता मिली थी। किन्तु फिर उनके बाद उस कार्य का जो शोचनीय परिणाम हुआ, उसकी कारणमीमांसा होनी चाहिए, और जिस कारण उन बड़े–बड़े धर्माचार्यों के तिरोभाव के प्रायः एक ही शताब्दी के भीतर वह उन्नति रुक गयी, उसकी मीमांसा होनी चाहिए। इसका रहस्य यह है–उन्होंने नीची जातियों को उठाया; वे सब चाहते थे कि ये उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ हो जाएँ, परन्तु उन्होंने जनता में संस्कृत का प्रचार करने में अपनी शक्ति नहीं लगायी। यहाँ तक कि भगवान् बुद्ध ने भी यह भूल की कि उन्होंने जनता में संस्कृत भाषा का अध्ययन बन्द कर दिया। वे तुरन्त फल पाने के इच्छुक थे, इसीलिए उस समय की भाषा पाली में संस्कृत से अनुवाद कर उन्होंने उन विचारों का प्रचार किया। यह बहुत ही सुन्दर हुआ। जनता ने उनका अभिप्राय समझा, क्योंकि वे जनता की बोलचाल की भाषा में उपदेश देते थे। यह बहुत ही अच्छा हुआ। इससे उनके भाव बहुत शीघ्र फैले और बहुत दूर–दूर तक पहुँचे। किन्तु इसके साथ–साथ संस्कृत का भी प्रचार होना चाहिए था। ज्ञान का विस्तार हुआ सही, पर उसके साथ–साथ प्रतिष्ठा नहीं बनी, संस्कार नहीं बना। संस्कृति ही युग के आघातों को सहन कर सकती है, मात्र ज्ञानराशि नहीं। तुम संसार के सामने प्रभूत ज्ञान रख सकते हो, परन्तु इससे उसका विशेष उपकार न होगा। संस्कार को रक्त में व्याप्त हो जाना चाहिए। वर्तमान समय में हम कितने ही राष्ट्रों के सम्बन्ध में जानते हैं, जिनके पास विशाल ज्ञान का आगार है, परन्तु इससे क्या? वे बाघ की तरह नृशंस हैं, वे बर्बरों के सदृश हैं, क्योंकि उनका ज्ञान संस्कार में परिणत नहीं हुआ है। सभ्यता की तरह ज्ञान भी चमड़े की ऊपरी सतह तक ही सीमित है, छिछला है, और एक खरोंच लगते ही वह पुरानी नृशंसता जग उठती है। ऐसी घटनाएँ हुआ करती हैं। यही भय है। जनता को उसकी भाषा में शिक्षा दो, उसको भाव दो, वह बहुत कुछ जान जाएगी, परन्तु साथ ही कुछ और भी जरूरी है – उसको संस्कृति का बोध दो। जब तक तुम यह नहीं कर सकते, तब तक उनकी उन्नत दशा कदापि स्थायी नहीं हो सकती। एक ऐसे नवीन वर्ण की सृष्टि होगी, जो संस्कृत भाषा सीखकर शीघ्र ही दूसरे वर्णों के ऊपर उठेगी और पहले की तरह उन पर अपना प्रभुत्व फैलाएगी। ये पिछड़ी जाति के लोगों, मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि तुम्हारे बचाव का, तुम्हारी अपनी दशा को उन्नत करने का एकमात्र उपाय संस्कृत पढ़ना है,

और यह लड़ना–झगड़ना और उच्च वर्णों के विरोध में लेख लिखना व्यर्थ है। इससे कोई उपकार न होगा, इससे लड़ाई–झगड़े और बढ़ेंगे, और यह जाति, दुर्भाग्यवश पहले ही से जिसके टुकड़े–टुकडे हो चुके हैं, और भी टुकड़ों में बँटती रहेगी। जातियों में समता लाने के लिए एकमात्र उपाय उस संस्कार और शिक्षा का अर्जन करना है, जो उच्च – वर्णों का बल और गौरव है। यदि यह तुम कर सको तो जो कुछ तुम चाहते हो, वह तुम्हें मिल जाएगा।

इसके साथ मैं एक और प्रश्न पर विचार करना चाहता हूँ, जो खासकर मद्रास से सम्बन्ध रखता है। एक मत है कि दक्षिण भारत में द्रविड़ नाम की एक जाति के मनुष्य थे, जो उत्तर भारत की आर्य नामक जाति से बिल्कुल भिन्न थे और दक्षिण भारत के ब्राह्मण ही उत्तर भारत से आये हुए आर्य है, अन्य जातियाँ दक्षिणी ब्राह्मणों से बिल्कुल ही पृथक् जाति की है। भाषावैज्ञानिक महाशय, मुझे क्षमा कीजिएगा, यह मत बिल्कुल निराधार है। इसका एकमात्र प्रमाण यह है कि उत्तर और दक्षिण की भाषा में भेद है। दूसरा भेद मेरी नजर में नहीं आता। हम यहाँ उत्तर भारत के इतने लोग हैं, मैं अपने यूरोपीय मित्रों से कहता हूँ कि वे इस सभा के उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत के लोगों को चुनकर अलग कर दें। भेद कहाँ है ?, जरा सा भेद भाषा में है। पूर्वोक्त मतवादी कहते है कि दक्षिणी ब्राह्मण जब उत्तर से आये थे, तब वे संस्कृत बोलते थे, बोलते थे, अभी यहाँ आकर द्राविड़ भाषा बोलते–बोलते संस्कृत भूल गये। यदि ब्राह्मणों के सम्बन्ध में ऐसी बात है तो फिर दूसरी जातियों के सम्बध में भी यही बात क्यों न होगा ? क्यों न कहा जाए कि दूसरी जातियाँ भी एक–एक करके उत्तर भारत से आयी है, उन्होंने द्रविड़ भाषा को अपनाया और संस्कृत भूल गयीं? यह युक्ति तो दोनों ओर लग सकती है। ऐसी वाहियात बातों पर विश्वास न करो। यहाँ ऐसी कोई द्रविड जाति रही होगी, जो यहाँ से लुप्त हो गयी है, और उनमें से जो कुछ थोडे से रह गये थे। वे जंगलों और दूसरे दूसरे स्थानों में बस गये। यह बिल्कुल सम्भव है कि संस्कृत के बदले वह द्रविड़ भाषा ले ली गयी हो, परन्तु ये सब आर्य ही हैं, जो उत्तर से आये। सारे भारत के मनुष्य आर्यों के सिवा और कोई नहीं।

इसके बाद एक दूसरा विचार है कि शूद्र लोग निश्चय ही आदिम जाति के यां अनार्य हैं। तब वे क्या हैं? वे गुलाम हैं। विद्वान् कहते हैं कि इतिहास अपने को दुहराता है। अमरीकी, अंग्रेज, डच और पुर्तगाली बेचारे अफ्रीकियों को पकड़ लेते थे, जब तक वे जीवित रहते, उनसे घोर परिश्रम कराते थे, और इनकी मिश्रित सन्ताने भी दासता में उत्पन्न होकर चिरकाल तक दासता में ही पड़ी रहती थीं। इस अदभुत उदाहरण से मन हजारों वर्ष पीछे जाकर यहाँ भी उसी तरह की घटनाओं की कल्पना करता है, और हमारे पुरातत्त्ववेत्ता भारत के सम्बन्ध में स्वप्न देखते हैं कि भारत काली आँखोंवाले आदिवासियों से भरा हुआ था, और उज्ज्वल आर्य बाहर से आये–परमात्मा जाने कहाँ से आये ! कुछ लोगों के मत से वे मध्य तिब्बत से आये, दूसरे कहते हैं वे मध्य एशिया से आये। कुछ स्वदेशप्रेमी अंग्रेज हैं जो सोचते हैं कि आर्य लाल बालवाले थे। अपनी रुचि के अनुसार दूसरे सोचते हैं कि वे सब काले बालवाले थे। अगर लेखक खुद काले बालवाला मनुष्य हुआ तो सभी आर्य काले बालवाले थे! कुछ दिन हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न

किया गया था कि आर्य स्विट्जरलैण्ड की झीलों के किनारे बसते थे। मुझे जरा भी दुःख न होता, अगर वे सब के सब, इन सब सिद्धान्तों के साथ, वहीं डूब मरते। आजकल कोई–कोई कहते हैं कि वे उत्तरी ध्रुव में रहते थे। ईश्वर आर्यों और उनके निवासस्थलों पर कृपादृष्टि रखें। इन सिद्धान्तों की सत्यता के बारे में यही कहना है कि हमारे शास्त्रों में एक भी शब्द नहीं है, जो प्रमाण दे सके कि आर्य भारत के बाहर से किसी देश से आये। हाँ, प्राचीन भारत में अफगानिस्तान भी शामिल था, बस इतना ही। और यह सिद्धान्त भी कि शूद्र अनार्य और असंख्य थे, बिल्कुल अतार्किक और अयौक्तिक है। उन दिनों यह सम्भव ही नहीं था कि मुट्ठी भर आर्य यहाँ आकर लाखों अनार्यों पर अधिकार जमाकर बस गये हों। अजी, वे अनार्य उन्हें खा जाते, पाँच ही मिनट में उनकी चटनी बना डालते।

इस समस्या की एकमात्र व्याख्या महाभारत में मिलती है। उसमें लिखा है कि सतयुग के आरम्भ में एक ही जाति ब्राह्मण थी और फिर पेशे के भेद से वह भिन्न भिन्न जातियों में बँटती गयी। बस, यही एकमात्र व्याख्या सच और युक्तिपूर्ण है। भविष्य में जो सतयुग आ रहा है, उसमें ब्राह्मणेतर सभी जातियाँ फिर ब्राह्मण रूप में परिणित होंगी।

इसीलिए भारतीय जातिसमस्या की मीमांसा इसी प्रकार होती है कि उच्च वर्गों को गिराना नहीं होगा, ब्राह्मणों का अस्तित्व लोप करना नहीं होगा। भारत में ब्राह्मणत्व ही मनुष्यत्व का चरम आदर्श है। इसे शंकराचार्य , ने गीता के भाष्यारम्भ में बड़े ही सुन्दर ढंग से पेश किया है, जहाँ कि उन्होंने ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिए प्रचारक के रूप में कृष्ण के आने का कारण बतलाया है। यही उनके अवतरण का महान् उद्देश्य था। इस ब्राह्मण–का, इस ब्रह्मज्ञ पुरुष का, इस आदर्श और सिद्ध पुरुष का रहना परमावश्यक है, इसका लोप कदापि नहीं होना चाहिए। और इस समय इस जातिभेद की प्रथा में जितने दोष हैं, उनके रहते हुए भी, हम जानते हैं कि हमें ब्राह्मणों को यह श्रेय देने के लिए तैयार रहना होगा कि दूसरी जातियों की अपेक्षा उन्हीं में से अधिकसंख्यक मनुष्य यथार्थ ब्राह्मणत्व को लेकर आये हैं। यह सच है। दूसरी जातियों को उन्हें यह श्रेय देना ही होगा, यह उनका प्राप्य है। हमें बहुत स्पष्टवादी होकर साहस के साथ उनके दोषों की आलोचना करनी चाहिए। पर साथ ही उनका प्राप्य श्रेय भी उन्हें देना चाहिए। अंग्रेजी की पुरानी कहावत याद रखो –'हर एक मनुष्य को उसका प्राप्य दो। अतः मित्रो, जातियों का आपस में झगड़ना बेकार है। । इससे क्या लाभ होगा? इससे हम और भी बँट जाएँगे, और भी कमजोर हो जाएँगे, और भी गिर जाएँगे। एकाधिकार तथा उसके दावे के दिन चले गये, भारतभूमि, से वे चिरकाल के लिए अन्तर्हित हो गये और यह भारत में ब्रिटिश शासन का एक सुफल है। यहाँ तक कि मुसलमानों के शासन से भी हमारा उपकार हुआ था, उन्होंने भी इस एकाधिकार को तोड़ा था। सब कुछ होने पर भी वह शासन सर्वांशतः बुरा नहीं था। कोई भी वस्तु सर्वांशतः न बुरी होती है और न अच्छी ही। मुसलमानों की भारतविजय पददलितों और गरीबों का मानो उद्धार करने के लिए हुई थी। यही कारण है कि हमारी एक पंचमांश जनता मुसलमान हो गयी। यह सारा काम तलवार से ही नहीं हुआ। यह सोचना कि यह सभी तलवार और आग

का काम था, बेहद पागलपन होगा। अगर तुम सचेत न होगे तो मद्रास के तुम्हारे एक पंचमांश – नहीं, अर्धांश लोग ईसाई हो जाएँगे। जैसा मैंने मालाबार प्रदेश में देखा, क्या वैसी वाहियात बातें संसार में पहले भी कभी थीं? जिस रास्ते से उच्च वर्ण के लोग चलते हैं, गरीब पैरिया उससे नहीं चलने पाता। परन्तु ज्योंही उसने कोई बेढब अंग्रेजी नाम या कोई मुसलमानी नाम रख लिया कि बस, सारी बातें सुधर जाती हैं। यह सब देखकर इसके सिवा तुम और क्या निष्कर्ष निकाल सकते हो कि सब मलाबारी पागल हैं, और उनके घर पागलखाने हैं? और जब तक वे होश सँभालकर अपनी प्रथाओं की संशोधन न कर लें, तब तक भारत की सभी जातियों को उनकी खिल्ली उड़ानी चाहिए। ऐसी बुरी और नृशंस प्रथाओं को आज भी जारी रखना क्या उनके लिए लज्जा का विषय नहीं है? उनके अपने बच्चे तो भूखों मरते हैं, परन्तु ज्योंही उन्होंने किसी दूसरे धर्म का आश्रय लिया कि फिर उन्हें अच्छा भोजन मिल जाता है। अब जातियों में आपसी लड़ाई बिल्कुल नहीं होनी चाहिए।

उच्च वर्णों को नीचे उतारकर इस समस्या की मीमांसा नहीं होगी, किन्तु नीची जातियों को ऊँची जातियों के बराबर उठाना होगा। और यद्यपि कुछ लोगों को, जिनका अपने शास्त्रों का ज्ञान और अपने पूर्वजों के महान् उद्देश्यों के समझने की शक्ति शून्य से अधिक नहीं, तुम कुछ का कुछ कहते हुए सुनते हो, फिर भी मैंने जो कुछ कहा है, हमारे शास्त्रों में वर्णित कार्यप्रणाली वही है। वे इसे नहीं समझते, समझते वे हैं जिनके मस्तिष्क है तथा जो पूर्वजों के कार्यों का समस्त प्रयोजन समझ लेने की क्षमता रखते हैं। वे तटस्थ होकर युग–युगान्तरों से गुजरते हुए राष्ट्रीय जीवन की विचित्र गति को लक्ष्य करते हैं। वे नये और पुराने सभी शास्त्रों में क्रमशः इसकी परम्परा देख पाते है। अच्छा, तो वह योजना – वह प्रणाली – क्या है? उस आदर्श का एक छोर ब्राह्मण है और दूसरा छोर चाण्डाल, और सम्पूर्ण कार्य चाण्डाल को उठाकर ब्राह्मण बनाना हैं। शास्त्रों में धीरे–धीरे तुम देख पाते हो कि नीची जातियों को अधिकाधिक अधिकार दिये जाते है। कुछ ग्रन्थ भी है। जिनमें तुम्हें ऐसे कठोर वाक्य पढ़ने को मिलते है–''अगर शुद्र वेद सुन ले तो उसके कानों में सीसा गलाकर भर दो, और अगर वह वेद की एक भी पंक्ति याद कर ले तो उसकी जीभ काट डालो, यदि वह किसी ब्राह्मण को 'ऐ ब्राह्मण' कह दे तो भी उसकी जीभ काट लो!'' यह पुराने जमाने की नृशंस बर्बरता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं; परन्तु स्मृतिकारों को दोष न दो, क्योंकि उन्होंने समाज के किसी अंश में प्रचलित प्रथाओं को ही लिपिबद्ध किया है। ऐसे आसुरी प्रकृति के लोग प्राचीन काल में कभी–कभी पैदा हो गये थे। ऐसे असुर लोग कमोबेश सभी युगों में होते आये हैं। इसलिए बाद के समय में तुम देखोगे कि इस स्वर में थोड़ी नरमी आ गयी है, जैसे 'शुद्रों के तंग न करो, परन्तु उन्हें उच्च शिक्षा भी न दो।' फिर धीरे–धीरे हम दूसरी स्मृतियों में खासकर उन स्मृतियों में जिनका आजकल पूरा प्रभाव है, यह लिखा पाते हैं कि अगर शूद्र ब्राह्मणों के आचार–व्यवहारों का अनुकरण करें तो वे अच्छा करते है, उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। इस प्रकार यह सब होता जा रहा है। तुम्हारे सामने इन सब कार्यपद्धतियों का विस्तृत वर्णन करने का मुझे समय नहीं है और न ही इसका कि इनका विस्तृत

विवरण कैसे प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु प्रत्यक्ष घटनाओं का विचार करने से हम देखते हैं, सभी जातियाँ धीरे–धीरे उठेंगी। आज जो हजारों जातियाँ हैं, उनमें से कुछ तो ब्राह्मणों में शामिल भी हो रही है। कोई जाति अगर अपने को ब्राह्मण कहने लगे तो इस पर कोई क्या कर सकता है? जातिभेद कितना भी कठोर क्यों न हो, वह इस रूप में ही सृष्ट हुआ है। कल्पना करो कि यहाँ कुछ जातियाँ हैं, जिनमें हर एक की जनसंख्या दस हजार है। अगर ये सब इकठ्ठी होकर अपने को ब्राह्मण कहने लगें तो इन्हें कौन रोक सकता है ? ऐसा मैंने अपने ही जीवन में देखा है। कुछ जातियाँ जोरदार हो गयीं, और ज्योंही उन सब की एक राय हुई, फिर उनसे 'नहीं' भला कौन कह सकता है? – क्योंकि और कुछ भी हो, हर एक जाति दूसरी जाति से सम्पूर्ण पृथक है। कोई जाति किसी दूसरी जाति के कामों में, यहाँ तक कि एक ही जाति की भिन्न भिन्न शाखाएँ भी एक दूसरे के कार्यो में हस्तक्षेप नहीं करतीं। और शंकराचार्य आदि शक्तिशाली युगप्रवर्तक ही बड़े बड़े वर्णनिर्माता थे। उन लोगों ने जिन अद्‌भुत बातों का आविष्कार किया था, वे सब मैं तुमसे नहीं कह सकता, और सम्भव है कि तुममें से कोई कोई उससे अपना रोष प्रकट करे। किन्तु अपने भ्रमण और अनुभव से मैंने उनके सिद्धान्त ढूंढ़ निकाले, और इससे मुझे अद्‌भुत परिणाम प्राप्त हुए। कभी–कभी उन्होंने दल के दल बलूचियों को लेकर क्षण भर में उन्हें क्षत्रिय बना डाला, दल के दल धीवरों को लेकर क्षण भर में ब्राह्मण बना दिया। वे सब ऋषि–मुनि थे और हमें उनकी स्मृति के सामने सिर झुकाना होगा। तुम्हें भी ऋषि–मुनि बनना होगा। कृतकार्य होने का यही गूढ़ रहस्य है। न्यूनाधिक सभी को ऋषि होना होगा। ऋषि का क्या अर्थ हैं ? ऋषि का अर्थ है पवित्र आत्मा। पहले पवित्र बनो, तभी तुम शक्ति पाओगे। 'मैं ऋषि हूँ कहने मात्र ही से न होगा, किन्तु जब तुम यथार्थ ऋषित्व लाभ करोगे तो देखोगे, दूसरे आप ही आप तुम्हारी आज्ञा मानते हैं। तुम्हारे भीतर से कुछ रहस्यमय वस्तु निःसृत होती है, जो दूसरों को तुम्हारा अनुसरण करने को बाध्य करती है, जिससे वे तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हैं। यहाँ तक कि अपनी इच्छा के विरुद्ध अज्ञात भाव से वे तुम्हारी योजनाओं की कार्यसिद्धि में सहायक होते हैं। यही ऋषित्व है।

विस्तृत कार्यप्रणाली के बारे में यही कहना है कि पीढ़ियों तक उसका अनुसरण करना होगा। मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह एक सुझाव मात्र है, जिसका उद्देश्य यह दिखाना है कि ये लड़ाई–झगड़े बन्द हो जाने चाहिए। मुझे विशेष दुःख इस बात पर होता है कि वर्तमान समय में भी जातियों के बीच में इतना मतभेद चलता रहता है। इसका अन्त हो जाना चाहिए। यह दोनों ही पक्षों के लिए व्यर्थ है, खासकर ब्राह्मणों के लिए, क्योंकि इस तरह के एकाधिकार और विशेष दावों के दिन अब चले गये। हर एक अभिजातवर्ग का कर्तव्य है कि अपने कुलीनतन्त्र की कब्र वह आप ही खोदे, और वह जितना शीघ्र इसे कर सके, उतना ही अच्छा है। जितनी ही वह देर करेगा, उतना ही वह सड़ेगा और उसकी मृत्यु भी उतनी ही भयंकर होगी। अतः यह ब्राह्मणजाति का कर्तव्य है कि भारत की दूसरी सब जातियों के उद्धार की चेष्टा करे। यदि वह ऐसा करती है, तभी वह ब्राह्मण है; और जब तक ऐसा करती है, तभी तक वह ब्राह्मण है; अगर वह धन के

चक्कर में पड़ी रहती है तो वह ब्राह्मण नहीं है। इधर तुम्हें भी उचित है कि यथार्थ ब्राह्मणों की ही सहायता करो। इससे तुम्हें स्वर्ग मिलेगा। पर यदि तुम अपात्र को दान दोगे तो उसका फल स्वर्ग न होकर उसके विपरीत होगा – हमारे शास्त्रों का यही कथन है। इस विषय में तुम्हें सावधान हो जाना चाहिए। यथार्थ ब्राह्मण वे ही हैं, जो सांसारिक कोई कर्म नहीं करते। सांसारिक कर्म दूसरी जातियों के लिए हैं, ब्राह्मणों के लिए नहीं। ब्राह्मणों से मेरा यह निवेदन है कि वे जो कुछ जानते हैं, उसकी शिक्षा देकर और सदियों से उन्होंने जिस ज्ञान एवं संस्कृति का संचय किया है, उसका प्रचार करके भारतीय जनता को उन्नत करने के लिए भरसक प्रयत्न करें। यथार्थ ब्राह्मणत्व क्या है, इसका स्मरण करना भारतीय ब्राह्मणों का स्पष्ट कर्तव्य है। मनु कहते है, 'ब्राह्मणों को जो इतना सम्मान और विशेष अधिकार दिये जाते हैं, – इसका कारण यह है कि उनके पास धर्म का भण्डार है। उन्हें वह भाण्डार खोलकर उसके रत्न संसार में बाँट देने चाहिए। यह सच है कि ब्राह्मणों ने ही पहले भारत की सब जातियों में धर्म का प्रचार किया, और उन्होंने ही सब से पहले, उस समय जब कि दूसरी जातियों में त्याग के भाव का उन्मेष ही नहीं हुआ था, जीवन के सर्वोच्च सत्य के लिए सब कुछ छोड़ा। यह ब्राह्मणों का दोष नहीं कि वे उन्नति के मार्ग पर अन्य जातियों से आगे बढ़े। दूसरी जातियों ने भी ब्राह्मणों की तरह समझने और करने की चेष्टा क्यों नहीं की? क्यों उन्होंने सुस्त बैठे रहकर ब्राह्मणों को बाजी मार लेने दिया? परन्तु दूसरों की अपेक्षा अधिक अग्रसर होना तथा सुविधा प्राप्त करना एक बात है और दुरुपयोग के लिए उन्हें बनाए रखना दूसरी बात। शक्ति जब कभी बुरे उद्देश्य के हेतु लगायी जाती है तो वह आसुरी हो जाती है, उसका उपयोग सदुद्देश्य के लिए ही होना चाहिए। अतः युगों की यह संचित शिक्षा तथा संस्कार, जिनके ब्राह्मण संरक्षक होते आये हैं. अब साधारण जनता को देना पड़ेगा, और चूंकि उन्होंने साधारण जनता को वह सम्पत्ति नहीं दी, इसीलिए मुसलमानों का आक्रमण सम्भव हो सका था। हम जो हजार वर्षों तक भारत पर धावा बोलनेवाले जिस किसी के पैरों तले कुचले जाते रहे, इसका कारण यही है कि ब्राह्मणों ने शुरू से ही साधारण जनता के लिए वह खजाना खोल नहीं दिया। हम इसीलिए अवनत हो गये। और हमारा पहला कार्य यही है कि हम अपने पूर्वजों के बटोरे हुए धर्मरूपी अमोल रत्न जिन तहखानों में छिपे हुए हैं, उन्हें तोड़कर बाहर निकालें और उन्हें सब को दें। यह कार्य सबसे पहले ब्राह्मणों को ही करना होगा। बंगाल में एक युगमा अन्धविश्वास है कि जिस गोखुरे साँप ने काटा हो, यदि वह खुद अपना विष खींच ले तो आदमी जरूर बच जाता है। अतएव ब्राह्मणों को ही अपना विष खींच लेना होगा। ब्राह्मणेतर जातियों से मैं कहता हूँ ठहरो, जल्दी मत करो, ब्राह्मणों से लड़ने का मौका मिलते ही उसका उपयोग न करो, क्योंकि मैं पहले दिखा चुका हूँ कि तुम अपने ही दोष से कष्ट पा रहे हो। तुम्हें आध्यात्मिकता का उपार्जन करने और संस्कृत सीखने से किसने मना किया था? इतने दिनों तक तुम क्या करते रहे? क्यों तुम इतने दिनों तक उदासीन रहे? और दूसरों ने तुमसे बढ़कर मस्तिष्क, वीर्य, साहस और क्रियाशक्ति का परिचय दिया, इस पर अब चिढ़ क्यों रहे हो? समाचारपत्रों में इन सब व्यर्थ वाद–विवादों और झगड़ों में शक्तिक्षय न करके, अपने ही घरों में इस तरह

लड़ते–झगड़ते न रहकर – जो कि पाप है – ब्राह्मणों के समान ही संस्कार प्राप्त करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दो। बस तभी तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध होगा। तुम क्यों संस्कृत के पण्डित नहीं होते? भारत की सभी जातियों में संस्कृत शिक्षा का प्रचार करने के लिए तुम क्यों नहीं करोड़ों रुपये खर्च करते? मेरा प्रश्न तो यहीं है। जिस समय तुम यह कार्य करोगे, उसी क्षण तुम ब्राह्मणों के बराबर हो जाओगे। भारत शक्तिलाभ का रहस्य यही है।

संस्कृत में पाण्डित्य होने से ही भारत में सम्मान प्राप्त होता है। संस्कृत भाषा का ज्ञान होने से ही कोई भी तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहने का साहस न करेगा। यही एकमात्र रहस्य है, अतः इसे जान लो और संस्कृत पढ़ो। अद्वैतवादी की प्राचीन उपमा दी जाए तो कहना होगा कि समस्त जगत् अपनी माया से आप ही सम्मोहित हो रहा है। इच्छाशक्ति की जगत् में अमोघ शक्ति है। प्रबल इच्छाशक्ति का अधिकारी मनुष्य एक ऐसी ज्योतिर्मयी प्रभा अपने चारों और फैला देता है कि दूसरे लोग स्वतः उस प्रभा से प्रभावित होकर उसके भाव से भावित हो जाते है। ऐसे महापुरुष अवश्य ही प्रकट हुआ करते है। और इसके पीछे भावना क्या है? जब वे आविर्भूत होते हैं, तब उनके विचार हम लोगों के मस्तिष्क में प्रवेश करते है और हममें से कितने ही आदमी उनके विचारों तथा भावों को अपना लेते हैं, और शक्तिशाली बन जाते है। किसी संगठन या संघ में इतनी शक्ति क्यों होती है? संगठन को केवल भौतिक या जड़ शक्ति मत मानो। इसका क्या कारण है, अथवा वह कौन सी वस्तु है, जिसके द्वारा कुल चार करोड़ अंग्रेज पूरे तीस करोड़ भारतवासियों पर शासन करते है? इस प्रश्न का मनोवैज्ञानिक समाधान क्या है? यही, कि वे चार करोड़ मनुष्य अपनी–अपनी इच्छाशक्ति को समवेत कर देते हैं अर्थात् शक्ति का अनन्त भण्डार बना लेते है और तुम तीस करोड़ मनुष्य अपनी–अपनी इच्छाओं को एक दूसरे से पृथक् किये रहते हो। बस यही इसका रहस्य है कि वे कम होकर भी तुम्हारे ऊपर शासन करते है। अतः यदि भारत को महान बनाना है, उसका भविष्य उज्ज्वल बनाना है, तो इसके लिए आवश्यकता है संगठन की, शक्तिसंग्रह की और बिखरी हुई इच्छाशक्ति को एकत्र कर उसमें समन्वय लाने की।

अथर्ववेद संहिता की एक विलक्षण ऋचा याद आ गयी, जिसमें कहा गया है, 'तुम सब लोग एकमन हो जाओ, सब लोग एक ही विचार के बन जाओ, क्योंकि प्राचीन काल में एकमन होने के कारण ही देवताओं ने बलि पायी है। देवता मनुष्य द्वारा इसीलिए पूजे गये कि वे एकचित्त थे, एक मन हो जाना ही समाजगठन का रहस्य है। और यदि तुम 'आर्य' और 'द्रविड़', 'ब्राह्मण' और 'अब्राह्मण' जैसे तुच्छ विषयों को लेकर 'तू–तू मैं–मै' करोगे – झगड़े और पारस्परिक विरोधभाव को बढ़ाओगे – तो समझ लो कि तुम उस शक्तिसंग्रह से दूर हटते जाओगे, जिसके द्वारा भारत का भविष्य बनने जा रहा है। इस बात को याद रखो कि भारत का भविष्य सम्पूर्णतः उसी पर निर्भर करता है। बस, इच्छाशक्तियों का संचय और उनका समन्वय कर उन्हें एकमुखी करना ही वह सारा रहस्य है। प्रत्येक चीनी अपनी शक्तियों को भिन्न भिन्न मार्गों से परिचालित करता है, तथा मुट्ठी भर जापानी अपनी इच्छाशक्ति एक ही मार्ग से परिचालित करते हैं, और उसका फल क्या हुआ है, यह तुम लोगों से छिपा नहीं है। इसी तरह की बात सारे संसार में

देखने में आती है। यदि तुम संसार के इतिहास पर दृष्टि डालो, तो तुम देखोगे कि सर्वत्र छोटे छोटे सुगठित राष्ट्र बड़े–बड़े असंगठित राष्ट्रों पर शासन कर रहे हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योंकि छोटे संगठित राष्ट्र अपने भावों को आसानी के साथ केन्द्रीभूत कर सकते हैं। और इस प्रकार वे अपनी शक्ति को विकसित करने में समर्थ होते हैं। दूसरी ओर जितना बड़ा राष्ट्र होगा, उतना ही संगठित करना कठिन होगा। वे मानो अनियन्त्रित लोगों की भीड़ मात्र हैं, वे कभी परस्परसम्बद्ध नहीं हो सकते। इसलिए ये सब मतभेद के झगड़े एकदम बन्द हो जाने चाहिए।

इसके सिवा हमारे भीतर एक और बड़ा भारी दोष है। महिलाएँ मुझे क्षमा करेंगी, पर असल बात यह है कि सदियों से गुलामी करते–करते हम औरतों के राष्ट्र के समान बन गये हैं। चाहे इस देश में हो या किसी अन्य देश में, कहीं भी तुम तीन स्त्रियों को शायद ही कभी एक साथ पाँच मिनट से अधिक देर तक झगड़ा किये बिना देख पाओगे। यूरोपीय देशों में स्त्रियाँ बहुत बड़ी–बड़ी सभा–समितियाँ स्थापित करती है और अपनी शक्ति की बड़ी–बड़ी घोषणाएँ करती हैं। इसके बाद वे आपस में झगड़ा करने लग जाती हैं। इसी बीच कोई पुरुष आता है और उन पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है। सारे संसार में उन पर शासन करने के लिए अब भी पुरुषों की आवश्यकता होती है। हमारी भी ठीक वही हालत है। हम भी स्त्रियों के समान हो गये हैं। यदि कोई स्त्री स्त्रियों का नेतृत्व करने चलती है, तो सब मिलकर फौरन उसकी खरी आलोचना करना शुरू कर देती है– उसकी खिल्लियाँ उड़ाने लग जाती हैं, और अन्त में उसे नेतृत्व से हटाकर, उसे बैठाकर ही दम लेती हैं। यदि कोई पुरुष आता है और उनके साथ जरा सख्त बर्ताव करता है और बीच–बीच में डाँट–फटकार सुना देता है, तो बस वे ठीक हो जाती हैं। इस प्रकार के वशीकरण की वे अभ्यस्त हो गयी हैं। सारा संसार ही इस प्रकार के वशीकरण एवं सम्मोहन करनेवालों से भरा है। ठीक इसी तरह यदि हम लोगों में से किसी ने आगे बढ़ना चाहा, हमें रास्ता दिखाने की कोशिश की, तो हम फौरन उसकी टाँग पकड़कर पीछे खीचेंगे और उसे बिठा देंगे। परन्तु यदि कोई विदेशी हमारे बीच में कूद पड़े और हमें पैरों से ठोकर मारे, तो हम बड़ी खुशी से उसके पैर सहलाने लग जाएँगे। हम लोग इसके अभ्यस्त हो गये हैं। क्या ऐसी बात नहीं है? और कहीं गुलाम स्वामी बन सकता है ! इसलिए यह गुलामी वृत्ति छोड़ दो।

आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही हमारी आराध्य देवी बन जाए। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी–देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत् देवता है। सर्वत्र उसके हाथ है, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान. हैं। समझ लो कि दूसरे देवी–देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी–देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव–देवियों की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नहीं। आधा मील चलने की हममें शक्ति नहीं और हम हनुमान जी की तरह एक ही छलाँग में समुद्र पार करने की इच्छा करें, ऐसा नहीं हो सकता। जिसे देखो वहीं योगी बनने

की धुन में है, जिसे देखो वही समाधि लगाने जा रहा है! ऐसा नहीं होने का दिन भर तो दुनिया के सैकड़ों प्रपंचों में लिप्त रहोगे और शाम को आँख मूंदकर, नाक दबाकर, साँस चढ़ाओ–उतारोगे। क्या योग की सिद्धि और समाधि को इतना सहज समझ रखा है कि ऋषि लोग, तुम्हारे तीन बार नाक फड़फड़ाने और साँस चढ़ाने से हवा में उड़ते हुए चले आएंगे क्या इसे तुमने कोई हँसी–मजाक मान लिया है? ये सब विचार वाहियात हैं। हमें जिसकी आवश्यकता है, वह है चित्तशुद्धि – हृदय का पावित्र्य। और उसकी प्राप्ति कैसे होती है? इसके लिए सबसे पहले उस विराट की पूजा करो, जिसे तुम अपने चारों ओर देख रहे हो – उसकी पूजा करो। "पूजा' ही ठीक शब्द है, किसी अन्य शब्द से काम नहीं चलेगा। ये मनुष्य और पशु, जिन्हें हम आस–पास और आगे–पीछे देख रहे हैं, ये ही हमारे ईश्वर हैं। इनमें सब से पहले पूज्य हैं हमारे अपने देशवासी। परस्पर ईर्ष्या–द्वेष करने और झगड़ने के बजाय हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। यह ईर्ष्या–द्वेष और कलह अत्यन्त भयावह कर्म है। इसका फल हम भोग रहे हैं। फिर भी हमारी आँखें नहीं खुलती।

अस्तु, यह विषय इतना विस्तृत है कि मेरी समझ में ही नहीं आता कि मैं कहाँ पर अपना वक्तव्य समाप्त करूं। इसलिए मद्रास में मैं किस प्रकार काम करना चाहता हूँ, इस विषय में संक्षेप में अपना मत व्यक्त करके व्याख्यान समाप्त करता हूँ। सब से पहले हमें अपने देश की आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा का भार ग्रहण करना होगा। क्या तुम इस बात की सार्थकता को समझ रहे हो? तुम्हें इस विषय पर सोचना–विचारना होगा, इस पर तर्क–वितर्क और आपस में परामर्श करना होगा, दिमाग लगाना होगा और अन्त में उसे कार्यरूप में परिणत करना होगा। जब तक तुम यह काम पूरा नहीं करते हो, तब तक तुम्हारे देश का उद्धार होना असम्भव है। जो शिक्षा तुम अभी पा रहे हो, उसमें कुछ अच्छा अंश तो है, पर दोष बहुत अधिक है। इतने कि ये दोष उस भले अंश को दबा देते हैं। सब से पहली बात तो यह है कि यह शिक्षा मनुष्य बनानेवाली नहीं कही जा सकती। यह शिक्षा केवल तथा सम्पूर्णतः निषेधात्मक है। निषेधात्मक शिक्षा या निषेध की बुनियाद पर आधारित शिक्षा मृत्यु से भी भयानक होती है। कोमलमति बालक पाठशाला में भरती होता है और सब से पहली बात, जो वह सीखता है, वह यह कि तुम्हारा बाप मूर्ख है। दूसरी बात जो वह सीखता है, वह यह कि तुम्हारा दादा पागल है। तीसरी बात यह कि तुम्हारे जितने शिक्षक और आचार्य हैं, वे पाखण्डी हैं और चौथी बात यह कि तुम्हारे जितने पवित्र धर्मग्रन्थ हैं, उनमें झूठी और कपोलकल्पित बातें भरी हुई हैं। इस प्रकार की निषेधात्मक बातें सीखते–सीखते जब बालक सोलह वर्ष की अवस्था को पहुँचता है, तब वह निषेधों की खान बन जाता है – उसमें न जान रहती है और न रीढ़। अतः इसका जैसा परिणाम होना चाहिए था, वैसा ही हुआ है। पिछले पचास वर्षों से दी जानेवाली इस शिक्षा ने तीनों प्रान्तों में एक भी स्वतन्त्र विचारों का मनुष्य पैदा नहीं किया, और जो स्वतन्त्र विचार के लोग हैं, उन्होंने यहाँ शिक्षा नहीं पायी है, विदेशों में पायी है, अथवा अपने भ्रममूलक अन्धविश्वासों का निवारण करने के लिए पुनः अपने पुराने शिक्षालयों में जाकर अध्ययन किया है। शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे

दिमाग में ऐसी बहुतसी बातें इस तरह ठूंस दी जाएँ कि अन्तर्द्वन्द्व होने लगे और "तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर पचा न सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवननिर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्रगठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि 'तुम पाँच ही भावों को पचाकर तदनुसार जीवन और चरित्र गठित कर सके हो, तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने एक पूरे पुस्तकालय को कण्ठस्थ कर रखा है। कहा भी है–'यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।' अर्थात् – 'वह गधा, जिसके – ऊपर चन्दन की लकड़ियों का बोझ लाद दिया गया हो, बोझ ही जान – सकता है, चन्दन के मूल्य को वह नहीं समझ सकता।' यदि तरह–तरह की जानकारियों का संग्रह करना ही शिक्षा है, तब तो ये पुस्तकालय संसार में सर्वश्रेष्ठ मुनि है और विश्वकोश ही ऋषि। इसलिए हमारा आदर्श यह होना चाहिए कि अपने देश की समग्र आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा के प्रचार का भार अपने हाथों में ले लें और जहाँ तक सम्भव हो, राष्ट्रीय रीति से राष्ट्रीय सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षा का विस्तार करें। हाँ, यह ठीक है कि यह एक बहुत बड़ी योजना है। मैं नहीं कह सकता कि यह कभी कार्यरूप में परिणत होगी या नहीं, पर इसका विचार छोड़कर हमें यह काम फौरन शुरू कर देना चाहिए। लेकिन कैसे? किस तरह से काम में हाथ लगाया जाए? उदाहरण के लिए मद्रास का ही काम ले लो। सब से पहले हमें एक मन्दिर की आवश्यकता है, क्योंकि सभी कार्यों में प्रथम स्थान हिन्दू लोग धर्म को ही देते हैं। तुम कहोगे कि ऐसा होने से हिन्दुओं के विभिन्न मतावलम्बियों में परस्पर झगड़े होने लगेंगे। पर मैं तुमको किसी मतविशेष के अनुसार वह मन्दिर बनाने को नहीं कहता। वह इन साम्प्रदायिक भेदभावों के परे होगा। उसका एकमात्र प्रतीक होगा ॐ जो कि हमारे किसी भी धर्मसम्प्रदाय के लिए महानतम प्रतीक है। यदि हिन्दुओं में कोई ऐसा सम्प्रदाय हो, जो इस ओंकार को न माने, तो समझ लो कि वह हिन्दू कहलाने योग्य नहीं हैं। वहाँ सब लोग अपने–अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही हिन्दुत्व की व्याख्या कर सकेंगे, पर मन्दिर हम सब के लिए एक ही होना चाहिए। अपने सम्प्रदाय के अनुसार जो देवी–देवताओं की प्रतिमापूजा करना चाहें, अन्यत्र जाकर करें, पर इस मन्दिर में वे औरों से झगड़ा न करें। इस मन्दिर में वे ही धार्मिक तत्त्व समझाये जाएँगे, जो सब सम्प्रदायों में समान हैं। साथ ही हर एक सम्प्रदायवाले को अपने मत की शिक्षा देने का यहाँ पर अधिकार रहेगा, पर एक प्रतिबन्ध रहेगा कि वे अन्य सम्प्रदायों से झगड़ा नहीं करने पाएँगे। तुम्हें जो कहना है कहो; संसार तुम्हारी राय जानना चाहता है, उसे यह सुनने का समय नहीं है कि तुम औरों के विषय में क्या विचार प्रकट कर रहे हो। उन्हें तुम अपने ही पास रखे रहो।

इस मन्दिर के सम्बन्ध में एक दूसरी बात यह है कि इसके साथ ही एक और संस्था हो, जिससे धार्मिक शिक्षक और प्रचारक तैयार किये जाएँ और वे सभी घूम–फिरकर धर्मप्रचार करने को भेजे जाएँ। परन्तु ये केवल धर्म का ही प्रचार न करे वरन् उसके साथ–साथ लौकिक शिक्षा का प्रचार करें। जैसे हम धर्म का प्रचार द्वार–द्वार जाकर करते है, वैसे ही हमें लौकिक शिक्षा का प्रचार करना पड़ेगा। यह काम आसानी से हो सकता है। शिक्षकों तथा धर्मप्रचारको के द्वारा

हमारे कार्य का विस्तार होता जाएगा, और क्रमशः अन्य स्थानों में ऐसे ही मन्दिर प्रतिष्ठित होगें और इस प्रकार समस्त भारत में यह कार्य फैल जाएगा। यही मेरी योजना है। तुमको यह बड़ी भारी मालूम होगी, पर इसकी इस समय बहुत आवश्यकता है। तुम पूछ सकते हो, इस काम के लिए धन कहाँ से आएगा? धन की जरूरत नहीं। धन कुछ नहीं है। पिछले बारह वर्षों से ऐसा जीवन व्यतीत कर रहा हूँ कि मैं यह नहीं जानता कि आज यहाँ खा रहा हूँ तो कल कहाँ खाऊँगा। और न मैंने कभी इसकी परवाह है की। धन या किसी भी वस्तु कि जब मुझे इच्छा होगी, तभी वह प्राप्त हो जाएगी, क्योंकि वे सब मेरे गुलाम हूँ, न कि मैं उनका गुलाम है। जो मेरे गुलाम है, उसे मेरी इच्छा होते ही मेरे पास आना पड़ेगा। अतः उसकी कोई चिन्ता न करो।

अब प्रश्न यह है कि काम करने वाले लोग कहाँ है? मद्रास के नवयुवकों, तुम्हारे ऊपर ही मेरी आशा है। क्या तुम अपनी जाति और राष्ट्र की पुकार सुनोंगे? यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास है तो मैं कहूँगा कि तुममें से प्रत्येक का भविष्य उज्ज्वल है। अपने आप पर अगाध, अटूट विश्वास रखो, वैसा ही विश्वास, जैसा मैं बाल्यावस्था में अपने ऊपर रखता था और जिसे मैं अब कार्यान्वित कर रहा हूँ। तुम सभी अपने आप पर विश्वास रखो। यह विश्वास रखो कि प्रत्येक की आत्मा में अनन्त शक्ति विद्यमान है। तभी तुम सारे भारतवर्ष को पुनरुज्जीवित कर सकोगे। फिर तो हम दुनिया के सभी देशों में खुले आम जाएंगे और आगामी दस वर्षों में हमारे भाव उन सब विभिन्न शक्तियों के एक अंशस्वरूप हो जाएँगे, उनके द्वारा संसार का प्रत्येक राष्ट्र संगठित हो रहा है। हमें भारत में बसने वाली और भारत के बाहर बसने वाली सभी जातियों के अन्दर प्रवेश करना होगा। इसके लिए हमें कर्म करना होगा और इस काम के लिए मुझे युवक चाहिए। वेदों में कहा है, 'युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र, मेधावाले और उत्साहयुक्त मनुष्य ही ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं। तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में ही काम करो, जीर्ण–शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा। काम करो, क्योंकि काम करने का यही समय है। सब से अधिक ताजे, बिना स्पर्श किये हुए और बिना सूंघे फूल ही भगवान् के चरणों पर चढ़ाये जाते हैं और वे उसे ही ग्रहण करते हैं। अपने पैरों आप खड़े हो जाओ, देर न करो, क्योंकि जीवन क्षणस्थायी है। वकील बनकर मुकदमे लड़ने की अभिलाषा रखने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने हैं। अपनी जाति, देश, राष्ट्र और समग्र मानवसमाज के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना इससे बहुत ऊँचा हैं। इस जीवन में क्या है? तुम हिन्दू हो और इसलिए तुम्हारा यह सहज 'विश्वास है कि तुम अनन्तकाल तक रहने वाले हो। कभी–कभी मेरे पास नास्तिकता के विषय पर वार्तालाप करने के लिए कुछ युवक आया करते हैं। पर मेरा विश्वास है कि कोई हिन्दू नास्तिक नहीं हो सकता। सम्भव है कि किसी ने पाश्चात्य ग्रन्थ पढ़े हों और अपने को जड़वादी समझने लग गया हो। पर ऐसा केवल कुछ समय के लिए होता है। यह बात तुम्हारे खून के भीतर नहीं है। जो बात तुम्हारी रग–रग में रमी हुई है, उसे तुम निकाल नहीं सकते और न उसकी जगह और किसी धारणा पर तुम्हारा विश्वास ही हो सकता है। इसीलिए वैसी चेष्टा करना व्यर्थ होगा। मैंने भी बाल्यावस्था में ऐसी चेष्टा की थी, पर

वैसा नहीं हो सकता। जीवन की अवधि अल्प है, पर आत्मा अमर और अनन्त है, और मृत्यु अनिवार्य है। इसलिए आओ, हम अपने आगे एक महान् आदर्श खड़ा करें और उसके लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर दें। यही हमारा निश्चय हो और वे भगवान्, जो हमारे शास्त्रों के अनुसार साधुओं के परित्राण के लिए संसार में बार–बार आविर्भूत होते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण हमको आशीर्वाद दें एवं हमारे उद्देश्य की सिद्धि में सहायक हों।

दान

जब स्वामीजी मद्रास में थे, उस समय एक बार उनके सभापतित्व में 'चेन्नपुरी अन्नदानसमाजम्' नामक एक दातव्य संस्था का वार्षिक समारोह मनाया गया। उस अवसर पर उन्होंने एक संक्षिप्त भाषण दिया, जिसमें उन्होंने उसी समारोह के एक वक्ता महोदय के विचारों पर कुछ प्रकाश डाला। इन वक्ता महोदय ने कहा था कि यह अनुचित है कि अन्य सब जातियों की अपेक्षा केवल ब्राह्मण को ही विशेष दान दिया जाता है। इसी प्रसंग में स्वामीजी ने कहा कि इस बात के दो पहलू हैं – एक अच्छा, दूसरा बुरा। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो प्रतीत होगा कि राष्ट्र की समस्त शिक्षा एवं सभ्यता अधिकतर ब्राह्मणों में ही पायी जाती है। साथ ही ब्राह्मण ही समाज के विचारशील तथा मननशील व्यक्ति रहे हैं। यदि थोड़ी देर के लिए मान लो कि तुम उनके वे साधन छीन लो, जिनके सहारे वे चिन्तन–मनन करते हैं, तो परिणाम यह होगा कि सारे राष्ट्र को धक्का लगेगा।

इसके बाद स्वामीजी ने यह बतलाया कि यदि हम भारत के दान की शैली की जो बिना विचार अथवा भेदभाव के होती है, तुलना दूसरे राष्ट्रों की उस शैली से करें, जिसका एक प्रकार से कानूनी रूप होता है, तो हमें यह प्रतीत होगा कि हमारे यहाँ एक भिखमंगा भी बस उतने से संतुष्ट हो जाता है, जो उसे तुरन्त दे दिया जाए, और उतने में ही वह अपनी सब्र की जिन्दगी बसर करता है। परन्तु इसके विपरीत पाश्चात्य देशों में पहली बात तो यह है कि कानून भिखमंगों को सेवाश्रम में जाने के लिए बाध्य करता हैं परन्तु मनुष्य भोजन की अपेक्षा स्वतन्त्रता अधिक पसन्द करता है, इसलिए वह सेवाश्रम में न जाकर समाज का दुश्मन डाकू बन जाता है। और फिर इसी कारण हमें इस बात की जरूरत पड़ती है कि हम अदालत, पुलिस, जेल तथा अन्य साधनों का निर्माण करें। यह निश्चित है कि समाज के शरीर में जब तक 'सभ्यता' नामक बीमारी बनी रहेगी, तब तक उसके साथ–साथ गरीबी भी रहेगी और इसलिए गरीबों को सहायता देने की आवश्यकता भी रहेगी। यही कारण है कि, भारतवासियों की बिना भेदभाव की दानशैली और पाश्चात्य देशों की भेदमूलक दानशैली में उनको चुनना पड़ेगा। भारतीय दानशैली में जहाँ तक संन्यासियों की बात है, उनका तो यह हाल है कि भले ही उनमें से कोई सच्चे संन्यासी न हों, परन्तु फिर भी उन्हें भिक्षाटन करने के लिए अपने शास्त्रों के कम से कम कुछ अंशों को तो पढ़ ही लेना पड़ता है। और पाश्चात्य देशों की दान देने की प्रथा के कारण निर्धन के लिए कड़े कानून बन गये, वहाँ फल यह हुआ कि फकीरों को डाकू तथा अत्याचारी बन जाना पड़ा। ■

आजादी के अमृत महोत्सव पर

भारत विभाजन के गुनहगार

राम मनोहर लोहिया*

मौलाना आजाद कृत 'इंडिया विन्स फ्रीडम' के परीक्षण की जो बात मेरे मन में उठी, उसे जब मैने लिखना शुरू किया तो वह देश के विभाजन का एक नया वृतांत बन गया। यह वृतांत हो सकता है, बाह्य रूप में, संगतवार व कालक्रमवार न हो, जैसा कि दूसरे लोग इसे चाहते, लेकिन कदाचित यह अधिक सजीव व वस्तुनिष्ठ बन पड़ा है। छपाई के दौरान इसके प्रूफ देखते समय इसमें स्पष्ट हुए दो लक्ष्यों के प्रति मै सतर्क हुआ। एक गलतियों और झूठे तथ्यों को जड़ से धोना और कुछ विशेष घटनाओं और सत्य के कुछ पहलुओ ंको उजागर करना और दूसरा, उन मूल कारणों को रेखांकित करना जिनके कारण विभाजन हुआ। इन कारणों में, मैंने आठ मुख्य–कारण गिनाए हैं। एक, ब्रितानी कपट, दो, कांग्रेस नेतृत्व का उतारवय, तीन, हिन्दू–मुस्लिम दंगों की प्रत्यक्ष परिस्थिति, चार, जनता में दृढ़ता और सामर्थ्य का अभाव, पाँच, गाँधी की अहिंसा, छः, मुस्लिम लीग की फूटनीति, सात, आए हुए अवसरों से लाभ उठा सकने की असमर्थता और आठ, हिन्दू अहंकार।

श्री राजगोपालाचारी अथवा कम्युनिस्टों की विभाजन समर्थक नीति और विभाजन के विरोध में कट्टर हिन्दूवादी या दक्षिणपंथी राष्ट्रवादी नीति को विशेष महत्त्व देने की आवश्यकता नहीं। ये सभी मौलिक महत्त्व के नहीं थे। ये सभी गम्भीर शक्तियों के निरर्थक और महत्त्वहीन अभिव्यक्ति के प्रतीक थे। उदाहरणार्थ, विभाजन के लिए कट्टर हिन्दूवाद का विरोध असल में अर्थहीन था, क्योंकि देश को विभाजित करने वाली प्रमुख शक्तियों में निश्चित रूप से कट्टर हिन्दूवाद भी एक शक्ति थी। यह उसी तरह थी जैसे हत्यारा, हत्या करने के बाद अपने गुनाह मानने से भागे।

इस संबंध में कोई भूल या गलती न हो। अखण्ड भारत के लिए सबसे अधिक व उच्च स्वर में नारा लगाने वाले, वर्तमान जनसंघ और उसके पूर्व पक्षपाती जो हिन्दूवाद की भावना के अहिन्दू तत्त्व थे, उन्होंने ब्रिटिश और मुस्लिम लीग की देश के विभाजन में सहायता की, यदि उनकी नियत को नहीं, बल्कि उनके कामों के नतीजों को देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि एक राष्ट्र के अन्तर्गत मुसलमानों को हिन्दुओं के नजदीक लाने के संबंध में उन्होंने कुछ नहीं किया। उन्हें एक दूसरे से पृथक् रखने के लिए लगभग सब कुछ किया। ऐसी पृथक्ता ही विभाजन का मूल–कारण हैं। पृथक्ता की नीति को अंगीकार करना, साथ ही अखण्ड भारत की भी कल्पना करना अपने आप में घोर आत्मवंचना है, यदि हम यह भी मान लें कि ऐसा करने

*दिसम्बर, 1960 में प्रकाशित मूल अंग्रेजी पुस्तक 'गिल्टी मेन ऑफ इंडियाज पार्टीशन' के प्रथम संस्करण की भूमिका से।

वाले ईमानदार लोग हैं। उनके कृत्यों को युद्ध के संदर्भ में अर्थ और अभिप्राय माना जाएगा जब कि वे उन्हें दबाने की शक्ति रखते हैं जिन्हें पृथक् करते हैं। ऐसा युद्ध असंभव है, कम से कम हमारी शताब्दी के लिए और यदि कभी यह संभव भी हुआ तो इसका कारण घोषणा न होगी। युद्ध के बिना, अखण्ड भारत और हिन्दू–मुस्लिम पृथक्ता की दो कल्पनाओं का एकीकरण, विभाजन की नीति को समर्थन और पाकिस्तान को संकटकालीन सहायता देने जैसा ही है। भारत के मुसलमानों के विरोधी पाकिस्तान के मित्र हैं। जनसंघी और हिन्दू नीति के सभी अखंड भारतवादी वस्तुतः पाकिस्तान के सहायक हैं। मैं एक असली अखण्ड भारतीय हूँ। मुझे विभाजन मान्य नहीं है। विभाजन की सीमारेखा के दोनों ओर ऐसे लाखों लोग होंगे, लेकिन उन्हें केवल हिन्दू या केवल मुसलमान कहने से अपने को मुक्त करना होगा, तभी अखंड भारत की आकांक्षा के प्रति वे सच्चे रह सकेंगे।

दक्षिण राष्ट्रवादिता की दो धाराएँ हैं, एक धारा ने विभाजन के विचार को समर्थन दिया, जबकि दूसरी ने इसका विरोध किया। जब ये घटनाएँ घटीं, तब उनकी नाराज व खुश करने की शक्ति कम न थी, लेकिन वे घटनाएँ फलहीन थीं। महत्त्वहीन। दक्षिण राष्ट्रवदिता केवल शब्दिक या शब्दहीन विरोध कर सकती थी, इसमें सक्रिय विरोध करने की ताकत न थी। अतः इसका विरोध समर्पण अथवा राष्ट्रीयता की मूलधारा से दूर होने में मिट गया। इसी तरह, दक्षिण राष्ट्रवादी विचार, जिसने विभाजन में मदद की, उसने थोड़ी भिन्न भूमिका भी अदा की, इस सत्य के बावजूद कि इसके भाषणों से असली राष्ट्रावादी बुरी तरह ऊब चुके थे। इस भाषणबाजी मे प्रभाव की शक्ति न थी। दोष उसमें किसी का न था, भारतीय जनता व भारतीय राष्ट्रवाद की पलायनवृत्ति, पंगुत्व, भग्नता और आत्मशक्ति की कमी का भी दोष था। दक्षिण राष्ट्रवादिता ने विभाजन का समर्थन और विरोध दोनों किया, यह उनके मूल–वृक्ष की निष्पर्ण शाखाएँ थीं। मुझे कभी–कभी आश्चर्य होता है कि क्या देशद्रोही लोग भी कभी इतिहास बनाने में कोई मौलिक भूमिका अदा करते हैं। ऐसे लोग तिरस्करणीय होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं, लेकिन वे क्या महत्त्वपूर्ण लोग हैं? मुझमें शक है। ऐसे देशद्रोहियों के काम अर्थहीन होंगे, यदि उन्हें पूरे समाज के गुप्त विश्वासघात का सहयोग न मिले।

इसी तरह कम्युनिस्ट–विश्वासघात ने कोई मौलिक भूमिका अदा नहीं की। इससे कोई नतीजा नहीं निकला, नतीजे का कारण अन्यत्र है। विभाजन के कम्युनिट समर्थन ने पाकिस्तान को नहीं बनाया। अधिक से अधिक, इसकी भूमिका अण्डा सेने जैसी रही। अब तो कोई यह याद भी नहीं करता सिवा कम्युनिज्म विरोधी बासी प्रचार–तर्क के रूप में। मैं तो कम्युनिस्ट–विश्वासघात के इस कपटी पहलू को क्षणिक मानता हूँ जिसका लोगों पर कोई प्रभाव नहीं हैं, लेकिन दूसरे देशद्रोही ऐसे भाग्यशाली नहीं हैं। अच्छा तो यह होगा कि कम्युनिस्टों की अन्दरूनी जाँच कर के पता लगाया जाए कि जब उन्होंने विभाजन का समर्थन किया तब उसके मन में क्या था?

सम्भवतः भारतीय कम्युनिस्टों ने विभाजन का समर्थन इस आशा से किया था कि नवजात राज्य पाकिस्तान पर उनका प्रभाव रहेगा, भारतीय मुसलमानों में असर रहेगा और हिन्दू

मन की दुर्बलता के कारण उनसे मन फटने का कोई भारी खतरा भी न रहेगा, लेकिन उनकी योजना गलत सिद्ध हुई, सिवा थोड़े क्षेत्र को छोड़कर, जहाँ कि उन्होंने भारतीय मुसलमानों में कुछ छिटपुट प्रभाव–स्थल बनाए और हिन्दुओं में अपने लिए क्रोध न उभरने दिया। इस तरह उन्होंने अपने साथ अधिक धूर्तता नहीं की और साथ ही देश के लिए भी कोई लाभदायक काम नहीं किया।

अपने स्वभाव से कम्युनिस्टी, दाँवपेंच का स्वरूप ऐसा है कि यह तभी जनता में शक्ति ला सकता है जब उनकी सफलता हो, अन्यतः लाजिमी तौर पर यदि सफलता न मिले तो जनता को कमजोर करने में ही वे सहायक होते हैं। राष्ट्रीयता में आत्मविश्वास रूस के लिए निरर्थक है, इसका प्रचार–महत्त्व तो जारकालीन रूस में ही समाप्त हो गया था। साम्यवाद तो पृथक्वाद है, जब यह शक्तिहीन रहता है, अपने शत्रु को कमजोर करने के लिए, सशक्त राष्ट्रीयता का सहारा लेता है। जब यह राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व करता है तब वह पृथक्वादी नहीं रहता। साम्यवाद कोरिया और वियतनाम में एकतावादी है और जर्मनी में पृथक्वादी। अधिकतर लोग प्रत्यक्ष उदाहरण देखते हैं, अनुमान पर राय नहीं बनाते। जब साम्यवाद के एकतावादी शक्तिदायक उदाहरण दिखाने की आवश्यकता होती है तब सोवियत रूस और वियतनाम के उदाहरण रखे जाते हैं और जब स्वतन्त्रता की भावना का उदाहरण रखना होता है तब भारत और जर्मनी का उदाहरण रखा जाता है। इस बात का पेंच कहीं और है। साम्यवाद के लिए कामगर राज्य के सिद्धान्त के अलावा कोई अन्य सिद्धान्त माने नहीं रखता, ऐसा सिद्धान्त लाजिमी तौर पर किसी भी राष्ट्र को कमजोर बनाता है, कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर। इसी सिद्धान्त ने भारतीय राष्ट्र को सदैव कमजोर बनाया है। लेकिन आशामय भविष्य की आशा में इनके अनुचर इस तथ्य के प्रति अंधे बने रहे हैं, साथ ही भारतीय जनता भी अंधी बनी रही है, जिसका कारण साम्यवादी कपट नहीं, बल्कि राष्ट्रवादी या लोकसत्तावादी शक्तियों की मूलभूत कमजोरी रही है।

मैं नहीं समझता कि जो कारण मैंने गिनाए हैं इनके अलावा भी देश–विभाजन के अन्य कोई मौलिक कारण रहे हैं। हिन्दू–मुस्लिम प्रश्न को लेकर देश की जिस परिस्थिति का निर्माण हुआ है उससे दो महत्त्व के तथ्य सामने आए हैं। हिन्दू–मुस्लिम रिश्तों के पिछले आठ सौ वर्षों में, हिन्दू और मुसलमान दोनों लगातार पृथक् भाव और समीपता के लुका–छिपी के खेल के शिकार रहे हैं जिससे एक राष्ट्र के प्रति उनकी भावनात्मक एकाग्रता खण्डित रही है, साथ ही भारतीय जन का यह स्वभाव भी परिस्थिति के साथ घुलने–मिलने और सहनशीलता तथा समर्पण की कला को इस हद तक सीख गया है कि दुनिया में कहीं भी परतंत्रता को विश्व–भाईचारे या राजनीतिक कपट का इस प्रकार पर्याय नहीं माना गया। मूलरूप से इन्हीं दो तथ्यों द्वारा हिन्दू–मुस्लिम समस्या को प्रेरित किया गया है। इनके बिना, ब्रिटिश कुटिलनीति अथवा काँग्रेस नेतृत्व के उतारवय का कारण इतिहास की दृष्टि से महत्त्वहीन होता और उसका जो कडुवा फल मिला वह कदापि न मिलता।

स्वतंत्र भारत में भी हिन्दू–मुसलमानों में पृथक्–भावना बनी रही है। मुझे शक है कि विभाजन–पूर्व के मुकाबले आज यह पृथक–भाव अधिक है। पृथक–भावना ने ही विभाजन को जन्म दिया और इसलिए अपने आप यह भावना पूरी तरह नहीं मिट सकी। परिणाम में ही कारण भी घुलमिल गया। आजादी के इन वर्षों में मुसलमानों को हिन्दुओं के निकट लाने का न कोई प्रयत्न किया गया न उनकी आत्मा से पृथक्ता का बीज समाप्त करने का ही प्रयत्न किया गया। कांग्रेसी सरकार के अक्षम्य अपराधों में विशेष उल्लेखनीय अपराध यही है–पृथक्–भावना वाली आत्माओं को निकट लाने में असफलता–बल्कि इस काम के प्रति बेमन से किया गया असफल प्रयास।

इस अपराध के पीछे भावना रही है–वोट प्राप्ति की इच्छा और बहुरंगी समाज (कास्मोपॉलिटन) का तत्त्वज्ञान। देश के लगभग सभी राजनीतिक तत्त्व, विशेषकर वे जो धर्म–निरपेक्षता का दम्भ भरते हैं, इसके शिकार रहे। वोट–प्राप्ति का यह धंधा दीर्घकाल तक चल सकता है। जो भी इस दिशा में सफलता के लालची है, वे पतन की प्रतियोगिता से बच नहीं सकते। एक समय के बाद सुबुद्धि आ सकती है, लेकिन अभी न तो वह समय आया है न वह सुमार्ग ही स्पष्ट है। वोट–प्राप्ति के लिए हिन्दू व मुसलमान का अलग–अलग आवाहन किया जाता है। अभी तक धर्मनिरपेक्ष पार्टियों ने भी हिन्दू व मुसलमान का ऐसा आवाहन करने की हिम्मत नहीं दिखाई जो उन्हें कुविचारों व बुरी आदतों से मुक्त कर सके। ऐसे स्वार्थी लालच के लिए बहुरंगी समाज–ज्ञान का सहारा बनता है। ऐसे लोगों ने हर समस्या के अलग समाधान व प्रयत्न की कभी आवश्यकता नहीं समझी। उन्होंने समझ रखा है कि उद्योगीकरण और आधुनिक अर्थ नीति, हिन्दू मुस्लिम पृथकभावना को समाप्त कर देगी, यह मूर्खतापूर्ण विश्वास उद्योगीकरण और वोट–प्राप्ति की लालच का मिलाजुला परिणाम है जिसने विभाजन व आजादी के बारह वर्षों बाद भी केरल में यह स्थिति बनाई है कि तथाकथित राष्ट्रवादी और लोकतांत्रिक पार्टियाँ भी मुस्लिम लीग से गठबंधन कर बैठी और समस्त देश में मुस्लिम लीगी तथा पृथक्वादी रोग से मुक्त होकर फिर रोगी होने की दशा बन गई है। देशविभाजन के बारह वर्ष बाद भी कॉंग्रेसवाद और प्रजा समाजवाद ने फिर एक दूसरे पृथक्–वादी दुष्कर्म को अंगीकार करने की विवशता का अनुभव किया।

जमातों और सामाजिक गुटों के अन्तर्गत राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक कारणों का मूल स्रोत कहीं और से आता है, धार्मिक प्रतीकों व कल्पनाओं से। निश्चित रूप से ऐसे सामाजिक सुधार सामूहिक भोजों या अन्तर्जातीय विवाहों द्वारा होने चाहिए और आर्थिक सुधार सर्व–रोजगार या राष्ट्रीयकरण या समानता द्वारा तथा राजनीतिक सुधार पिछड़ी जातियों व जमातों के निश्चित प्रतिनिधित्व द्वारा। इन सुधारों के बिना, पृथक्वादी भावना की समस्या का अंत न होगा, बल्कि यह समस्या किसी न किसी रूप में बनी रहेगी। धर्म तथा इतिहास के तथ्यों पर गंभीरतापूर्वक गौर करना होगा। यही वे तथ्य हैं जो आदमी के दिमाग व मन को सट्टा बनाते हैं।

धर्म के पैगम्बरों और ईश्वरों में पूर्ण समानता तब तक नहीं लाई जा सकती जब तक नास्तिकवाद और धार्मिक आराधना को न तोड़ा जाए। जो भी प्राप्त होगा वह समानता के निकट होगा। विभिन्न धार्मिक ज्ञान के लिए पर्याप्त शिक्षा और मानसिक स्तर को बढ़ाने के बाद ही राम और मोहम्मद को एक जैसी ऊँचाई पर रखना संभव होगा। इसके लिए एक दूसरे के विश्वासों के प्रति आदरभाव और समझदारी पैदा करना होगा। इस जागरण के लिए. ऐतिहासिक और धार्मिक ज्ञान आवश्यक तथा सर्वश्रेष्ठ साधन है।

जो शक्ति पृथक्ता में महत्त्वपूर्ण है वह है इतिहास के प्रति खासदृष्टि। गुट और जमात का निर्माण मूलरूप से इस कारण होता है कि वे घटनाओं के प्रति क्या दृष्टिकोण रखते हैं भारत के हिन्दू व मुसलमान एक ही इतिहास के प्रति भिन्नभिन्न दृष्टिकोण रखते हैं। ऐसे हिन्दू विरले ही हैं जो एक मुसलमान शासक या इतिहास–पुरुष को अपने पुरखे के रूप में स्वीकार करें। उसी तरह ऐसा मुसलमान भी विरला होगा जो किसी हिन्दू इतिहास–पुरुष को अपना पुरखा माने, इतिहास के ऐसे शोधकर्ताओं की भी कमी नहीं है जिन्होंने सभी मुस्लिम शासकों और आक्रमणकारियों की सूची एक साथ इतिहास के एक पन्ने पर लिख दी है। शायद आज या जब भारत का बँटवारा हुआ था तब, हिन्दू–मुस्लिम जैसी कोई समस्या न होती यदि हिन्दू और मुसलमान एक साथ इतिहास की एक जैसी व्याख्या करने में समर्थ होते और शांति से रहना सीखे होते। ब्रिटिश राज्य ने ऐसा कुछ नहीं किया जो पहले से न रहा हो। एक ही इतिहास के प्रति हिन्दू और मुसलमान दृष्टिकोण भिन्न रहे हैं, अतीत में भी, आज भी और उनके स्वरूप तथा चरित्र में पृथक्ता का यही मुख्य कारण रहा है।

भारत के मुसलमान अपनी उत्पत्ति ग़जनवी और गोरी जैसे लुटेरों से समझते हैं। ऐसी गलत समझ के भीतर एक झूठी आत्मतुष्टि का तत्त्व होता है, वहीं इतिहास के तत्त्व–ज्ञान द्वारा और भी पुष्टि पा जाता है जब हर आक्रमण को प्रगति का बढ़ा हुआ कदम समझा जाता है। निश्चित रूप से समाज में ठहराव या घोर – पतन रहा होगा जब कोई आक्रमण हुआ होगा। उसी तरह निश्चय ही हर नई

शक्ति में चाहे वह किसी आक्रमणकारी द्वारा लाई गई हो, बुराई के साथ मिली कोई अच्छाई भी रही होगी। किसी भी आक्रमण के नतीजे की जाँच, कमजोरी पर शक्ति की विजय के साथ अच्छाई व बुराई के बीच पैदा हुई हलचल और नयेपन से की जानी चाहिए। कोई भी राष्ट्र जो इस दृष्टि के भिन्न किसी अन्य दृष्टि से इतिहास का अध्ययन करता है वह सतत् आक्रमणों का शिकार होता है और इस रूप में भारत विश्व में सबसे ऊपर है।

मुसलमानों ने, चूँकि गजनवी और गोरी को अपना पूर्वज माना है वे स्वयं अपनी आजादी और अपने राज्य की रक्षा करने में असमर्थ रहे हैं। भारत का मध्यकालीन इतिहास जितना हिन्दू और मुसलमान के युद्ध का इतिहास रहा है, उतना ही वह मुसलमान और मुसलमान के युद्ध का भी है। आक्रमणकारी मुसलमान, देशी मुसलमान से लड़ा और उन पर विजयी हुआ। पाँच बार देशी मुसलमान अपनी आजादी की रक्षा करने में असमर्थ रहे। वे लोग नादिरशाह और तैमूर

जैसों द्वारा कत्लेआम के शिकार हुए हैं। मुगल तैमूर ने देशी पठानों को कत्ल किया और ईरानी नादिरशाह ने देशी मुगलों को कत्ल किया। ऐसी कौम जो आक्रमणकारियों और कत्ल करने वालों को अपना पूर्वज माने वह स्वतंत्रता की अधिकारी नहीं और उसका आत्म–गौरव झूठा है, क्योंकि उनकी धारावाहिक एकरूपता नहीं रही, न उन्होंने उसे बना कर रखा ही। आक्रमणकारी जो समय के फैलाव के साथ देशवासी बन जाते हैं, वे राष्ट्र का एक अंग बन जाते हैं और इस सत्य को मान्यता मिलनी चाहिए। एक की माँ के प्रति किए गए बलात्कार को न मानना एक चीज है और उसके परिणाम को स्वीकार करने से इन्कार करना दूसरी चीज, मुसलमानों ने बलात्कार और उसके नतीजे, दोनों को मानने की भूल की है और हिन्दुओं ने किसी को भी न मानने की भूल की है। हिन्दू अपनी माँ की रक्षा करने में असमर्थ रहा और उसने अपनी दुर्बलता पर आए अपने क्रोध को अपने सौतेले भाई पर लादने का आसान रास्ता खोज निकाला। फिर कालान्तर में वही सौतेला भाई देशवासी बन जाता है और भविष्य में इसी रोग का शिकार बनता है। मानसिक रूप से वह इतना अधम हो जाता है कि अपनी दुर्बलता को पराक्रम समझने की गलती कर बैठता है।

इतिहास के अध्ययन का एक और ढंग है, जो वस्तुस्थिति को अधिक स्पष्ट करता है। वह रजिया, शेरशाह, जायसी और रहीम के साथ विक्रमादित्य, अशोक, हेमू और प्रताप को मुसलमान व हिन्दू का समान रूप से पूर्वज बताता है। इसी तरह हिन्दू और मुसलमान समान रूप से गजनवी, गोरी और बाबर को लुटेरे और अत्याचारी आक्रमणकारी के रूप में पहचानेंगे और पृथ्वीराज, साँगा और भाऊ को भारत की भूल व दुर्बलता के प्रतीक रूप में देखेंगे। मैंने जानबूझ कर ऐसे लोगों के नाम चुने हैं जो व्यक्तिगत रूप से बहादुर थे पर सामूहिक रूप से निर्बुद्धि, जिनके कारण देश में हार और समर्पण की लम्बी परम्परा कायम हुई। व्यक्तिगत रूप में कायर लोग देश की आजादी के लिए इतने खतरनाक नहीं होते जितने ऐसे बहादुर और मूर्ख योद्धाओं जिन्हें सामाजिक वस्तुस्थिति और शक्ति का ज्ञान नहीं होता। ऐसे बहादुर और मूर्ख योद्धाओं में मैं शाह आलम जैसे लोगों के नाम लूंगा और लुटेरों तथा अत्याचारियों में अमीरचंद जैसों को। इतिहास के वास्तविक अध्ययन से साँगा एक बहुत छोटे और मंदबुद्धि दरबारियों के नायक के रूप में दिखेगा जिनके कमजोर हाथों में देश की स्वतंत्रता की रक्षा का भार था और प्रताप ने बुझते अंगारों से आजादी की मशाल जलाने का प्रयत्न किया था। मानसिंह और अकबर ऐसे क्षेत्र के थे जहाँ आजादी और गुलामी का मिलन होता है, जहाँ एक आक्रामक देशवासी बनने का प्रयत्न करता है और जिसकी धूर्तता को महानता कहा जाता है।

अकबर और जहाँगीर के अलावा लगभग सभी मुगलों के समय पृथक्वाद पनपा जब कि पठान हिन्दुओं के अधिक निकट आए। हिन्दी काव्य क्षेत्र में जायसी और रहीम किसी भी हिन्दू से अधिक चमकदार नक्षत्र थे। वास्तव में रहिमन ऐसा नाम है जो इस्लाम के भारतीयकरण का प्रतीक है। यह रूसी मुसलमानों जैसा नाम है जिनका नाम 'ओव' या 'इन' जोड़ कर परम्परागत रूप में बदला गया अथवा इन्डोनेशियन मुसलमान जिनका हिन्दू नाम धर्म परिवर्तन के बाद भी

बना ही रहा। मैं नहीं कह सकता कि अपने व्यक्तिगत परिवेश में जोधाबाई कहाँ तक राष्ट्रीय समीपता की प्रतीक बन सकी। मुझे 1946 के लगभग हुई एक कवयित्री ताजू का नाम सुनाई पड़ा है जो जन्म से मुसलमान और पेशे से रंगरेज थी, जिसकी कृष्णभक्ति की कविताएँ मीरा के भक्ति–गीतों के जोड़ की थीं। इससे लगता है कि यह जैसे इतिहास का नियम हो कि समीपता के काम छोटी जाति व अर्द्धशिक्षित लोगों ने ही किये और पृथक्ता का काम शासकों तथा अधिक शिक्षित उच्च जाति के लोगों ने।

अकसर मैंने हिन्दू चोटी और मुस्लिम दाढी हटाने तथा धार्मिक प्रतीक वाले कपड़ों, नाम और रहन–सहन से दूर हटने की बात कही है, क्योंकि इसे मैं समीपता लाने का प्रथम प्रयास मानता रहा है। प्रथम प्रयास के रूप में भी यह काम लगभग असंभव है, जब तक मानसिक बदलाव का भी प्रयत्न न किया जाए। किसी व्यक्ति का बाहरी स्वरूप उसके आन्तरिक चरित्र की प्रतिछवि है। विचार, आदत और आत्मगौरव के आधार का प्रतिबिंब उसका बाह्य रूप ही है। यदि इतिहास को अधिक ईमानदारी और समझदारी से पढ़ा गया होता या धार्मिक पैगम्बरों को अच्छी तरह समझा गया होता तो इसके चमत्कारी परिणाम होते और हिन्दू और मुसलमान अपने बाह्य रूपों में इतने एक होते कि अलग–अलग पहचाने तक न जाते, साथ ही उनके दिमाग भी बहुत मिले होते।

दिमाग की बनावट से ही शांति और एकता तथा इतिहास और धर्म के प्रति सही समझदारी, साथ ही झगड़े भी जन्म लेते हैं। ऐसी शांति तथा एकता की दिमागी बनावट में मस्जिद के सामने बाजे और गोहत्या जैसे प्रश्न अपने आप सुलझ जाते।

एक बार बंटवारे के ठीक बाद दिल्ली के गोल बाजार में अपने भाषण में मैंने कहा था, जिसे मि. जिन्ना ने कई बार क्रोध में उद्धृत किया था। मेरी भविष्यवाणी थी कि जल्दी ही भारत व पाकिस्तान मिलाकर हिन्दुस्तान बनेगा। फिर मैंने कभी ऐसी नासमझ भविष्यवाणी नहीं की। मेरी इस इच्छा को बुद्धि ने दबा दिया। उस समय कोई भी गाँधीजी की मौत की कल्पना नहीं कर सकता था और मेरी पूरी योजना उनके बराबर बने रहने पर आश्रित थी। मैंने आशा की थी कि राष्ट्रीय शासन में भारत तरक्की करेगा, लेकिन मेरी आशा आजादी के बाद कुछ महीने भी टिकी न रह सकी और गाँधीजी की मौत के साथ समाप्त हो गई। कुछ महीने भी मेरी नासमझी इस आशा से कैसे जुड़ी रही यह मैं नहीं समझ पाता, सिवा इसके कि गाँधीजी की सतत् उपस्थिति ही उसका एक मुख्य आधार थी। मैं भी लाखों अन्य लोगों की तरह नासमझी से उस व्यक्ति से चमत्कार की आशा करता था। सत्य के अवलंबन की खोज और कठिन श्रम के अलावा चमत्कार और कहाँ है? एक और गलत आशा जो मुझमें पल रही थी वह यह थी कि भारत के हिन्दू व मुसलमानों में समीपता बढ़ेगी जो संभवतः पाकिस्तान के दिमाग पर असर करेगी, एकता के पक्ष में।

मैंने अवश्य ही समय सीमा की नासमझी की थी, लेकिन क्या ऐसा ही मेरी भविष्यवाणी की सद् इच्छा व योग्यता के बारे में भी कहा जाएगा! भारत और पाकिस्तान के बीच की सीमा

रेखा बनाने वाले कुछ प्राकृतिक नदी–नाले हैं, न कि कोई समुद्र जो दो देशों को अलग करे। कोशिशें हो रही हैं कि एक भाषा को दो में बाँटा जाए, कि पाकिस्तान में पूरी तरह अरबी व फारसी हो जाए और भारत में संस्कृत। आशा की जानी चाहिए कि ऐसे प्रयत्न सफल न होंगे। नासमझदारी और प्राणहीनता ऐसे प्रयत्नों में व्यापेगी और एक नकली गढ़ी हुई भाषा जो जबर्दस्ती दी जाएगी वह जल्दी ही ठुकरा भी दी जाएगी। निश्चय ही मैं समझता हूँ, आशा करता हूँ दुनिया लम्बे अरसे तक, अनिश्चित काल तक दुराचारी नहीं बनी रहेगी। अटलांटिक–सोवियत वैमनस्य कम से कम इस बिन्दु पर तो समाप्त होगा ही कि भारत व पाकिस्तान को एक दूसरे के विरुद्ध उकसाया न जाए। भारत के भीतर हिन्दू व मुसलमान के बीच शारीरिक व सांस्कृतिक एकता होगी और इसके सद्परिणामस्वरूप अथवा साथ ही साथ पाकिस्तान और भारत मिलकर हिन्दुस्तान बनेगा, यही कामना है और प्रार्थना है और संभावना भी।

■

आजादी के अमृत महोत्सव पर

हिन्दुआ - सूर्य महाराणा प्रताप सिंह

कुंवर (डॉ.) नरेन्द्र प्रताप सिंह*

भारतीय इतिहास के विगत कुछ सहस्र वर्षो के कालखण्ड में स्वदेश,स्वजाति और स्वधर्म के प्रति स्वाभिमान, अगाध प्रेम, अटूट–निष्ठा, अदम्य साहस, अतुलनीय पराक्रम और अविस्मरणीय तथा अकल्पनीय उत्सर्ग–भावना के लिए यदि किसी एक व्यक्ति का नाम लेना हो तो निश्चय ही वह यशस्वी नाम प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप का होगा। वे राजपूती आन,बान और शान के ही नहीं हमारे जातीय गौरव और पराधीनता को कभी स्वीकार न करने वाली अपराजेय भारतीय आत्मा के, चिरस्वतंन्त्रता के प्रतीक है। मातृभूमि के लिए त्याग और बलिदान की उनकी गौरवमयी गाथा आज भी हमारे लिए उतनी ही गौरवशालिनी, उतनी ही लोम–हर्षक,उतनी ही जीवन्त और उतनी ही स्पृहरणीय तथा प्रेरणादायिनी है जिनती अतीत में थी जब लोग यह कामना करते थे कि–

'माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप'

वीर– शिरोमणि महाराणा प्रताप का जन्म यशस्वी सूर्यवंशी क्षत्रियों की महामनस्वी गुहिलौत गोत्री सीसोदिया शाखा में मेवाड़ की तत्कालीन राजधानी चित्तौड़ के दुर्ग से सं0 1567 वि0 ज्येष्ठ–शुक्ल तृतीया, रविवार, तद्नुसार 9मई 1540 ई. को सूर्योदय से 47 घड़ी 13 पल गये हुआ था। वे महाराणा उदय सिंह के 25 पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ थे। उनके बचपन के विषय में यद्यपि विशेष कुछ ज्ञात नहीं है तथापि किंवदन्तियों कुछ ख्यातों और पश्चात्कालीन जीवन से यह अनुमान अवश्य लगता है कि उनमें भावी उदात्त जीवन के अनेक शुभ लक्षण बचपन से ही स्पष्ट होने लगे थे जिसके कारण वे अनायास सबके स्नेह–समादर के भा252जन थे। समय बीतने के साथ उन्होंने क्रमशः युवावस्था में पदार्पण किया और प्रशस्त प्रोदभसित ललाट, बृषभस्कन्ध, सिंहोरस्क, प्रचण्डदोर्दण्ड, कर्णान्त–विश्रान्त विलोचन–श्री और ऊपर उठी हुई आँड़ जैसी मुछों वाला यह युवक शीघ्र ही अपनी साहसिकता, धीरता, वीरता और गम्भीरता से राजपरिवार और सामन्तों में ही नहीं अपनी प्रजा में भी सर्वाधिक लोकप्रिय हो गया। लेकिन राजलक्ष्मी ने राम की तरह फिर एक सूर्यवंशी राजकुमार से छल किया। 28 फरवरी, 1572 ई. को गोदुंगा में महाराणा उदय सिंह का स्वर्गवास हुआ। भटियानी महारानी के प्रभाव में उन्होंने अन्त समय में नवें पुत्र जगमाल को अपना उत्तराधिकारी बनाया। सर्वसमर्थ होने पर भी, सामन्तों

पूर्व प्राचार्य, दिग्विजयनाथ पी.जी. कॉलेज, सिविल लाइन्स, गोरखपुर

तथा प्रजाजनों में भी लोकप्रियता और अनुकूलता के बावजूद पितृभक्त प्रताप ने छोटे भाई का राजत्व स्वीकार कर पुनः मर्यादापुरूषोत्तम भगवान राम का उदाहरण प्रस्तुत किया। किन्तु अयोग्य उत्तराधिकारी भरत नहीं था। उसने प्रताप के लोकप्रिय प्रभविष्णु–जिष्णु व्यक्तित्व को अपने लिए बाधक मान कर उन्हें मेवाड़ देने की आज्ञा दे दी। प्रताप ने पुनः राजीवलोचन राम की तरह बाप को राज बटाऊ की नाई' त्याग कर मातृभूमि से विदा ली। किन्तु सामन्तों के साथ ही मेवाड़ी प्रजा ने इस अन्याय को असह्य मानकर विद्रोह कर दिया और चूड़ावत सरदार कृष्ण सिंह ने जगमल को बलात् गद्दी से उतार कर महाराणा प्रताप को राजगद्दी स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया। यह घटना गोगुंदा में ही घटी। बाद में महाराणा प्रताप का विविधवत राजतिलक कुम्भलगढ़ में भी किया गया। यही से प्रारम्भ होती है महाराणा प्रताप की धीरता, वीरता और मम्भीरता की परीक्षा तथा पौरूष एवं पराक्रम की चरितार्थता।

महाराणा उदय सिंह के समय से ही चित्तौड़ मुगलों के अधीन था। वे उस समय 28 वर्ष के थे जब अकबर ने चित्तौड़ को 25 फरवरी सन् 1568 को जीत लिया था। वे उस युद्ध में चित्तौड़ की रक्षा में युवराज के रूप में लड़ना चाहते थे किन्तु पिता की आज्ञा से ऐसा नहीं कर सके और इस की कसक उनके मन में बराबर बनी रही। गद्दीपर बैठते ही प्रताप ने भीष्म जैसी प्रतिज्ञा की कि चित्तौड़ की पुनः स्वतंत्रता तक मेरे वंश का कोई भी व्यक्ति राजसी वेश–भूषा तथा खान–पान स्वीकार नहीं करेगा। हमारे सामने जो नगाड़ा बजता हुआ जाता था अब वह हमारी सेना के पीछे बजेगा। सितम्बर सन् 1572 ई. में अकबर की ओर से पहला सन्धि का प्रस्ताव लेकर जलाल खाँ कोरची प्रताप से मिला। दूसरा सन्धि–प्रस्ताव अम्बर के कुँवर मानसिंह द्वारा जून सन् 1573 ई. में आया। दो महीनों बाद तीसरा सन्धि–प्रस्ताव लेकर अकबर की ओर से सन् 1573 में ही अम्बर नरेश भगवानदास स्वयं आया। उसकी भी विफलता के बाद दिसम्बर सन् 1573 में अकबर ने अपने नवरत्नों में एक कुशल राजनीतिज्ञ राजा टोडरमल को भेजा। किन्तु इस वित्तविशेषज्ञ का भी पाँशा चित नहीं पड़ा और हर कीमत पर अपनी स्वतंत्रता के लिए दृढ़–चित प्रताप से अपनी शर्तो पर यह भी सौदा नहीं कर सका। प्रताप यदि चाहते तो नाममात्र के लिए झुककर अकबर से ससम्मान सन्धि कर सुख और वैभव में आराम की जिन्दगी बिता सकते थे। किन्तु उनके समक्ष अपनी सुख सुविधा से पहले मेवाड़ी कुर्बानी का इतिहास खड़ा हो जाता था। स्वधर्म, स्वदेश और स्वाभिमान की रक्षा के लिए चित्तौड़ में हुए तीनों शाके खड़े हो जाते थे। खानवा के मैदान में एक जीती हुई बाजी को रायसेन (ग्वालियर के निकट स्थित है) के अपने ही सामन्त सिल्लैदी की दगाबाजी से हार में बदलते देख रहे घायल राणा सांगा की तिलमिलाहट खड़ी हो जाती थी। जयमल और फत्ता के बलिदान और स्वयं अकबर द्वारा की गयी चित्तौड़ की विजय ललकारती हुई प्रत्यक्ष हो जाती थी और उसे दुर्लक्ष्य करना उनके जैसे शूरमा के लिए,

''एकान्त विध्वंसिषु मद्विधानाम्।
पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु।।''

की नीति में आस्था रखने वाले के लिए कार्य वा साधयेम, देहं वा पातयेम मानने वाले के लिए असम्भव ही था।

अकबर की महत्वाकांक्षाा और अकबर की ही पहल पर किये गये सन्धिप्रयासों की विफलता के दारूण परिणाम से प्रताप पूर्णतः अवगत थे किन्तु–

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्ग, जिज्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृत–निश्चयः।।
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाययौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ, लभन्ते युद्धमीदृशम्।
धर्म्याद्धि युद्धाछ्रयोडन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।।
भयाद्रणादुपरतं मस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्।।
तथा 'सम्भावितस्य चाकीतिर्मरणादतिरिच्यते।'

अर्थात यदि युद्ध में मारे गये तो स्वर्ग मिलेगा, जीत गये तो राज्य भोग करोगे। इसलिए हे कौन्तेय! युद्ध के लिए निश्चय कर के खड़े हो जाओ। सुख–दुखः, हानि–लाभ,जय–पराजय को समान मान कर युद्ध के लिए उद्यत हो जाओं। ऐसा करने में तुम्हें पाप नहीं लगेगा! पार्थ! ऐसा युद्ध तो सौभाग्यशाली क्षत्रियों को मिलता है क्योंकि धर्म–युद्ध से बढ़कर क्षत्रियों के लिए कोई कार्य नहीं है। यदि तुम यह धर्म युद्ध नहीं करोगे तो महारथी यही मानेंगे कि डर कर तुम भाग गये। आज तुम जिनके माननीय हो कल उन्हीं की निगाह से गिर जाओगे। तथा सम्मानित व्यक्ति का अपमान मृत्यु से भी बढ़ कर होता है।– जैसे गीता के वाक्य एक ज्वलन्त, उर्जस्वल प्रेरणा के रूप में उनके सामने थे और वर्तमान ही नहीं अतीत तथा अनागत के भी आर–पार देखते हुए उन्होंने स्वर्गादपि, मोक्षादपि गरीयसी जन्मभूमि पर बलिबलि जाने का, वन–वन स्वतंत्रता दीप लिए फिरने का कण्टकाकीर्ण रास्ता चुना। यह उनकी लोकप्रियता और प्रताप का ही प्रभाव था कि उनके वफादार सैनिकों तथा सामन्तों ने ही नहीं बिल्कुल भगवान राम की तरह वनवासियों, गिरिवासियों ने भी यावज्जीवन उनके साथ ही कण्टकाकीर्ण मार्ग पर चलना, निछावर होना, स्वीकार किया।

समझौता–वार्ताओं के भंग हो जाने पर तीन वर्षो तक प्रकट रूप से शान्ति रही। किन्तु इस बीच भीतर ही भीतर दोनों ओर से कूटनीतिक तथा सामारिक तैयारियाँ निरन्तर चलती रहीं। 14 मार्च सन् 1576 को अकबर अजमेर आया और उसने हिन्दुत्व की एकमात्र स्वतंत्र दो धूयमान पताका को भी हिन्दुआ–सूर्य, मेवाड़ मुकुट राणा प्रताप को भी झुकाने की योजना को अन्तिम

रूप दिया। 2 अप्रैल को योजनानुसार अम्बर के राजकुमार मानसिंह के सेनापतित्व में एक विशाल शाही सेना ने राणा प्रताप के विरूद्ध कूच किया। सेना का पहला पड़ाव माण्डलगढ़ में पड़ा अपने संख्याबल से महाराणा को आतंकित करने के लिए दो महीनों तक सेना वही परेड करती रही। इस बीच प्रताप की सैनिक गतिविधियों की भी गुप्त सूचनायें ली जाती रहीं। फिर शाही सेना ने माण्डलगढ़ से आगे बढ़ कर नाथद्वारा से दस मील दूर खमनोर के पार्श्ववर्ती मेमिला नामक गाँव के पास डेरा डाला। प्रताप, शाही सेना की माण्डलगढ़ में पहुँच का समाचार पाकर पहले ही कुम्भलगढ़ से कूच कर गोगुन्दा आ गये थे और जब शाही सेना ने आगे बढ़ कर मेमिला में पड़ाव डाला तो प्रताप ने गोगुन्दा और खामनोर के बीच हल्दीघाटी के पास, जो सामरिक दृष्टि से अपने लिए अत्यन्त लाभप्रद तथा सुरक्षित और शत्रु के लिए उतना ही हानिप्रद और असुरक्षित था मोर्चा बॉधा। शाही सेना में मानसिंह के अलावा बाराह के सैयद, गाजी खाँ बदख्शी,राव लूणकरण, कछवाहा जगन्नाथ, ख्वाजा शियाबुद्दीन गुरोह, आसफ खाँ, माधोसिंह, मजाहिदवेग, खँगार और मिहतर खाँ आदि शामिल प्रमुख व्यक्ति थे। प्रताप की सेना में प्रताप के साथ बड़ी सादड़ी का मानसिंह (मन्ना) झाला, प्रसिद्ध वीर जयमल का पुत्र राठौड़ रामदास, ग्वालियर का राजा मानसिंह और उसका पुत्र शालिवाहन, पठान हकीम खाँ सूर, भीलों का सरदार, मेरपुर का राणा पुंजा, भामाशाह और उसका भाई ताराचन्द ये प्रमुख लोग थे।

घाटी और खामनोर के बीच के ऊबड़ खाबड़ मैदान में जो बनास नदी तक आगे चला गया है, युद्ध 18 या 21 जून को आरम्भ हुआ। पहल महाराणा प्रताप ने की। उनका आक्रमण इतना प्रबल था कि थोड़ी ही दूर में शाही सेना के पैर उखड़ गये और वह युद्धस्थल से लगभग 10–20 मील दूर तक भागती चली गयी। उभयपक्ष की युद्ध की व्यूहरचना,लड़ाई का आँखों देखा हाल बताते हुए मुगल इतिहासकार अल बदायूँनू ने लिखा है–'' जब मानसिंह और आसफखान गोगुन्दा से 7 कोस दर्रे (घाटी) के पास सेना सहित पहुँचे तो राणा लड़ने को आया। ख्वाजा मुहम्मदरफी बदख्शी,शियाबुद्दीन गुरोह, पायन्दा कज्जाक, अलीमुराद उजबेक और राजा लूणकरण तथा बहुत से शाही सवारों सहित मानसिंह हाथी पर सवार होकर मध्य से रहा और बहुत से प्रसिद्ध जवान पुरूष हरावल के आगे रहे। चुने हुए आदमियों में से 80से अधिक लड़ाके सैयद हाशिम बाराह के साथ हरावल के आगे भेजे गये और सैयद अहमद खान बाराह दूसरे सैयदों के साथ दक्षिण पार्श्व में रहा। शेख इब्राहिम चिस्ती के रिश्तेदार अर्थात सीकरी के शेखजादों सहित काजी खान वाम पार्श्व में रहा और मिहतर खान चन्दावल (एकदम पीछे) की ओर। राणा कीका (प्रताप) ने दरे (हल्दी घाटी) के पीछे से 3000 राजपूतों सहित आगे बढ़ कर अपनी सेना के दो विभाग किये। एक विभाग ने, जिसका सेनापति हकीम सूर अफगान था, पहाड़ों की तरफ से निकल कर हमारी हरावल (सबसे आगे टुकड़ी) पर आक्रमण किया। भूमि ऊँची–नीची रास्ते टेढ़े–मेढ़ और काँटों वाले होने के कारण हमारी हरावल में गड़बड़ी मच गयी जिससे हमारी हरावल की पूरी तौर से हार हुई। हमारी सेना के राजपूत, जिनका मुखिया

रावलूणकरण था और जिनमें अधिकतर वाम पार्श्व में थे, भेड़ों के झुण्ड की तरह भाग निकला और हरावल को चीरते हुए अपनी रक्षा के लिए दक्षिण पार्श्व की तरफ दौड़े। इस समय मैं हरावल के खास सैन्य केसाथ था, आसफ खान से पूछा ऐसी अवस्था में हम अपने और शत्रु के राजपूतों की पहचान कैसे कर सकते हैं? उसने उत्तर दिया 'तुम तो तीर चलाये जाओ, चाहे जिस पक्ष के आदमी मारे जावें, इस्लाम को तो उससे लाभ ही होगा। इसलिए हम तीर चलाते रहे और भीड़ ऐसी थी कि हमारा एक भी वार खाली न गया।

राणा की सेना के दूसरे विभाग ने जिसका नेता स्वयं राणा था, घाटी से निकल कर गाजी खाँ की सेना पर जो घाटी के सिरे पर था, हमला किया और उसकी सेना का संहार करता हुआ उसके मध्य तक पहुँच गया। तब तो सबके सब सीकरी के शेखजादे भाग निकले। परन्तु मुल्ला होने पर भी गाजी खाँ कुछ देर तक तो दृढ़तापूर्वक डटा रहा, किन्तु जब उसके दाहिने हाथ का अंगूठा कट गया,तब वह भी अपने सैनिकों के पीछे–पीछे भाग गया। ग्वालियर के राजा रामशाह ने, जो सदैव राणा के आगे रहता था, मानसिंह के राजपूतों के विरूद्ध ऐसी वीरता दिखाई जिसका वर्णन लेखनी की शक्ति से बाहर है। ये राजपूत (शाही सेना के) जो हरावल से बाएं भाग खड़े हुए, जिससे आसफखाँ को भी भागना पड़ा और उन्होंने दाहिने भाग के सैयदों की शरण ली। हरावल की भागी हुई सेना ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दीथी कि यदि इस अवसर पर सैयद लोग टिके नहीं रहते तो उससे अवश्य ही अपमान जनक हार होती।

''माधव सिंह के साथ लड़ते समय राणा पर तीरों की बौछार की गयी और हकीम खाँ सर सैयदों से लड़ रहा था भागकर राणा से मिल गया। इस प्रकार राणा के सैन्य के दोनों विभाग एकजगह एकत्र हो गये। फिर राणा लौट कर पहाड़ों में जहॉ चित्तौड़ की विजय के बाद वह रहा करता था और जहाँ वह किले के समान सुरक्षित रहता था, भाग गया। प्रचण्ड ग्रीष्म के मध्य इस दिन गर्मी इतनी पड़ रही थी कि खोपड़ी के भीतर मगज भी उबला जाता था। ऐसे समय भी लड़ाई प्रातःकाल से मध्याह्न तक चली लगभग 500 आदमी खेत रहे जिनमें 120 मुसलमान और शेष 380 हिन्दू थे। 300 से अधिक इस्लाम के वीर घायल हुए। इस समय लू आग के समान चल रहीथी। हमारे सैनिकों में चलने फिरने की भी शक्ति नहीं रही थी और सेना में यहभी खबर फैल गयी थी राणा छल से साथ पहाड़ के पीछे घात लगाए खड़ा होगा। इसी कारण हमारे सैनिकों ने राणा का पीछा नहीं किया।''

अल बदायूँनी ने अपने युद्धवृत्त में बीच का हाथियों, राणा प्रताप तथा झाला के युद्धों का महत्वपूर्ण विवरण छोड़ दिया है। मेवाड़ी वीरों की मार से जब शाही सेना में भगदड़ मची तो वह कई मीलों तक बनास नदी के आगे 10–20 मील तक भागती ही चली गयी। तभी मिहतर खाँ ने यह हाक लगायी कि अजमेर से खुद अकबर मदद के लिए आ गया है। इसको सुनकर भागती हुई सेना में कुछ हिम्मत बँधी और सैनिक फिर युद्ध के लिए तत्पर होकर आगे बढ़े। यहाँ से युद्ध ने दूसरे चरण में प्रवेश किया। हाथियों का युद्ध शुरू हुआ। मेवाड़ी सेना का गजराज

'लूना' मुगल सेना पर कहर ढा रहा था। हुसेन खाँ ने जो मुगल गजसेना का प्रमुख था, अब राणा की सेना की बाढ़ रोकने के लिए अपने हाथियों को युद्ध में झोंक दिया। जमाल खाँ फोजदार ने मुगल दल के प्रसिद्ध गजमुक्ता हाथी को 'लूनां से टक्टर लेने के लिए बड़े जोश से आगे बढ़ाया। प्रबल आक्रमण था किन्तु प्रतिरोध और प्रत्याक्रमण प्रबलतर साबित हुआ और 'लूना' की असह्यमार से घायल 'गजमुक्ता' अनन्तः भाग खड़ा हुआ। इसके बाद ही बन्दूक की गोली से 'लूना' का महावत मारा गया। बिना महावत का 'लूना' फिर जिस तिस को रौंदते हुए एक तरफ निकल गया। फिर 'गजराज' पर सवार कमाल खाँ तथा 'रणमाँदर पर सवार पंजू ने महाराणा को चेतक की तरह ही प्रिय और विख्यात हाथी 'राम प्रसाद' पर आक्रमण कर दिया। रामप्रसाद अपने दोनों प्रतिद्वन्द्वियों को आक्रान्त कर परास्त ही करने वाला था कि बन्दूक की गोली से उसका भी महावत खेत रहा। एक तीर मर्मस्थान पर हाथी को भी लगा और दो तरफा वार तथा तीर से घायल हाथी जमीन पर गिर पड़ा। तब शाही सेना के महावत पंजू ने कमाल की फूर्ती से अपने हाथी पर से ही छलाँग लगायी और इसके पहले कि रामप्रसाद सँभलता या प्रताप की सेना का कोई दूसरा महावत उसे संभालता पंजू ने उसे हाँककर अपनी ओर कर लिया। इस हाथी को अकबर महाराणा से एक बार माँग चुका था जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया था। बाद में अकबर ने इस हाथी को ससम्मान 'पीरप्रसाद' नाम से अपनी सेना में रखा।

इधर राजचिन्ह के साथ चेतक पर आरूढ़ महाराणा अद्भूत पराक्रम से लड़ रहे थे। उन्हें सात घाव लगे थे। चेतक भी घायल हो चुका था। इतिहासकार के मतानुसार 'मृगों' के झुण्ड में भूखे शेर के समान महाराणा सजातीय शत्रु मुगल सेनापति मानसिंह को ढूढ़ते हुए शत्रु सैन्य में कहर ढाते हुए निर्भय विचरण कर रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि सरदारगढ़ का वीर भीम सिंह मुगलसेना को चीरता हुआ दूर गजारूढ़ मानसिंह के पास पहुँच गया। घोड़े की रिकाब पर खड़े होकर उसने बर्छे से मानसिंह पर प्रहार किया। किन्तु मानसिंह फुर्ती से झुककर वार बचा गया। भीम घिर चुका था। अतः तलवार से बीसियों को मौत के घाट उतार कर खुद भी वीरगति को प्राप्त हुआ। महाराणा ने यह दृश्य देखा। चेतक को इशारा किया और हर तरफ बरसती तीरों,तलवारों की परवाह किये बिना शत्रु सेना के मध्य में भारी खतरे में व्यूहबद्ध मानसिंह के पास पहुँच गये। स्वामिभक्त चेतक ने भी महाराणा का आशय समझकर हाथी के मस्तक पर अगले दोनों पैर टिका दिये। राणा ने भाले से एक भरपूर वार किया। मानसिंह हौदे में दुबक गया था। वार से हौदे का पिछला खम्भा टूट गया। फिर महाराणा ने कटार से वार किया। उन्हें लगा निशाना ठीक बैठा है। चेतक ने पैर नीचे किये। हाथी के दाँत में बंधी तलवार से उसकी एक टांग बुरी तरह जख्मी हो गयी। राणा चौतरफ शत्रुओं से घिर चुके थे। प्रहार पर प्रहार झेल रहे थे। धरती लाशों से पटती जा रही थी। हजारों से अकेले लड़ रहे थे। राणा तलवार से पराक्रम का महाकाव्य लिख रहे थे। कछवाहा माधों सिंह ने अपने घुड़सवारों के साथ राणा को जीवित या मृत पकड़ने के लिए घेरा और तंग किया। अपने पराक्रम और रण–कौशल के लिए प्रसिद्ध

बहलोल खाँ ने तब महाराणा के शिर को लक्ष्यकर एक जबर्दस्त प्रहार किया। किन्तु राणा का रण–कौशल भी, जिससे उन्होंने मुकाबला किया–अद्‌भुत था। अगले ही क्षण एक ही बार में घोड़े सहित महाबली बहलोल जमीन्दोज था लेकिन महाराणा पर इस पराक्रम के बावजूद खतरा बढ़ता जा रहा था। युद्ध की हवा भी जो पहले उनके पक्ष में थी अब उनके विरूद्ध बहने लगी थी। वे तीन बार शत्रु के घेरों को तोड़ कर निकले किन्तु फिर–फिर घिर जाते थे। झाला सरदार ने आसन्न खतरे को पहचान लिया। हिन्दुआसूर्य खतरे में था। मेवाड़ की आशा खतरे में था। फिर तो राजपूत स्वभाव के पवित्रतम कृत्य का निश्चय करते उसे समय नहीं लगा। घोड़ा बढ़ा कर वह राणा के समीप पहुँचा और युद्ध में व्यस्त राणा कुछ समझे इसके पहले ही वह उनका राजा उतार कर स्वयं धारण कर मुगल सेना को अपनी ओर आकर्षित करता हुआ बगल में बढ़ चुका था। अबतक अनेक स्वामिभक्त सामन्त और सैनिक भी उनके पास पहुँच चुके थे। राजचिन्ह हट जाने से उनपर प्रतिपक्ष का दबाव ढ़ीला पड़ गया था, फिर भी राणा युद्धस्थल छोड़ने को तैयार नहीं थे। किन्तु हकीम खाँ सूर आदि ने चेतक का लगाम अपने हाथ में लेकर घाटी की ओर उसका मुह मोड़ दिया। राणा युद्ध स्थल से घाटी में सुरक्षित स्थान की ओर बढ़ रहे थे। उन्हें पहचान कर दो मुगल घुड़सवारों ने उनका पीछा किया। घायल स्वामिभक्त चेतक ने छलांग लगाकर एक पहाड़ी नाला पार किया। किन्तु अब वह निढाल होकर वहीं पर गिर पड़ा। अपने अनन्य साथी, अनेक वीरकर्मो के साक्षी, महान चेतक को अरुपूरित नयनों से महाराणा ने विदा दी। उसने स्वामी की गोद में शिर रखकर दम तोड़ दिया। सुरक्षित स्थान की ओर बढ़ते राणा के पीछे दो मुगल सवारों के साथ एक आदमी और लग गया था। यह महाराणा का छोटा भाई शक्ति सिंह था। वह भी मुगलों की ओर से राणा के विरूद्ध लड़ने आया था। किन्तु प्रताप की देशभक्ति ने, उनके अनुलनीय साहस और पराक्रम ने तथा मुगलों के मेवाड़ तथा राणा विरोधी तानों ने उसकी आँखे खोल दीं। खून ने जोर मारा। भायप जाग उठा। राणा का पीछा करने वाले दोनों मुगल सवारों को घात लगाकर उसने मार गिराया और लज्जित, पश्चात्तापयुक्त तथा क्षमा प्रार्थी की मुद्रा में वह सविनय राणा से जा मिला। विहवल राणा ने उसे गले लगा लिया। राम और भरत के मिलाप के बाद यह दूसरा उदाहरणीय भातृ–मिलन था। उधर युद्ध भी वीरवर झाला के उत्सर्ग के बाद समाप्त हो गया। इतिहास साक्षी है कि मुगलों की तथा कथित जीत संख्या और साधनों की जीत थी। वीरता और रण कुशलता की दृष्टि से प्रताप अपराजेय रहे। मौलाना मुहम्मद हुसैन आजाद ने इसे बड़े भारी युद्ध का हाल बताते हुए लिखा है– 'नमक हलाल मुगल और मेवाड़ के शूरमा ऐसे जान तोड़कर लड़े कि हल्दीघाटी के पत्थर ईगुर हो गये. ..... (मेवाड़ियों की) यह वीरता ऐसे शतुत्रों के सामने क्या कर सकती थी जिसके साथ असंख्य तोपें और रहकले आग बरसाते थे और ऊँटों के रिसाले आँधी की तरह दौड़ते थे। हल्दीघाटी का युद्ध निर्णायक युद्ध नहीं था। यह परिणाम विहीन युद्ध महत्वकांक्षी अकबर और स्वदेश स्वजाति तथा स्वधर्म की स्वतंत्रता के लिए जूझ रहे स्वाभिमानी प्रताप के बीच लम्बेकाल

तक चलने वाली लड़ाई का प्रारम्भ ही था। प्रताप रणनीतिवश युद्ध क्षेत्र से हटे जरूर थे किन्तु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी थी। वेऔर दृढ़ता तथा उत्साह से रणनीति बद कर पहाड़ों में चले गये। भारवि ने ठीक ही लिखा है–

''परैरपर्यासितवीर्यसम्दां परभवोप्युत्सव एव मार्निनाम्।''

''शत्रु जिसके पराक्रम को नष्ट न कर सका हो ऐसे स्वाभिमानियों के लिए पराजय भी उत्सव ही है।'' प्रताप को परास्त और बन्दी न कर सकने के लिए अकबर ने मानसिंह की प्रताड़ना की। 23 जून को हल्दीघाटी के युद्ध के बाद मानसिंह ने ''गोगुन्दा'' को अपने अधिकार में ले लिया था। प्रताप की गतिविधियों का केन्द्र अब कोल्यारी था। सितम्बर सन्1576 तक प्रताप ने गोगुन्दा पुनः हथिया लिया। 13 अक्टूबर 1576 को अकबर ने स्वयं गोगन्दा के लिए कूच किया। हल्दीघाटी के अनुभव से राणा ने रणनीति बदल दी थी। अब वे छापामार–युद्ध करते थे। उनकी सेना में अप्रशिक्षित भील ही अधिक थे। वे मैदानी लड़ाई के बजाय पहाड़ी लड़ाई ही कर सकते थे। हल्दीघाटी की हार का भी तात्कालिक कारण यही था। प्रारम्भ में जब तक लड़ाई पर्वतीय क्षेत्र में हुई राणा जीतते रहे। लेकिन जैसे ही भागती हुई मुगल सेना का पीछा कर उनकी सेना मैदानी हिस्से में पहुँची मैदानी युद्ध के अभ्यस्त थोड़े से वीर राजपूत विशाल शाही सेना का भयंकर कल्पनातीत संहार करने के बाद भी देर तक सामना नहीं कर सके। बाकी तीर–कमान वाली भीलों की सेना प्रशिक्षित तथा तोपखानों से लैस, विशाल सेना से मैदान में भला क्या मुकाबला करती? अस्तु। अकबर आया। प्रताप ने उसे निर्विरोध गोगुन्दा जाने दिया। प्रताप को बन्दी बनाने के लिए उसने भगवन्तदास, भगवानदास और कुतुबुद्दीन आदि को सेना सहित भेजा। किन्तु प्रताप किसी के हाथ नहीं लगा। उल्टे भीलों ने अनेकत्रटक्कर में उन्हें धन–जन की भारी क्षति उठानी पड़ी। निराश अकबर ने उस पर्वतीय प्रदेश की नाकेबन्दी कर दी ताकि प्रताप निकल न पाये। लेकिन उसकी यह योजना भी निष्फलवती रही। खीझकर उसने प्रताप समर्थक बूंदी, सिरोही, डूंगरपुर और बाँसवाड़ा पर आक्रमण कर उन्हें जीत लिया। फिर भी अकबर को निराश ही लौटना पड़ा। प्रताप अब भी स्वतंत्र था और अकबर के जाते ही पहाड़ों से बाहर अकर उसने मेवाड़ राज्य के उन सारे प्रदेशों को जिन्हें अब की अकबर जीत गया था फिर अपने अधिकार में कर लिया। अभियान से लौटा अकबर अभी मेरठ में ही था कि प्रताप की पुनर्विजय का समाचार उसे मिला। अबकी उसने शाहबाज खाँ को सेनापति बनाकर एक सेना फिर मेवाड़ भेजी। सैयद हासिम, सैयद राजू पायन्दा खाँ, मानसिक और भगवानदास जैसे कई सेनानी साथ थे। लेकिन अकबर को लगा यह सेना कम है। उसने शेख इब्राहिम खाँ के नेतृत्व में एक और टुकड़ी भेजी अविश्वास और मनमुटाव के कारण बाद में शाहबाज खाँ ने भगवानदास और मानसिंह को बीच रास्ते से वापस कर दिया। 5 जून 1578 ई. को शाहबाज खाँ ने कुम्भलगढ़ पर हमला किया। प्रताप इन दिनों यही थे। पर्याप्त रसद और पेयजल संकट के कारण प्रताप ने किला छोड़ दिया। किले के अन्दर की प्रजा भामाशाह के साथ मालवा चली गयी। कुम्भलगढ़

को जीतता हुआ शाहबाज खाँ गोगुन्दा और उदयपुर तक चला गया। अकबर की आँख में चढ़ने के लिए उसने प्रताप को घेरने और बन्दी बनाने की बड़ी कोशिश की किन्तु निष्फल रहा। प्रताप इस समय चूलिया में थे। बराबर संघर्ष से उत्पन्न साधन हीनता में वन–वन घूमते हुए स्वतंत्रता की अलख जगा रहे थे। 'जो हठि राखै धर्म की तिहिं राखै करतार।' उक्ति चरितार्थ हुई। प्रताप की तपस्या पूरी हुई। भामाशाह नेआर्थिक सहायता ला दी। फिर साधन मिला। सैन्य संघटन हुआ और प्रताप ने हमला कर दिवेर के शाही थाने पर अपना अधिकार कर लिया। फिर हमीरसर और कुम्भलगढ़ भी सन् 1578 में ही जीत लिए। इसे ही अपनी पर्वतीय राजधानी बना कर उन्होंने गोगुन्दा, उदयपुर, छप्पन पहाड़ियाँ, जावर और बाडाण के पर्वतों पर पुनः अधिकार कर आगे चावण्ड पहुँच कर उन्होंने सब प्रकार से अपने लिये सुरक्षित समझ कर उसे ही मेवाड़ की नई राजधानी बनाया। इधर से निश्चित होकर चन्द्रसेन की सहायता से डूँगरपुर और बांसवाड़ा को भी जिसे अकबर जीत गया था पुनः अपने अधिकार में ले लिया।

प्रताप की निरन्तर सफलताओं के समाचार से अकबर बौखला गया। उसने दिसम्बर सन् 1578 में शाहबाज खाँ को फिर भेजा। जून 1579 में प्रताप ने प्रत्याक्रमण कर उसकी उपलब्धियों को व्यर्थ कर दिया। नवम्बर सन् 1579 में शाहबाज खाँ ने फिर हमला किया जिसे सन् 1580 में प्रताप ने प्रत्याक्रमण कर निष्फल कर दिया। शहबाज खाँ खाली हाथ लौटा। नाराज अकबर ने कविवर रहीमदास खानखाना को अजमेर का सूबेदार बनाकर भेजा और प्रताप को पकड़ने या परास्त करने की जिम्मेदारी दी। रहीमदास इसके पूर्व भी अकबर और शाहबाज खाँ के साथ प्रताप के विरूद्ध अभियानों में आ चुके थे। अजमेर से कूचकर उन्होंने शेरपुरा में डेरा डाला। प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने अचानक हमला कर दिया। खानखाना के साथ की सारी सेना अप्रत्याशित आक्रमण से तितर–बितर हो गयी। खजाना और खानखाना का परिवार भी अमरसिंह के हाथ लगा। पता चलते ही प्रताप ने खानखाना की बेगम को ससम्मान मुगल खेमे में वापस कर दिया। राणा की इस चारित्रिक महानता से कवि रहीमदास पर ऐसा असर हुआ कि फिर उसने राणा के विरूद्ध अपना हथियार नहीं उठाया। प्रताप के विरूद्ध फिर अकबर ने जगन्नाथ कछवाहा के नेतृत्व में दिसम्बर सन् 1584 में एक सेना भेजी। अपने अभियानों में निष्फल यह सेना भी सन् 1587 में निराश होकर वापस चली गयी। इसके बाद मुगलों ने फिर इधर प्रताप के विरूद्ध अभियान की हिम्मत नहीं की। अब तक अपने निरन्तर संघर्षो से राणा प्रताप ने उतना सारा राज्य फिर से अपने अधिकार में कर लिया था जितना उत्तराधिकार में उन्हें मिला था और अकबर तथा उसके सेनापतियों ने प्रताप से जितना कुल जीता था क्रमशः सब खो दिया। युद्ध से विश्राम पाते ही प्रताप ने अपनी रचनात्मक तथा प्रशासकीय प्रतिभा को भी प्रमाणित किया। युद्ध में साथ रहे, काम आये वीरों एवं उनके परिवारों का सम्मान किया गया, उन्हें जागीरें दी गयीं। ग्राम्य और नगर जीवन जोयुद्धों के कारण अस्त–व्यस्त हो गया था फिर से व्यवस्थित किया गया। नयी राजधानी चावण्ड की भूमि बड़ी उर्वर थी। मालवा और गुजरात

के व्यापारिक केन्द्र पास थे। फलतः कृषि और वाणिज्य की प्रचुर उन्नति हुई। उस समय बने दुर्ग और महल भी स्थापत्यकला के सुन्दर उदाहरण हैं। कमलनाथ, उबेश्वर, चावण्ड और जावर आदि स्थानों की स्थापत्यकला दर्शनीय है। महाराणा स्वयं भी कवि थे। तत्कालीन पद्मिनी–चरित्र और दुरसा आहड़ा उत्कृष्ट साहित्यिक कृतियाँ हैं। चित्रकला की भी उस समय बड़ी उन्नति हुई। चावण्ड चित्र शैली के चित्र जो संग्रहालयों में अब भी सुरक्षित हैं कई दृष्टियों से उल्लेखनीय हैं। महाराणा प्रताप की 11 रानियाँ थी जिनसे 17 राजकुमार हुए थे जिनका विवरण उत्तर पीठिका में मिलेगा। इस प्रकार युद्ध और शांति दोनों कालों में यशस्वी जीवन जीकर महामनस्वी महाराणा ने उत्तराधिकारी तथा सामन्तों को जातीय गौरव की रक्षा की शपथ दिला कर माघ सुदी एकादशी सं0 1653 वि0 तदनुसार 19 जनवरी सन् 1597 ई. को कुल 57 वर्ष की अवस्था में भौतिक देह छोड़ दी। एक बार जब वे शिकार में धनुष चढ़ा रहे थे, धनुष टूट गयी। उसका एक नुकीला कोना उनके पेट में धँस गया। कहते हैं यही उनकी असामयिक मृत्यु का कारण बना। मृत्यु ऐसे वीर का वरण कर धन्य हो गयी। प्रताप का यशः शरीर आज भी अक्षत है। वह एक ऐसे इतिहास पुरूष हैं जिनसे पीढ़ियाँ प्रेरणा लेती रहेगी। चावण्ड से डेढ़ मील दूर बडावली गाँव के पास एक नाले के किनारे महाराणा की अंत्येष्टि की गयी। वहाँ उनकी स्मृति में संगमरमर की 8 खम्भों वाली एक छतरी बनी हुई है जो अब अच्छी स्थिति में नहीं है। कवि के शब्दों में–

निकल रही जिसकी समाधि से स्वतंत्रता की आगी।
यहीं कहीं पर छिपा हुआ है वह स्वतंत्र वैरागी।।

पुनश्च कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ के शब्दों में–

जाहार अमर स्थान प्रेमेर आसने, क्षति तार क्षय नय मृत्यूर शासने।
देशेर माटिर थेको निलो जारे हरि, देशेर हृदय तारे राखियाछे वरि।।

अर्थात् जिनका स्थान प्रेम के आसन हृदय में हैं, मृत्यु के शासन–चक्र में उनकी क्षति कोई मायने नहीं रखती। देश की माटी ने जिसे अपने भीतर छिपा लिया है देश के हृदय ने उसे सर–आँखो पर बिठा लिया है।

हिन्दूपति परताप, पत राखी हिंदुवाण री।
सहे विपति संताप, सत्य सपथ करि आपणी।।
अकबर संमद अथाह, तिंह डूबा हिन्दू तुरूक।
मेवाड़ो तिण माह, पोयण फूल प्रताप सी।।
अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा।
पुनरासी परताप, सुजस न जासी सूरमा।।

MAHARANA PRATAP MAHAVIDYALAYA
JUNGLE DHUSAN, GORAKHPUR (U.P.)

Vimarsh

An Interdisciplinary Journal

Subscription Form

Editor,
Vimarsh
Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusan, Gorakhpur-273014

Dear Editor,
I/ We should like to subscribe to the *Vimarsh*, an interdisciplinary journal, published by you. Subscription amount Rs./US$.....is being enclosed herewith by cheque*/demand draft no.....drawn on ..... . Kindly enrol my/ our - Annual/ Five Year/ Life subscription** and arrange to send the issues of the journal on the following address:

Name of Individual/ Institution : .....
Address : .....
.....
City : .....Pin/Zip :.....

State : .....Country :.....

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 100	US $ 5	Rs. 200	US $ 10
Five Years	Rs. 400	US $ 20	Rs. 800	US $ 40
Life (15 Years)	Rs. 1300	US $ 60	Rs. 2500	US $ 100

* All cheques/demand drafts should be drawn in favour of ***Pracharya, Maharana Pratap Snatkottar Mahavidyalaya, Jungle Dhusan*** payable at **Gorakhpur**. In case of outstation cheques please add Rs. 30/US$ 2 for clearing expenses.

** Please tick the desired subscription period.

Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusan, Gorakhpur-273014
Mob.: 9794299451, 9452971570 • E-mail : vimarshmppg@gmail.com

GUIDELINES FOR CONTRIBUTORS

1. Contribution should be submitted in duplicate, the first two impressions of the typescript. It should be typed in font Walkman-Chanakya (Hindi) and in Times New Roman (English) on a quarter or foolscap sized paper, in double-space and with at least one and a half inch margin on the right. Two copies of a computer printout along with a CD are preferred. They should subscribe strictly to the Journal format and style requirements.

2. The cover page of the typescript should contain: (i) title of the article, (ii) name (s) of author(s), (iii) professional affiliation, (iv) an abstract of the paper in less than 150 words, and (v) acknowledgements, if any. The first page of the article must also provide the title, but not the rest of the item of cover page.

3. Though there is no standard length for articles, a limit of 5000 words including tables, appendices, graphs, etc., would be appreciated.

4. Tables should preferably be of such size that they can be composed within one page area of the Journal containing about 45 lines, each of about 85 characters (letter/digits). The source(s) should be given below each table containing data from secondary source(s) or results from previous studies.

5. Figures and charts, if any, should be professionally drawn using such materials (like black ink on transparent papers) which allow reproduction by photographic process. Considering the prohibitive costs of such process, figures and charts should be used only when they are most essential.

6. Indication of notes should be serially numbered in the text of the articles with a raised numeral and the corresponding notes should be given at the end of the paper.

7. A reference list should appear after the list of notes. It should contain all the articles, books, reports, etc., referred in the text and they should be arranged alphabetically by the names of authors or institutions associated with those works.

   (a) Reference to books should present the following details in the same order: author's surname and name (or initials), year of publication (within brackets), title of the book (underlined/italic), place of publication. For example:

   Chakrabarti, D.K. (1997), *Colonial Indology: Socio-politics of the Ancient Indian Past,* pp. 224-25, New Delhi

   (b) Reference to institutional publications where no specific author(s) is (are) mentioned should present the following details in the same order. institution's name, year of publication (within brackets), title of the publication (underlined/italic), place of publication. For example:

   Ministry of Human Affairs (2001), *Primary Census Abstract,* New Delhi, pp. xxxviii.

   (c) Reference to articles in periodicals should present the following details in the same on: the author's surname and name (or initials), year of publication (in brackets), title of the article (in double quotation marks), title of periodical (underlined/italic), number of the volume and issue (both using Arabic numerals); and page numbers. For example:

   Siddiqui, F.A. and Naseer, Y. (2004), "Educational Development and Structure of Works participation in western Uttar Pradesh", *Population Geography,* Vol. 26, Nos. 1 & 2, pp. 25-26.

   (d) Reference in the text or in the notes should simply give the name of the author or institution and the year of publication, the latter within brackets; e.g. Roy (1982). Page numbers too may be given wherever necessary, e.g. (Roy 1982: pp. 8-15).

विमर्श

अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

हिन्दू जीवन पद्धति दुनिया की श्रेष्ठतम जीवन पद्धति है। हमारे ऋषियों महर्षियों ने अनेक पीढ़ियों की तपस्या से मानवता को सुख औरन शान्ति प्रदान करने वाली संस्कृति का विकास किया। मनुष्य की कौन कहे इस सृष्टि के चर-अचर सभी में ईश्वर का दर्शन किया और इसका उपदेश दिया। ऐसी श्रेष्ठतम् संस्कृति में छूत-अछूत, ऊँच-नीच, पुरुष-महिला विभेद की बात हास्यास्पद लगती है। यह हिन्दू समाज की विकृति है जिसे दूर किए बगैर हिन्दू संस्कृति के तेजोमय प्रकाश का दर्शन नहीं किया जा सकता।

– राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

ISSN 0976-0849

Published by Maharana Pratap Mahavidyalaya, Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)
E-mail : vimarshmppg@gmail.com
Published at Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur
Printed by : LAXDEEP DIGITAL INDIA (Delhi, Bharat) 7838 975 278, 770 389 2262